ISSN 2349-1906

साहित्य यात्रा

वर्ष 7 अंक 27 जुलाई-सितम्बर 2021

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

श्री कृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर एक साहित्य कार्यक्रम में डॉ वंदना मिश्रा की पुस्तक 'मानस के अनमोल मोती' का लोकार्पण किया गया। समारोह की अध्यक्षता साहित्य यात्रा के संपादक डॉ. (प्रो.) कलानाथ मिश्र ने की। लोकार्पण के अवसर पर (बाएं से) साहित्य यात्रा के सहयोगी संपादक अमित कुमार मिश्रा, प्रशासनिक सेवा के पूर्व अधिकारी श्री यू.पी. शर्मा, डॉ कलानाथ मिश्र, डॉ वंदना मिश्र आदि।

लघुकथा आंदोलन में अग्रणी भूमिका निभाने वाले डॉ सतीशराज पुष्करणा को सम्मानित करते वरिष्ठ लघुकथाकार–समीक्षक श्री मधुदीप, साथ में हैं 'लघुकथा कलश' के सम्पादक श्री योगराज प्रभाकर।

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

संपादक
प्रो० कलानाथ मिश्र

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

सदस्यता फार्म

'साहित्य यात्रा' विशिष्ट सदस्यता	:	1100/-
एक वर्ष (4 अंक)	:	500/- (डाक खर्च सहित)
तीन वर्ष (12 अंक)	:	1200/- (डाक खर्च सहित)
संस्थागत मूल्य (3 वर्ष)	:	1100/-
आजीवन सदस्यता	:	11000/-
विदेश के लिए (3 अंक)	:	60 डॉलर

(पटना के बाहर के चेक पर कृपया बैंक कमीशन के 40/- रूपये अतिरिक्त जोड़ दें।)

उक्त दर के अनुरूप मैं चेक / ड्राफ्ट संलग्न कर रहा हूँ। ऑन लाईन खाते में डाल दिया हूँ (रेफरेन्स नं०) कृपया मुझे ग्राहक बना कर मेरी प्रति निम्न पते पर भिजवाएँ।

नाम :-	पद :-
पता :-	
दूरभाष 1 :	दूरभाष 2 :
शहर :	पिन न० :-
देश :	ईमेल -
संकाय / विभाग / विद्यालय:	

भुगतान की जानकारी

नकद/बैंक रकम: रु०.. द्वारा..

डी0डी0/प्रत्यक्ष हस्तांतरण/चेक/बैंक का नाम :..

डी0डी/चेक/स्थानान्तरण संख्या :.................................... दिनांक :.......................................

दिनांक:		हस्ताक्षर (या पूरा नाम लिखें)	

ऑनलाइन हस्तांतरण विवरण :- साहित्य यात्रा, पंजाब नेशनल बैंक, एस.के. पुरी शाखा, पटना-1

खाता क्रमांक- 6236000100016263, IFSC- PUNB0623600

वेबसाईट - www.sahityayatra.com

यहाँ से काटिए

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

वर्ष-7 अंक-27 जुलाई-सितम्बर, 2021

परामर्शी

डॉ॰ सूर्य प्रसाद दीक्षित

डॉ॰ प्रेम जनमेजय

डॉ॰ हरीश नवल

डॉ॰ संजीव मिश्र

सम्पादकीय सलाहकार

श्री आशीष कंधवे

उप-संपादक

प्रो॰ (डॉ॰) प्रतिभा सहाय

डॉ॰ सत्यप्रिय पाण्डेय

सहायक संपादक

डॉ॰ रवीन्द्र पाठक

डॉ॰ करुणा पीटर 'कमल'

अमित कुमार मिश्र

साज-सज्जा

निशिकान्त / मनोज कुमार

संपादक

प्रो॰ कलानाथ मिश्र

साहित्य यात्रा में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखकों के हैं जिनसे संपादक, प्रकाशक, मुद्रक एवं पत्रिका से जुड़े किसी भी व्यक्ति का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। सभी विवादों का निपटारा पटना क्षेत्र के अन्तर्गत सीमित है। पत्रिका में संपादन से जुड़े सभी पद गैर-व्यावसायिक एवं अवैतनिक है।

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

RNI No. : BIHHINO5272
ISSN 2349-1906

विश्व विद्यालय अनुदान आयोग द्वारा पूर्व अनुमोदित

© स्वत्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित सामग्री के पुनः उपयोग के लिए लेखक,
अनुवादक अथवा **साहित्य यात्रा** की स्वीकृति अनिवार्य है।

संपादकीय कार्यालय
'अभ्युदय'
ई-112, श्रीकृष्णपुरी
पटना-800001 (बिहार)
मोबाइल : 8434880332/09304302308/09835063713
ई-मेल : sahityayatra@gmail.com
kalanath@gmail.com
वेब साईट : http:/www.sahityayatra.com

मूल्य : ₹ 75

प्राप्ति स्थान :

पटना-
आलोक कुमार सिंह, मैग्जीन हाउस, शालीमार स्टूडियो के पास,
सहदेव महतो मार्ग, बोरिंग रोड, पटना-800001

दिल्ली -
1. आर.के. मैग्जीन सेन्टर, क्रिश्चियन कॉलोनी, पटेल चेस्ट, दिल्ली, वि.वि., दिल्ली-11007
2. राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, मंडी हाउस, नई दिल्ली

शुल्क **'साहित्य यात्रा'** के नाम पर भेजें।

'साहित्य यात्रा' त्रैमासिक डॉ॰ कलानाथ मिश्र के स्वामित्व में और उनके द्वारा 'अभ्युदय' ई-112, श्रीकृष्णपुरी, पटना-800001, बिहार से प्रकाशित तथा ज्ञान गंगा क्रियेशन्स, पटना से मुद्रित। स्वामी/संपादक/प्रकाशक/मुद्रक : प्रो॰ कलानाथ मिश्र।

अनुक्रम

संपादकीय 07

कविता

जाग तुझको दूर जाना 11
महादेवी वर्मा

आलेख

ऐतिहासिक कथानक हेतु नई जमीन की तलाश 12
शरद पगारे

संस्मरण

मेरे अपने रामदरश जी 21
प्रकाश मनु

पुस्तक समीक्षा

सीगिरिया पुराण 35
प्रो. (डॉ.) रत्नेश्वर मिश्र

आलेख

हिन्दी साहित्य के शिखर पुरुष- डॉ. राम निरंजन परिमलेन्दु 39
डॉ. राम सिंहासन सिंह

आधुनिक हिन्दी काव्य में आख्यानपरकता 43
डॉ. दिलीप राम

सारस्वत व्यक्तित्व के धनी डॉ. बेचन 51
कुमार कृष्णन

स्मृति शेष

बिहार में लघुकथा आंदोलन के जनक डॉ. सतीश राज पुष्करणा 54
डॉ. ध्रुव कुमार

पुस्तक विमर्श

किताब 59
सवाई सिंह शेखावत

आलेख

समकालीन हिन्दी कथा साहित्य में स्त्री विमर्श 63
रंजना अरगड़े

पौराणिक कहानी
अस्मत नीलाम घोड़ों के दाम 71
सुधा गोयल

पुस्तक समीक्षा
स्त्री जीवन का आख्यान रचती कविता : स्त्री और समुद्र 77
डॉ. सत्यप्रिय पांडेय

साक्षात्कार
प्रसिद्ध गीतकार नचिकेता से रामयतन प्रसाद की लम्बी बातचीत 79
रामयतन प्रसाद

आलेख
राष्ट्रीय चेतना में साहित्यकारों का योगदान 88
शंकर लाल माहेश्वरी

गोदान : संक्रमणकालीन समाज का रेखांकन 93
सोमनाथ शर्मा

कहानी
अग्निस्नान 102
निरूपमा राय

आलेख
अपने अपने अजनबी : पुनरावलोकन 109
आदित्य अभिनव उर्फ डॉ. चुम्मन प्रसाद

पुस्तक समीक्षा
'नरेंद्र कोहली के उपन्यासों में स्वामी विवेकानंद का जीवन चरित्र' पुस्तक की समीक्षा 117
अमित कुमार मिश्रा

आलेख
गोवर्द्धन प्रसाद सदय की कहानियों में राष्ट्रीयता 121
डॉ. कुमारी चम्पा

हिन्दी की पहली कहानी कौन : अब तक विवादित क्यों? 126
राजेन्द्र सिंह गहलौत

फणीश्वर नाथ रेणु की कहानियाँ और उनका भाव-संसार 132
पद्मा मिश्रा

रिपोर्ट 136
लोकार्पण समारोह

सम्पादकीय

आज कृष्णाष्टमी है और मै संपादकीय लिखने बैठा हूँ। सहज ही हिन्दी साहित्य के कृष्ण मुझे अपनी ओर खींच रहे हैं। संपूर्ण भारतीय वांड्मय राम और कृष्ण के दिव्य व्यक्तित्व से आभासित है। समस्त भारतीय साहित्य कृष्णमय है, उसमें कृष्ण की छवि अह्लादमय है। भारतीय साहित्य एवं कलाकृतियों में राधा-कृष्ण के अनुपम युगल छवि श्रेष्ठतम है, हृदयहारी है, सहज ही लोगों पर मर्मस्पर्शी प्रभाव डालते हैं। दूसरी ओर लोकगीतों में, लोक कथाओं में राम और कृष्ण इस प्रकार समाहित हैं कि जनजीवन को प्राणवत्ता प्रदान कर रहे हैं। राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं वहीं कृष्ण लीलाधर हैं। कृष्ण और राधा के चरित्र दीर्घकाल से भारतीय जीवन और परंपरा को पूर्णता प्रदान कर रहे हैं। कृष्ण का प्रथम उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। ऋग्वेद के अष्टम मंडल के छायालीस, तैंतालीस, चौवालीस सूक्तों के ऋषि का नाम कृष्ण हैं। भारतीय संस्कृति में कृष्ण कई रूपों में रचे बसे हैं। ज्ञान के प्रतीक के रूप में, निष्काम कर्मयोगी के रूप में, वे स्थितिप्रज्ञ हैं, दार्शनिक हैं। वे हृदयहारी हैं। वे प्रेम, करुणा, ज्ञान के प्रतीक हैं। वे कन्हैया, श्याम, द्वारकाधीश, वासुदेव, लीलाधर आदि विभिन्न नामों से जाने जाते हैं। कृष्ण हिन्दी ही नहीं समस्त भारतीय साहित्य के कवियों में प्रियकर और आदर्श रूप में रहे हैं। विद्यापति से लेकर हिन्दी का समस्त साहित्य विशेष रूप से मध्यकाल राधाकृष्ण की मोहक लीलाओं से परिपूर्ण है। कृष्ण भक्ति काव्य धारा के कवियों ने अपनी कविताओं में राधा और कृष्ण की लीलाओं को काव्य का विषय बनाया है। विद्यापति की रचना कृष्ण भक्त परंपरा की पहली रचना मानी जाती है। गीत गोविंद की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए विद्यापति राधा और कृष्ण के प्रेम का वर्णन अपने पदावलियों में तल्लीनता के साथ किया है। आज भी मिथिला की अमराइयों मे इसकी अनुगूँज सुनाई पड़ती है। एक ओर विद्यापति जहाँ अपनी भक्तिपरक रचनाओं से लोगों को भाव विभोर करते हैं वहीं दूसरी ओर संयोग एवं वियोग श्रृंगार का चरमोत्कर्ष उनकी रचनाओं में दिखता है जो पाठकों को सहज ही अभिभूत कर लेता है। विद्यापति की पदावली में भक्ति और श्रृंगार का अद्‌भुत समन्वय दिखता है। कहीं राधा आत्मा की प्रतीक हैं और कृष्ण परमात्मा के, तो कहीं वे दोनों नायक और नायिका के रूप में विद्यमान हैं। विद्यापति जब कहते हैं-

से हों पिरीति अनुराग बखानइत, तिल-तिले नूतन होय।
जनम-अवधि हम रूप निहारल, नयन न तिरपित भेल।

इन पंक्तियों में पवित्र प्रेम की पराकाष्ठा का दर्शन हमें मिलता है। विद्यापति के द्वारा वर्णित सौन्दर्य असाधारण और चिरनूतन है। कवि ने इसे 'अपरूप' कहा है। यह अपरूपता राधा में ही नहीं कृष्ण में भी है। उसकी महिमा कवि के शब्दों में इस प्रकार है-

ए सखि पेखल एक अपरूप।
सुनइत मानवि सपन सरूप।।

श्रृंगार वर्णन के क्रम में कृष्ण के अनुपम सौंदर्य का वर्णन विद्यापति ने किया है तो मध्यकाल में कृष्ण भक्त कवियों के साहित्य में अनुपम सरसता, माधुर्यता, तल्लीनता और काव्य सुधा है। इस परंपरा के कवियों ने कृष्ण के बाल रूप के एवं उनकी विविध लीलाओं के हृदयग्राही चित्र अपने काव्य में अंकित किए हैं। वल्लभाचार्य के बेटे श्री विट्ठलनाथ ने पुष्टिमार्गी कवियों अर्थात अपने पिता के 84 शिष्यों में से चार शिष्यों सूरदास, परमानंददास, कुंभनदास और कृष्णदास को तथा अपने 252 शिष्यों में से चार शिष्यों नंददास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी और गोविंदस्वामी को लेकर आठ शिष्यों के एक समूह

की स्थापना की जिसे अष्टछाप के नाम से संबोधित किया गया। कृष्ण भक्त कवियों ने लोकरंजनकारी कृष्ण की लीलाओं का उन्मुक्त गायन किया है। कृष्ण के अनेक रूपों का वर्णन साहित्य में मिलता है- बालकृष्ण रक्षक कृष्ण, शाखा कृष्ण, कर्मयोगी कृष्ण, धर्म योगी कृष्ण, योगेश्वर कृष्ण, अवतारी कृष्ण, लीलाधारी कृष्ण आदि। सूरदास का वात्सल्य वर्णन हिंदी साहित्य की अनुपम निधि हैं। सूर के वात्सल्य वर्णन में स्वाभाविकता, विविधता, रमणीयता, एवं मार्मिकता है जिसके कारण वे वर्णन अत्यंत हृदयग्राही एवं मर्मस्पर्शी बन पड़े हैं। तभी तो रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है 'बाल सौंदर्य एवं स्वभाव के चित्रण में जितनी सफलता सूर को मिली है उतनी अन्य किसी को नहीं। वे अपनी बंद आँखों से वात्सल्य का कोना-कोना झांक आए हैं।

सूरदास की एक ही आशा और अभिलाषा है- कृष्ण-लीलागान।

ऊधौ, तुम हौ अति बड़भागी।
अपरस रहत सनेह तगा तैं, नाहिन मन अनुरागी।
पुरइनि पात रहत जल भीतर, ता रस देह न दागी।

गोपियाँ उद्धव से व्यंग करते हुए कह रही हैं कि तुम बड़े भाग्यवान हो, जो तुम अभी तक कृष्ण के प्रेम के चक्कर में नहीं पड़े। गोपियों के अनुसार उद्धव उस कमल के पत्ते के सामान हैं, जो हमेशा जल में रहकर भी उसमें डूबता नहीं। यहीं याद आती है गीता की उक्ति ''**पद्मपत्रमिवाम्भसा**'', जिस प्रकार कमल के पत्ते जल में रहकर भी उससे लिप्त नहीं होता। जो मनुष्य सम्पूर्ण कर्मों को भगवान् में अर्पण करके और आशक्ति का त्याग करके कर्म करता है, वह जल से कमल के पत्ते की तरह पाप से लिप्त नहीं होता। अर्थात अशक्ति के बीच अनाशक्ति भाव से जीवन जीने के अद्‌भुत कला सीखाते हैं कृष्ण। भगवद् गीता तो न्याय, दर्शन, अध्यात्म, कर्मयोग, अधर्म पर धर्म का विजय का अदभूत ज्ञान देता है। गीता दर्शन का बीज ग्रंथ है। किन्तु साहित्य में कृष्ण का जो रूप मिलता है वह मनोहारी है। दर्शन धर्म से अधिक लीलाधर के स्वरूप में कवियों ने कृष्ण को चित्रित किया है। वह कालजयी है। कृष्ण काव्य में कृष्ण कि लीलाओं का अदभूत चित्र दिखता है। रीतकालीन काव्य में भक्ति के उपर श्रृंगार अधिक हावी होता हुआ दिखता है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'परम्परा और आधुनिकता' शीर्षक निबन्ध में परम्परा को स्पष्ट करते हुए लिखा है-'परम्परा', का शब्दार्थ है, एक का दूसरे को, दूसरे का तीसरे को दिया जानेवाला क्रम। वह अतीत का समानार्थक नहीं है। 'परम्परा' जीवन्त प्रक्रिया है जो अपने परिवेश के संग्रह-त्याग की आवश्यकताओं के अनुरूप निरन्तर क्रियाशील रहती है। द्विवेदी जी मानते हैं कि 'परम्परा मनुष्य को उसके परिपूर्ण रूप में समझने में सहायता करती है। आधुनिकता उसके बिना सम्भव नहीं है। परम्परा आधुनिकता को आधार देती है, उसे शुष्क और नीरस होने से बचाती है, उसके प्रयासों को अर्थ देती है, उसे असंयत और विश्रृंखल उन्माद से बचाती है।

अत: परंपाराओं से चली आ रही कृष्ण की छवि में भी परिवर्तन नूतनता का आना स्वाभाविक ही था।

रीतिकालीन कवियों का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय तो श्रृंगार है, तथापि भक्ति परक काव्य भी लिखे गए। इस काल के कवियों ने अपने काव्य में राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाओं का अद्‌भुत चित्रण किया है। उसमें श्रृंगारिकता के साथ-साथ भक्ति भावना भी विद्यमान है। बिहारी के अद्‌भूत कृष्ण भक्ति भावना को प्रकट करती उनकी पंक्तियाँ है -

'जमकरि मुँह तरहरि पर्यौ इहि धरहरि चित लाउ।
विषय तृषा परिहरि अजौ नरहरि के गुन गाउ॥'

यमरूपी हाथी के मुख के नीचे पड़े हो, यह समझकर निश्चय सिंहरूपी हरि में चित्त लगाओ और विषय की तृष्णा छोड़कर अब भी उस नृसिंह के गुण गाओ।

लीला और भक्ति का संयोग मन रमाने वाला होता है। चिंतामणि की अधिकांश रचनाएँ काव्यांग निरूपण पर आधृत है। गीत-गोविन्द, छंद-विचार में कृष्ण चरित्र का वर्णन मिलता है। इनकी भाषा ललित और प्रसंगानुकूल होने के कारण पाठक के हृदय में श्रृंगार का अनुपम संचरण कराती है।

'उत बूँदन के मुक्तागन ह्वै, फल सुन्दर भवै पर अनुपम आनि परै।
लखि यों दुति कंद अनंद कला, नंदनंद सिलाद्रव रूप धरै॥'

मतिराम रीतिकाल के प्रमुख कवियों में से एक हैं। मिश्रबंधु ने उन्हें 'हिन्दी नवरत्न' का स्थान दिया है। इनकी कविता स्वाभाविक, सरल अभिव्यक्ति के कारण अत्यंत उच्च कोटि की मानी जाती हैं। रीतिकालीन रचनाओं में श्रीकृष्ण श्रृंगारिकता से परिपूर्ण एक नायक के रूप में चित्रित किए गए हैं-

'मोर पखा 'मतिराम' किरीट में कंठ बनी बनमाल सुहाई।
मेहन की मुसकानि मनोहर कुंडल डोलनि मैं छविछाई॥
लोचन लोल विसाल विलोकनि को न विलोकि भयो बस माई।
वा मुख को मधुराई कहाँ कहौ मीठी लगै अँखियान लुनाई।

रूपसौन्दर्य का ऐसा सुंदर वर्णन सहज ही मन मोह लेता है। इसी माध्यम से वे श्री कृष्ण के प्रति अपनी भक्ति प्रतिपादित करते हैं।

पद्माकर में भावानुकूल भाषा प्रयोग का अद्भुत कौशल दिखता है, जो रीतिकालीन अन्य कवियों में दुर्लभ है। उन्होंने अपने काव्य में होली का हृदय स्पर्शी चित्र अंकित करते हुए गोपिका का श्रीकृष्ण के प्रति अलौकिक प्रेम को कुछ इस प्रकार व्यक्त किया है-

'कैसी करौं, कहाँ जाऊँ, कासे कहूँ,
कौन सुनै, कोऊ तो निकासो, जासै दरद बढ़ै नहीं।
एरी मेरी बीर! जैसे तैसे इन आँखिन तैं।
कढ़िगो अबीर, पै अहीर तो कढ़ै नहीं॥

पद्माकर कहते हैं कि एक गोपिका कृष्ण संग गुलाल खेल रही है। वह अपने आँख में पड़े गुलाल को जैसे-तैसे तो निकाल देती है किन्तु आँखों में बसे श्रीकृष्ण को निकाल नहीं पाती है और न ही उसे इसका कोई उपाय ही सूझ रहा है।

रीतिकालीन कवि रसखान श्रीकृष्ण लीला का अद्भुत वर्णन करते हुए कहते हैं-

सेस महेस, गनेस, दिनेस, सुरेसहु जाहिं निरन्तर गावैं
जाहि अनादि, अनन्त अखंड, अछेद, अभेद सुवेद बतावैं
नारद से सुक व्यास रटैं, पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछ पे नाच नचावैं

रसखान की इन पंक्तियों में बाल श्रीकृष्ण की लीला का अनुपम चित्रण है। सभी देवता जिसके गुण निरंतर गाते हैं, ऋषि-मुनि जिसका नाम रटते हैं। फिर भी पार नहीं पाते, उसी कृष्ण को ग्वाल बालाएँ कटोरे भर माखन के लिए नाच नचाती हैं। रसखान की ये पंक्तियाँ अद्भुत सौंदर्य का सृजन करती हैं-

धूर भरे अति सोहत स्याम जू, तैसी बनी सिर सुंदर चोटी।
खेलत खात फिरैं अँगना, पग पैंजनिया, कटि पीरी कछोटी॥
वा छबि को रसखान बिलोकत, वारत काम कला निधि कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी, हरि हाथ सों लै गयो माखन रोटी॥

बाल कृष्ण के सौंदर्य का वर्णन करते हुए रसखान कहते हैं कि कृष्ण के अति मनोहर सौंदर्य पर कामदेव अपनी करोड़ों कलाओं को न्योछावर करते हैं। पर देखिए उस कौए का भाग्य वह कौवा बहुत सौभाग्यशाली है, जो भगवान कृष्ण के हाथ से माखन रोटी छीन कर ले गया।

विनय-प्रेम-पचासा, प्रेम तरंग, कृष्ण-चारत सस्ता आदि में भारतेन्दु ने कृष्ण का मनोहर वर्णन किया है। भारतेंदु ने श्री कृष्ण के प्रति भक्ति प्रकट करते हुए 'चन्द्रवली' नाटक में कहा है कि-

ब्रज की लता पता मोहि कीजै।
गोपी-पद-पंकज-पावन की रण जामैं सिर भीजै॥
आवत जात कुंज की गलियन रूप-सुधा नित पीबै।
श्री राधे मुख, यह बर मुँहमाँग्यो हरि दीजै॥

कृष्ण लीला का यह मोहक स्वरूप मन में एक अनुराग और चमत्कार जगाता है। रीतिकालीन कवियों का मन श्रीकृष्ण और उनकी लीलाओं के चित्रण में खूब रमा है। इस तरह श्रीकृष्ण हिन्दी साहित्य के प्रत्येक काल में विभिन्न रूपों में आच्छादित हैं। निश्चय ही कृष्ण काव्य से साहित्य की श्रीवृद्धि हुई है। जन्माष्टमी पर उन्हें कोटि-कोटि प्रणाम।

भारतीय विचार और संस्कृति का वाहक होने का श्रेय हिन्दी भाषा को जाता है। हिन्दी एक संपन्न, समृद्ध भाषा है। यह ज्ञान-विज्ञान, मान-सम्मान, मिट्टी-पानी, देश के स्वाभिमान की भाषा है। हम गुलामी मानसिकता के कारण फिर भी अंग्रेजी के प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाये हैं किन्तु इस बीच निश्चय ही यह हर्ष का विषय है कि देश के 19 विश्वविद्यालयों में अभियंत्रिकी की पढ़ाई अब हिन्दी में होगी। आई.आई.टी. (बी.एच.यू.) में भी हिन्दी माध्यम से ही पढ़ाई की जा रही है। हिन्दी दिवस के अवसर पर समस्त साहित्य यात्रा परिवार के सदस्यों और पाठकों को हार्दिक बधाई।

इस अंक में मूर्धन्य रचनाकार शरद पगारे जी का 'ऐतिहासिक कथानक हेतु नई जमीन की तलाश' यशस्वी साहित्यकार प्रकाश मनु जी की कृति 'आदरणीय रामदरश मिश्र पर अंतरंग', प्रो. डॉ. रत्नेश्वर मिश्र जी द्वारा 'सीगिरिया पुराण की समीक्षा, डॉ. राम निरंजन जी का परिमलेन्दु पर डॉ. रामसिंहासन सिंह का आलेख, प्रो. दिलीप कुमार का 'आधुनिक हिन्दी काव्य में आख्यानपरता' आलेख सहित कई अन्य महत्वपूर्ण आलेखों, कहानियों तथा उत्कृष्ट पुस्तक समीक्षाओं के साथ **'साहित्य यात्रा'** के इस अंक को संग्रहणीय बनाने की चेष्टा की गई है। हम विभिन्न महत्वपूर्ण आलेखों के साथ बिहार के ख्यातिलब्ध साहित्यकार तथा समालोचक डॉ. विष्णु किशोर झा 'बेचन' पर कुमार कृष्णन जी का 'सारस्वत व्यक्तित्व के धनी डॉ. बेचन' आलेख प्रकाशित कर रहे हैं।

आशा है सुधी पाठकों का स्नेह पूर्ववत मिलता रहेगा।

कलानाथ मिश्र

जाग तुझको दूर जाना

हिन्दी साहित्य की आधुनिक युग की मीरा कही जाने वाली प्रतिभावान कवयित्री महादेवी वर्मा का विगत 11 सितंबर को पुण्यतिथि थी। महाप्राण निराला ने उन्हें 'हिन्दी के विशाल मंदिर की सरस्वती' कहा है। इस अंक में उनकी पुण्यतिथि पर उनको भावभीनी श्रद्धांजलि निवेदित करते हुए उन्हीं की कविता 'जाग तुझको दूर जाना' इस अंक की सुरूआत की जा रही है।

चिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना!
जाग तुझको दूर जाना!

अचल हिमगिरि के हृदय में आज चाहे कम्प हो ले!
या प्रलय के आँसुओं में मौन अलसित व्योम रो लेय
आज पी आलोक को ड़ोले तिमिर की घोर छाया
जाग या विद्युत शिखाओं में निठुर तूफान बोले!
पर तुझे है नाश पथ पर चिन्ह अपने छोड़ आना!
जाग तुझको दूर जाना!

बाँध लेंगे क्या तुझे यह मोम के बंधन सजीले?
पंथ की बाधा बनेंगे तितलियों के पर रंगीले?
विश्व का क्रंदन भुला देगी मधुप की मधुर गुनगुन,
क्या डुबो देंगे तुझे यह फूल दे दल ओस गीले?
तू न अपनी छाँह को अपने लिये कारा बनाना!
जाग तुझको दूर जाना!

वज्र का उर एक छोटे अश्रु कण में धो गलाया,
दे किसे जीवन-सुधा दो घँट मदिरा माँग लाया!
सो गई आँधी मलय की बात का उपधान ले क्या?
विश्व का अभिशाप क्या अब नींद बनकर पास आया?
अमरता सुत चाहता क्यों मृत्यु को उर में बसाना?
जाग तुझको दूर जाना!

कह न ठंढी साँस में अब भूल वह जलती कहानी,
आग हो उर में तभी दृग में सजेगा आज पानीय
हार भी तेरी बनेगी माननी जय की पताका,
राख क्षणिक पतंग की है अमर दीपक की निशानी!
है तुझे अंगार-शय्या पर मृदुल कलियां बिछाना!
जाग तुझको दूर जाना!

चर्चित ऐतिहासिक उपन्यासकार डॉ. शरद पगारे जी को 2020 को 'व्यास सम्मान' से सम्मानित किया गया है। प्रस्तुत है ऐतिहासिक कथानक की तलाश से सम्बद्ध उनके विचार।

ऐतिहासिक कथानक हेतु नई जमीन की तलाश

शरद पगारे

इस काम में पुरातात्व के साक्षों, इतिहास इतर सामग्री, लोक मान्यताओं ने भरपूर मदद की। कुछ अलग करने के जुनून में खोज करने लगा। अचानक परममित्र बाबा गीते से मिलने बुरहानपुर गया। उसे मालूम था मुझे पुराने भवनों, खण्डहरों से प्यार है। अपने मित्र मिलन मिठाई भंडार के मालिक के साथ बुरहानुपर से 15 किलोमीटर दूर उतावली नदी किनारे बसे गाँव, महल गुलारा ले गया। उतावली के दोनों तटों पर दो बारादरिया थी। एक दीवार बना देने से उतावली जल प्रपात बन गई थी।

प्रसिद्ध इतिहासकार एच.जी. वेल्स मानते है, ''इतिहास का अपना रोमांस है। जो मानव की चारित्रिक विशेषताओं, महत्वाकांक्षाओं, विसंगतियों का दस्तावेज है''। स्कूल ही नहीं पोस्ट ग्रेजुऐशन की पढ़ाई तक इतिहास मेरा प्रिय विषय रहा। इतिहास का प्रोफेसर बनने के बाद उसके गहन अध्ययन शोध में डूब गया। आचार्य चतुरसेन शास्त्री एवं श्री वृदावनलाल वर्मा के साथ ही श्री कन्हैया लाल माणिकलाल मुंशी के जय सोमनाथ, राजाधिराज, पाटन का प्रभुत्व ने गहरे तक प्रभावित किया। उनके उपन्यासों में वर्णित ऐतिहासिक रोमांस युग के सजीव वर्णनों ने प्रभावित एवं वैसा लिखने की प्रेरणा दी। इसी बीच विश्व प्रसिद्ध रूसी लेखक टालस्टाय के युद्ध और शांति War and Peace ने मानवीय चरित्र के नए अध्याय उद्घाटित किए। रेखांकित किया कि महत्वाकांक्षा के युद्ध मानव उसकी सभ्यता संस्कृति का नाश करते आंसू, रक्त जले गाँव, घर-शव छोड़ते है, वहीं शांति मानव कल्याण का एक मात्र मार्ग है। उपन्यास का नायक फ्रेंच सम्राट नेपोलियन बोनापार्ट है। उसकी विश्व विजयी महत्वाकांक्षा, युद्ध की जननी, मानव विरोधी थी। उपन्यास नायक इतिहास प्रसिद्ध चरित्र है वही प्रसिद्ध अंग्रेजी उपन्यासकार चार्ल्स डिकिन्स ने ऐतिहासिक

कथानक के दूसरे पहलू से परिचित कराया। उनके विश्व पाठक मान्य ऐतिहासिक उपन्यास ए टेल ऑफ टू सीटीज, दो शहरों की कहानी ने सन 1789 की फ्रांस की राज्यक्रांति ना जन क्रांति ने समय तथा आम आदमी को महानायक बनाया। यदि सामंती प्रथा ने शोषण अत्याचार, मानवीय गरिमा पर अत्याचार किए तो क्रांति ने भी उनके बेकसूरों पर झूठे आरोप लगा गुलोटीन (फाँसी) पर चढ़ा क्रांति को कलंकित किया। डिकिन्स ने ऐतिहासिक उपन्यास लिखने हेतु नई जमीन तलाशने को प्रेरित किया। डिकिन्स ने एक तथ्य और पेश किया, ''सामन्तवादी अन्याय शोषण, अत्याचार के खिलाफ की गई क्रांति अपने ही बच्चों को खाने लगी। यही सन् 1920 को बोल्शेबिक क्रांति ने किया। व्यक्तिगत चर्चा में डॉ. सूर्यप्रकाश दीक्षित जी ने मुझे कहा'' पगारे जी ऐतिहासिक कथानक कठोर परिश्रम की मांग करता है। इतिहास का अध्ययन एवं शोध की माँग करता है। इसे आज कौन करना चाहता है? ''मैंने तय किया, करने का। श्री वृंदावनलाल जी वर्मा एवं आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी ने इतिहास प्रसिद्ध चरित्र लिये, जिन पर प्रचुर सामग्री इतिहास में उपलब्ध है। मैंने इतिहास के अज्ञात, अल्पज्ञात, और इतिहास के आलोकवृत्त से दूर अंधेरे में, पार्श्व में छिप चरित्रों को ढूंढ निकालने हेतु शोध का बीड़ा उठाया।

नीरज जी की निम्न कविता प्रेरक बनी-
मिला न इतिहास की स्याही
कानूनों (इतिहासकारों) को ना खुश करके
मैंने उनकी भरी गवाही...

इस काम में पुरातत्व के साक्षों, इतिहास इतर सामग्री, लोक मान्यताओं ने भरपूर मदद की। कुछ अलग करने के जुनून में खोज करने लगा। अचानक परममित्र बाबा गीते से मिलने बुरहानपुर गया। उसे मालूम था मुझे पुराने भवनों, खण्डहरों से प्यार है। अपने मित्र मिलन मिठाई भंडार के मालिक के साथ बुरहानुपर से 15 किलोमीटर दूर उतावली नदी किनारे बसे गाँव, महल गुलारा ले गया। उतावली के दोनों तटों पर दो बारादरिया थी। एक दीवार बना देने से उतावली जल प्रपात बन गई थी। एक पुलिया से दोनों बारादरियों के लिए पहुँच मार्ग बना दिया था। बारादियों की पुलिया से दोनों बारादरियों के लिए पहुंच मार्ग बना दिया था। बारादियों की पुलिया खोखली होने से पानी उनके नीचे से कल...कल...कल के कर्णप्रिय संगीत के साथ बहता था। दोनों ओर सघन अमराई थी। पूरे चांद की रात में लगता उतावली नहीं जलप्रपात झरना मधुर गीत गा रहा है। सारा मंजर मनभावन दिलकश। बारादरियों पर भारत सरकार की तख्ती बता रही थी कि शहजादा खुर्रम (शांहजदा) ने सन 1614 में अपनी महबूबा रखैल गुलार की याद व मुहब्बत में इन्हें बनवाया। मैं नोटकर लाया। इतिहास से गुलरा गायब मिली। जबकि ठोस पुरातनी भवन चीख-चीख चिल्ला कर गवाही दे रहा था। मैं हैरान परेशान, आगरा के ताज-महल से 24 साल पहले शाहजहां ने इसे गुलार के लिए बनवाया ही नहीं गाँव का नाम भी महल गुलारा रख दिया। गुलारा, मुमताज से जादा चहेती थी। महल गुलारा और बारादरिया ऐतिहासिक गवाह थी। तब मैंने उपन्यासिका ''ताजमहल के पहले'' लिखी जिसे नई दुनिया के दीपावली विशेषांक ने प्रकाशित किया। पाठक दंग रह गये। श्री राजेन्द्र माथुर एवं श्री राहुल बापुते जैसे सम्पादकों ने मुझे चार्ल्स डिकिन्स के 'टेल ऑफ टू सीटिज'

के समान निमाड-मालवा के ग्रामीण जीवन की पृष्ठभूमि पर इसी विषय को लेकर संपूर्ण उपन्यास लिखने की प्रेरणा दी। मैं गुलारा से प्यार करने लगा। इतिहास से सन 1614 की कथा उठाई। अहमद नगर जीतने से पहले अब्दुर्रहीन खान ए खाना असफल हुए तब नूरजहां की सिफारिश पर शहजादा खुर्रम आगरा से दक्षिण की तरफ भेजा गया। आगरा से शाही लवाजमे सेना के साथ वह बुरहानपुर आया। वहाँ रसद, हथियार इकट्ठा करने रूका। इसी बीच करारा गांव के गरीब किसान की बेहद हसीन बेटी को तवायकों की बोरवाडी का दलाल पहलवान याकूब खरीद लाया और उसे एक कोठे की मालकीन मुन्नी जान को बेच दिया। मुन्नी जान ने नाना प्रकार के उबटनों, तेल, इत्र, फुलले एवं नाना प्रकार के प्रसाधनों से उसमें चार चाँद लगा कर उसे दिलकश बना दिया। नाच के अभ्यास से कमनीय काया मदमदाती हो गई। बोरवाडी, बुरहानुपर ही नहीं सारे खानदेश निमाड-मालवा अश अश करने लगा।

जो मुजरा हिन्दुस्तान की किसी मशहूर ओ मारूफ तवायफ यहाँ तक की किसी मीना कुमारी या उमरावजान अदाकारा रेखा तक ने पेश नहीं किया। उसे मैन गुलारा से उतावली के किनारे पूरे चाँद की रात में पेश कराया। हुआ योंकि मेरे मामाजी गोविंदराव जोशी बुरहानपुर में रवेन्यू इंस्पेक्टर थे। छुट्टियों में हम बुरहानपुर गए। किसी गाँव में दौर पर जाते समय मुझे व मेरी माँ, अपनी बहन को भी ले गए। रात 8-9 बजे मैदान में गाँव वाले ने मंच सजाया गैस बत्तियों से मंच आलोकित हो उठा। सामने अपनी-अपनी दरिया पर ग्रामीण दर्शक स्त्री-पुरूष जम गए। ग्रामीण साजिन्दों ने अपनी-अपनी जगहें संभाली। माँ ने खिड़की में बैठा दिया। पटवारी ने भाई-बहनों के लिए कुर्सियाँ लगा दी। तभी साजिन्दों के कर्णप्रिय संगीत के साथ मयूरी, छम....छम.....छमछमछम. ...छम घुँघरुओं में गोरे गुलाबी पगों के साथ छमछमाती मंच पर अवतरित हुई। कोमल कमनीय तन्वेगी गोरी गुलाबी मन-चिन्ताकर्षक काया गोरे गुलाबी चुम्बन योग्य एक ओर के भरे कपोल एवं गोल चिकने चिबुक पर हरा गोदना, रसीले लाल पतले अधर महाराष्ट्रीयन शैली की हरे रंग की लांग की साड़ी की अवमानना करती मदभरी पिंडलियां और गोरी पतली कमर में खुंसे मोर पंखों का फैला पंख तथा जूडे की शोभा बढ़ाते मोर पंख, मदमदाते काजल रचित चंचल, मत्स्यनयन साजिन्दों के सुरों व गायक के बोलों के साथ मयूरी थिरकते नाचने लगी। लगा स्वर्ग से उर्वशी, मयूरी बन मंच पर आ उतरी है। मेरे किशोर अवचेतन मन आत्मा में सदा के लिए उसने कब्जा जमा लिया। गुलार बन वही मयूर नृत्य शहजादा खुर्रम के सामने उतावली के किनारे पूरे चाँद की रात पेश हुआ।

शहजादा की परकाया में प्रवेश किया। दौड़ कर गुलारा के पास पहुँचा। साड़ी के पल्ले से पेशानी का पसीना पोंछ रही थी। नाजुक सुचिक्कण कंधो को हिलाते प्रशंसा ''ओह गुलार.......गु.... ..लारा.......साहिब-ए-आलम ने अनेक मुजरे देखे लेकिन आप-सा मयूरी नाच नहीं देखा। लगा मयूरी नाच रही है। आज से आप बेगम.....गुलारा बेगम कहलाएगी। बेगम का खिताब अता करते है। बोलो और क्या चाहती है?

''गुस्ताखी माफ हुजूर। ये उतावली और करारा गाँव मेरी माँ है। चाहती हूँ

साहिब-ए-आलम उतावली के दोनों किनारों पर दो बारादरियाँ, जिन्हें पुलिया से जोड़ने की मेहरबानी करेंगे तो हमारी मोहब्बत अमर हो जाएगी। उतावली पर दीवाल बन जाने पर जलप्रपात के रूप में वह इस जगह की खूबसुरती दुगुनी होगी।'' शर्म से गोरे गुलाबी कपोल अधिक गौरे गुलाबी हो उठे। शर्म से पलके मुंद गई।

''जहे नसीब। अल्लाह क्या बात है आप खूबसूरती की प्रेमिका है। मंजूर। सौ फीसदी मंजूर। इतने ही नहीं आज से ना! अभी से यह इलाका महल गुलारा कहलाएगा। अब तो खुश।'' आज भी यह इलाका महल गुलारा नाम से विख्यात है। गर्दन झुका चारों नाजुक अंगुलियाँ जो अँगुठा रख तीन बार कमर तक झुक सलाम किया।

गुलारा बेगम को मैंने पाठक प्रिय बनाने हेतु रूमानी रोमांचक के साथ उसमें रोमांस का तडका लगाया। यह शैली गंधर्वसेन, बैगमजैनाबादी एवं पाटलीपुत्र की सामज्ञी जैसे मेरे उपन्यासों में भी अपनाई। मैंने, हर चरित्र को सजीव एवं जीवंत किया। जैसा देखा वैसा ही पाठकों ने ही नहीं युग के साहित्यकारों ने भी देखा-परखा। प्रसिद्ध कथाकार बाबूजी, जैनेन्द्र कुमार ने आशीष दिया ही नहीं वरन मुझे अपना मानसपुत्र भी बनाया। उन्होंने गुलारा बेगम पढ़ने के बाद लिखा, ''रुचि बराबर बनी रहती है। ऐतिहासिक विषय के साथ न्याय करते हुए उपन्यास की माँग को निभाया है।'' प्रसिद्ध ऐतिहासिक कथाकार 'मानस के हंस' के सर्जक अमृतलालजी नागर ने लिखा, ''उपन्यास की उठान सहज है। एक खोई हुई ऐतिहासिक पात्री की खोज के लिए बधाई।'' उन्होंने अपना उत्तराधिकारी बताते कहा,'' शरद जी। बिना इतिहास के अध्ययन एवं शोध के कलम मत चलाना। ये रचना को प्रमाणिक बनाते हैं।'' मैंने गाँठ बांध ली। डॉ. धर्मवीर भारती जी की कसौटी पर खरा उतरा, उन्होंने 'गुलारा बेगम' पढ़ने के बाद लिखा ''प्रासंगिक कथाएँ बड़ी अच्छी बन पड़ी है। इनायत खान, सलमा, छंगी की माँ अमीना वाले प्रसंग प्रभावशाली है। साथ-साथ ही निमाड की प्राकृतिक सुन्दरता अत्यंत लुभावनी है।'' आवारा मसीहा, के सर्जक श्री विष्णु प्रभाकर ने उत्साह बढ़ाया ''इस में युग का प्रामाणिक वर्णन एवं संप्रेषणीयता है। कहानी कहने का ढंग आकर्षक है। भाषा युगानुरूप है और उसे संवारा भी है।'' पत्र-पत्रिकाओं में उत्साहवर्धक समीक्षाएँ आई मराठी, गुजराती, उर्दू, मलयालम एवं पंजाबी में अनुदित एवं प्रकाशित हुई है गुलारा बेगम और यह उपन्यास साहित्य के क्लासिक की श्रेणी में आ रहा है। मेरे पहले की उपन्यास गुलारा बेगम को मध्य प्रदेश साहित्य परिषद ने विश्वनाथ सिंह पुरस्कार से सम्मानित किया। राजकमल प्रकाशन ने गत वर्ष हिन्दी में ग्यारहवां संस्करण प्रकाशित किया है। गुलारा बेगम लिखने के बाद में समझ गया कि मैंने ऐतिहासिक कथानक की नई जमीन तलाश कर मन चाही, मनपसंद विद्या प्राप्त कर ली है।

मेरा अगला अर्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'गंधर्व सेन' था। अर्ध ऐतिहासिक इसलिए कि उपन्यास के महानायक उज्जयिनी नरेश गंधर्वसेन और युग की अनिद्य रूपसी जैन साधवी की प्रणय कथा उसमें से गायब है। इसका उल्लेख ग्यारवहीं सदी के जैन आचार्यों लिखित कृतियों में मिलता है। भारतीय विद्या भवन के प्राचीन इतिहास से पता चलता है कि ईसापूर्व की दूसरी सदी में अवंतिराज्य की राजधानी उज्जयिनी में गर्दभिल्लवंश शासन कर रहा था। जबकि डॉ. राजबली

पाण्डैय के प्राचीन भारत का इतिहास उन्हें ईसा बाद की दूसरी सदी का मानते हैं। गंधर्वसेन इसी राजवंश का था। उनकी प्रणय कथा की जानकारी ग्यारहवीं सदी के जेनाचार्य हरिविजय सूरी, जिनचन्द्र सूरी, एवं जयचंद्र सूरी के कालक कथा एवं कालकाचार्य कथा में मिलती है।

ग्यारवीं सदी में एक महत्तवपूर्ण ऐतिहासिक घटना हुई। गजनी के एक वेश्या के बेटे सुलेमान के बेटे महमूद गजनवी ने गजनी का शासक बनने के बाद भारत पर ग्यारह हमले किए तथा मथुरा कन्नौज खासकर देश प्रसिद्ध सोमनाथ मंदिर की संपत्ति को लूट प्रसिद्ध ज्योर्तिलिंग की शिवपिण्डी का घोर अपमान कर मंदिर सहित उसने नष्ट किया। जैनाचार्य श्रमण ऐतिहासिक घटना से अनजान थे।

कालाचार्य कथानक के अनुसार घाट नरेश महाराज बैरी सिंह की दो संतानें कालक एवं सरस्वती थे। गुजरात की धार नगरी के वे शासक थे। उनकी महारानी सुर सुंदरी, अपूर्व रूपसी थी। अतः राजकुमारी सरस्वती भी अपनी माँ के समान दैवीय रूप और लावण्य की सम्राज्ञी थी। जैनाचार्य जयचंद्र सूरीश्वर से प्रभावित राजकुमार विश्वरूप एवं बहन राजकुमारी सरस्वती माता-पिता के कडे विरोध के बाद जैन श्रमण बन गए। विश्वरूप आचार्य कालक कहलाए। जैन संघ साधवी सरस्वती के साथ धर्म प्रचार हेतु धर्मनगरी उज्जयिनी आए। उज्जयिनी ही सारे मार्ग से साधवी सरस्वीत की चिनान्शुक, चित्ताकर्ष नजरें फिसल जाने वाली कमनीय काया की चर्चा मात्र ने रूप सौंदर्य प्रेमी महाराज गंर्धवसेन को गहरे तक प्रभावित किया। वह उसे पाने हेतु आकुल व्याकुल हो आया। चौबीस घड़ी उसे हंसत, मुस्कुराती गजगामिनी सरस्वती ही दिखाई देती। मन से मजबूर गंधर्वसेन ने आचार्य कालक को विवाह प्रस्ताव भेजा। प्रस्ताव ठुकराने पर सरस्वती का बलात् अपहरण कर लिया।

उज्जयिनी के जैन समुदाय के साथ कालक ने अपनी भगिनी को वापस मांग की मना करने पर पहले शिष्य राजाओं से मदद मांगी। सभी गंधर्वसेन से डरते थे अतः मना कर दिया। तब गांधार से कनिष्कों की सेना ला गंधर्वसेन पर हमला कर दिया। इस बीच सरस्वती विक्रम नामक बेटे की माँ बन गई। युद्ध में गंधर्वसेन मारा गया। कुषानों ने अंवति पर कब्जा कर लिया। माँ बनने के बाद साधवी की भावनाओं, संवेदनाओं में आमूल चूल परिवर्तन हो गया। माँ के मन में पुत्र के लिए माया, मोह, ममता, स्नेह, वात्सल्य का ज्वार हिलोरें लेने लगा। बेटे विक्रम को उज्जयिनी अंवति का सम्राट बनाने के पहले भाई कालक से मदद मांगी। गंधर्वसेन से घृणा करने के कारण उसने व कुषाणों ने मना कर दिया। तब दक्षिण भारत की सैन्य की सहायता से उसके बेटे विक्रम ने कुषाणों को मार भगाया और वह सम्राट बना। साधवी सरस्वती एक माँ के अन्तर्द्वंद्व की कथा 'गंधर्वसेन' है। उसकी काया में प्रवेश कर मैं स्वयं पहले राजकुमारी फिर साधवी, उज्जयिनी की सम्राज्ञी एवं एक बेटे विक्रम की माँ बन उसे सम्राट बनाने में सफल हुआ।

'बेगम जैनाबादी' मेरे ऐतिहासिक उपन्यास लेखन का अगला पड़ाव था। उसका पूरा नाम हीराबाई था। वह बुरहानपुर से होकर बहने वाली ताप्ती नदी के उस पार के जैनाबाद, जो बुरहानपुर का कस्बा था वहाँ की थी। औरंगजेब द्वारा उसे जैनाबादी का खिताब देने से वो बेगम हीराबाई

जैनाबादी नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हुई। अतः गुलारा बेगम के बाद बुरहानपुर की बोरवाड़ी की दूसरी मशहूर-ओ-मारूफ नाचगाने गुजरे में सारे खानदेश में लोकमान्य, कला प्रेमियों की चहेती थी। जिसका शिकार शहजादा खुर्रम के बाद धर्मान्ध, कट्टर, प्रेमविहीन, कैक्टेसी किरदार का औरंगजेब हुआ। उसकी हत्या पर औरंगजेब रोते हुए बोला, ''प्यार कितना प्यारा होता है लेकिन उसका अंजाम कितना बुरा होता है।'' हीरा जैनाबादी घरेलू मुगलराजनीति की शिकार हुई। आइए जानें मेरी जुबानी-

हर तवायफ का भी एक बाप होता है जिसे सिर्फ और सिर्फ तवायफ की माँ ही जानती है। बेगम जैनाबादी का भी पिता था। कथा की मांग के लिए साहित्य के काल्पनिक यथार्थ की मदद से उसे गढा। हीराबाई की माँ शबनम भी बोरवाडी की बेहद शोख, चंचल तवायफ थी। मुजरों की शान। बुरहानपुर के रईस सेठ लाला अमरनाथ की रखैल बन गई। उस जमाने के चंदुसेठ ने भी शहनाज हसीना को रखैल बना लिया था। लाला उसे जैनाबाद फार्म हाउस लाया जहाँ हीरा पैदा हुई। लाला की मौत के बाद बेटी समेत शबनम (काल्पनिक नाम) वापस बोरवाड़ी आ गई। हीरा अलौकिक खूबसूरत थी। नाच-गाने, मुजरे की अदाओं, नाज-नखरों ने चुम्बकीय आव भर दी। बुरहानपुर ही नहीं खानदेश निमाड के शैदाइयों की मलिका बन बैठी। शाहजहाँ का साढू सैफखान की बेगम मलिकबानू मुमताज महल की बहन होने से सैफ खानदेश का सूबेदार बना। हीराबाई की प्रशंसा सुन अय्याश सैफ ने मुजरे के लिए उसे जैनाबाद बुलाया। उसकी खूबसूरती से प्रभावित हो जबरन रखैल बना अपने हरम में कैदी कर उसकी सरपरस्त तवायफ दादी को भगा दिया। रो गा बेचारी वापस बोरवाड़ी चली गई। प्रकरण इतिहास काल्पनिक यथार्थ के समन्वय से सृजित है।

शहजादा औरंगजेब की कहानी में प्रवेश होता है। इतिहासकार इनायत उल्ला के अहकाम-ए-आलमगीरी के अनुसार बादशाह शाहजहां ने शहजादा औरंगजेब को दखन का सूबेदार बना औरंगाबाद जाने का फरमान जारी किया। आगरा से रवाना हो औरंगाबाद जाते वक्त वह बुरहानपुर गर्मी के मौसम (मई-जून) में पहुंचा। आगरा से लंबी यात्रा के कारण उसने कुछ समय बुरहानपुर में आराम किया। पादिशाहनामा (भाग 1 एवं 2) में अब्दुल हामिद खां लाहौरी लिखता है- शहजादा अपनी खाला (मौसी) से मिलने ताप्ती पार कर पिछले दरवाजे से जो हिरन बाग में खुलता है, सूबेरदार के महल में दाखिल हुआ। दोपहर ढल रही थी। हरम की बांदिया-कनीज जिनमें तवायफ हीराबाई भी थी, बाग में टहल मस्ती कर रही थी। अचानक हीराबाई को आम के पेड़ पर अमिया (अधपकी साग) दिखी। तोड़ने उछली। औरंगजेब ठिठक निहारने लगा। उछलने से उसकी घाघरी गोल गोल घूम ऊपर उठने से गोरी गुलाबी पुष्ठ पिडलियां कदली समान जंघाओं की बिजली औरंगजेब के दिल पर गिर घायल कर गई। मुहम्मद वारिस के पादिशाह नामा के अनुसार हीराबाई पहली नजर में औरंगजेब के दिल को घायल कर गई। इतिहासकार शाहनवान खान लिखता है ''शहजादे की उपस्थिति से बेखबर हीराबाई तोड़ी अमिया को चूसते चाटते इठलाती, बलखाती बादी द्वारा औरंगजेब की उपस्थिति बताने के बाद भी बेपवाह हरम में चली गई। शाहनवाज खान लिखता है मौसी के हमर में पहुंचने के बाद शहजादा बेहोश हो गया। सर जदूनाथ सरकार ने औरंगजेब के उपाख्यान में इसका उल्लेख किया है। स्टोरिया-द-मोगोर में निकोलाई

कोन्टी भी समर्थन करता है। श्री मुनीलाल ने भी औरंगजेब की जैनाबादी के लिए दीवानगी का उल्लेख विस्तार से किया है। प्रो. वी.एन. लुणिया भी औरंगजेब में इसका समर्थन करते है। उधर हीराबाई नर्तकी होने से इठलाती बलखाती नाजो अंदाज से मदमाती चाल से हरम में चली गई। अन्य बांदियां भी भाग खड़ी हई। हीराबाई अनुपस्थित होते हुए भी दिल लूट ले गई। उसके गोल मादक निस्तम्बो को नर्तन अभी भी नाच रहा था।

हरम में पहुँचने पर औरंगजेब को खाला बेगम ने बड़े प्यार से शानदार इस्तकबाल किया। गर्मी से निजात दिलाने बांदिया पंखा झलने लगी लेकिन बैचेन दिल की नजर हीरा बाई को खोज रही थी। खाला बेगम ने शानदार दावत दी और उनके हुक्म पर हीराबाई ने मुजरा पेश किया। अपनी कमनीय देह पर इतना नियंत्रण था कि हुक्म मिलने पर एक ही कमान-सी भौंह नाचती थी। रही सही कसर मुजरे ने पूरी कर दी। बिदा होने के पहले बड़ी झिझक से इल्तजा की,'' खाला हुजूर! गुलाम अपनी ख्वाहिश पेश करना चाहता है।'

''बेहिचक कहिए शहजादा बेटे।'

''गुलाम को आपकी हीराबाई पसंद आ गई है। यदि......।'' झिझक के कहा।

''साहिला बेगम की पेशानी पर बल पड़ गये। बड़ी देर खामोशी पसरी रही जिसने औरंगजेब को व्याकुल आकुल कर दिया।

''ठंडी लम्बी सांस ले खाला ने कहा, ''शहजादे बेटे! हीरा आपके खालू की चहेती है। आपकी देने के पहले वो जालिम उसे खत्म कर देगा। आपको ना मिलेगी ही नहीं गरीब जान से जाएगी।''

जवाब दिए बिना औरंगजेब बुरहानपुर के मुगल महल लौट आया। अपनी रातों की नींद और दिल का चैन जैनाबाद छोड़ आया। उसकी बैचेनी ने खास गुलाम मुरीद औरंगजेब के समान कट्टर उसे एक देवदूत मानने वाले मुर्शीद कुली से औरंगजेब की बैचैनी देखी न गई, ''मेरे मौला! क्या तकलीफ है। हुक्म करिए गुलाम साहिब-ए-आलम पर जान न्यौछावर कर देगा।''

औरंगजेब ने हीराबाई के बारे में बताने पर हंसा, ''बस इतनी-सी बात। मेरे आका हुक्म दीजिए गुलाम अभी उठवा लेगा।'

''ना....ना......खून खराबा होगा। फिर सैफ खान हमारे खालू (मौसा) और बादशाह सलामत के साढू है। हीरा बाई के बदले हमारे हरम की कोई हसीनबंदी देने को हम तैयार है।''

सैफ मान गया। छतरबाई के बदले हीराबाई को भेज दिया। औरंगजेब की मुराद पूरी हुई। उसने हीरा को बेगम के साथ जैनाबादी का खिताब दिया। औरंगाबाद ले गया। कालान्तर में उसकी हत्या कर दी गई।

मेरा 'बेगम जैनाबादी उपन्यास भी हिट हुआ। पाठक यह जानकार हैरान थे कि मुगल इतिहास का खलनायक औरंगजेब भी किसी हसीना के नयनबाण का शिकार हो सकता है? विषय

अछूता, प्रेम के कारण रोमांचक, रूमानी, रहस्यपूर्ण तथा घटना प्रधान था। यदि बेगम जैनाबादी जीवित रहती तो उसका प्यार खलनायक को कट्टर नहीं बनने देता। उपन्यास के अब तक छः संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन और सागर का अखिल भारतीय दिव्य पुरस्कार से सम्मानित हुआ है। एन.एस.डी. दिल्ली से संबंधित सुश्री भारती शर्मा की संस्था क्षितिज शिएट ग्रुप ने इसका नाट्य रूपांतर कर 10-11 नवंबर 2010 को श्रीराम सेंटर मंडी हाउस नई दिल्ली में सफल मंचन किया। दिल्ली से प्रकाशित राष्ट्रीय समाचार पत्रों ने प्रशंसात्मक और प्रश्नात्मक टिप्पणियाँ की क्योंकि विषय अछूता व कैक्टसी औरंगजेब की मुहब्बत के रहस्य को उजागर कर रहा था।

अगला पड़ाव पर भारतीय इतिहास के पहले महान सम्राट अशोक मौर्य की माँ धर्मा पर था। उसे महानायिका बना 'पाटलीपुत्र की सम्राज्ञी' पर 550 पृष्ठों का ऐतिहासिक उपन्यास लिखा। यह सर्वमान्य है ''माता प्रथमो गुरु'' माँ सन्तान की पहली गुरु है। अशोक को महानता के सद्‌गुण किसने दिए? सवाल परेशान करने लगा। विषय अछूता था। इतिहासकारों यहाँ तक कि विदेशी विन्सेंट स्मिथ ने भी तीन सौ से अधिक पृष्ठों में अशोक की महानता के पंचमुख गुणाए परंतु सभी ने उसकी माँ धर्मा की अवमानना की। इतिहास के पांच पैरेग्राफ हैं-धर्मा अशोक सम्राट की माँ थी। वे चम्पा के गरीब दरिद्र ब्राह्मण की बेटी थी। (नाम नदारद) वह दैवीय सौन्दर्य (नया शब्द गढा) की मालकिन थी। गरीब ब्राह्मण उसे सम्राट बिम्बसार को भेंट में दे आया। बिम्बसार के रनिवास में 16 पटरानियाँ पहले से थी। (नाम एक का भी नहीं)। धर्मा को रनिवास में भेजने पर उसे मालिश करने वाली नाइन बना दिया गया। सम्राट की मालिश करने जाना।

बिम्बसार उसके दैवीय सौन्दर्य को देख चौंका। पूछा। ''तुम कौन हो? रोते-रोते धर्मा ने सारी कथा सुनाते कहा,'' हम तो मौर्यवंश की संतानों की माँ वंशजा बनने आए थे। लेकिन रनिवास के षड्‌यंत्र ने नाइन बना दिया।

''एक नाइन मौर्य वंशजा कैसे हो सकती है?'' तब धर्मा ने सारी कथा एवं पवित्र ब्राह्मणवंशी होने की कथा सुना दी। सम्राट ने तत्काल उससे विवाह कर सम्राज्ञी पद दिया। उस चम्पा के गरीब दरिद्र ब्राह्मण की दैवीय रूपसी धर्मा की गरीब परिवार में जन्म नाइन बनने से लेकर मौर्य सम्राज्ञी तथा अशोक महान की जननी, मौर्य वंशजा बनने तक की यात्रा बड़ी रोमांचक, रूमानी, रहस्यपूर्ण लगी। तब मैंने मेरे सुपुत्र डॉ. सुशीम पगारे के मित्र ज्योतिषाचार्य डॉ. दीपक दुबे से धर्मा की जन्म पत्रिका धर्मा की जीवनी के फिचर्स बता बनवाई। राहु, केतु, शनि, गुरू, चन्द्र सूर्य, मंगल ग्रहों की स्थिति का अध्ययन कर दीपक ने पत्रिका बना कर दी। पाटलीपुत्र की सम्राज्ञी की भूमिका में प्रस्तुत किया। धर्मा ने सौतनों से ही नहीं युग के महान राजनेता विष्णुगुप्त चाणक्य कोटिल्य से टक्कर ले उसकी हत्या करवाई। 550 पृष्ठों के उपन्यास में युवराज अशोक एवं विदिशा के श्रेष्ठी देवगुप्त की अलौकिक रूपसी देवी से उसकी यथार्थवादी काल्पनिक प्रेमकथा को भी जोड़ा। उसके राज्यारोहण, धर्मा की दो सहेलियों की कथाएँ भी रोचक बन पड़ी। मित्रों

मन-मुराद माँ सरस्वती ने पूरी की।

नया उपन्यास वैशाली की जनपद कल्याणी आम्रपाली प्रेस में है। आचार्य चतुरसेन की वैशाली की नगरवधू के विरुद्ध आम्रपाली को जनपद कल्याणी सिद्ध किया है। जो बाद में भगवान तथागत बुद्ध से प्रवज्या ले भिक्षुणी बनी। आम्रपाली के अलावा पाली ग्रंथो जातकों का शोध कर आम्रपाली की समकालीन तीन राजनर्तकिया और खोज निकाली। राजगृह में सम्राट बिम्बसर के यहां शालवती राजनर्त्तकी थी। श्री जयशंकर प्रसाद ने इनका उल्लेख किया है। शालवती भी बौद्ध भिक्षुणी बनी। वत्सराज उदयन के यहाँ मार्गंधिया, राजनर्त्तकी थी। उसने बुद्ध से प्रणय निवेदन करने का दु:साहस किया। तथागत के अस्वीकार करने पर गुण्डे भेज अपमानित करने का प्रत्यन किया। बाद में महावीर स्वामी ने उसे जैन दीक्षा दी और उज्जयिनी में महासेन चण्डप्रघोत के यहाँ पदामवती राजनर्तकी थी।

''जिन खोजा तिन पाईयां गहरे पानी पैठ'' का अनुसरण कर इतिहास सागर में गहरी डुबकी लगा चमकदार चुम्बकीय दैवीय रूप लावण्य की रूपसियां थी। इतिहास ने इनके साथ न्याय नहीं किया था। इन्हें ऐतिहासिक कहानी संकलन 'भारत की श्रेष्ठ ऐतिहासिक प्रेम कथाएँ' लिपिबद्ध करते वक्त नई जानकारी मिली। आप चौकेंगे कि विश्व इतिहास की पहली प्रेम कथा भारत की है। ईसापूर्व की छठवीं सदी में वत्सराज उदयन अवंति सुंदरी अवंतिराष्ट्र के सम्राट महासेन चण्डप्रद्योत की सुपुत्री वासवदता को ले भागे थे। अगली दूसरी प्रेमकथा मालवा के विदिशा के श्रेष्ठी देवगुप्त की अलौकिक रूपसी देवी और अशोक मौर्य से संबंधित है। तीसरी प्रेमकथा के नायक नायिका उज्जयिनी नरेश गंधर्वसेन से साधवी सरस्वती से संबंधित है। चन्द्रगुप्त ध्रुवस्वामिनी के प्रणय व्यापार ने गुप्तकालीन इतिहास को रूमान प्रदान किया। भुज मृणालवानी का प्रेम बंदी गृह में पनपा, और पृथ्वीराज चौहान संयोगिता के प्रणय-व्यापार से देश परिचित है। हुमायूँ-हमीदा बानू बेगम तथा रानी रूपमती-बाजबहादुर के प्रणय गीत आज भी माण्डू के खण्डहरों में जीवंत है। औरछा की सुंदरी प्रवीणराय की प्रेमकथा एवं अकबर का अपमान इतिहास की थाती है। प्रेमी ओरछा नरेश इन्द्रजीत के लिए प्राण न्यौछावर हेतु तैयार थी। जहांगीर-नूरजहां, गुलारा-शाहजहां, औरंगजेब-बेगम जैनाबादी एवं बाजीरव-मस्तानी की प्रेम कथाओं ने इतिहास को रोमांच, रूमान, रोचकता प्रदान की है। इस प्रकार भारत की श्रेष्ठ प्रेम कथाओं में ये चौदह प्रणय व्यापार संकलित है। मेरे मनपसंद विषय ने भारतीय इतिहास विशेषकर हिन्दी साहित्य में नया अध्याय जोड़ा तथा 'जिंदगी के बदलते रूप' आधुनिक पात्रों पर है। इसी प्रकार नारी के रूप, के जरिए मैं मनपसंद ऐतिहासिक कथानक की नई जमीन तलाशने में सफल हुआ हूँ। आप क्या कहते हैं?

शरद पगारे, सुमनकुंज 110, स्नेह नगर, नवलखा, इंदौर–452001
मो. : 9406857328

✧ ✧ ✧

संस्मरण

मेरे अपने रामदरश जी

प्रकाश मनु

इसीलिए कई बार मैं अपने मित्रों से कहता भी हूँ कि मैं तो छोटा सा आदमी हूँ, पर जिन गुरुओं का साथ मुझे मिला है, वे सच ही बड़े थे, बहुत बड़े। मैं बहुत बड़े-बड़े उस्तादों का शिष्य हूँ, यह बात एक क्षण के लिए भी मैं भूल नहीं पाता। अगर बरसों बरस दिल्ली या फिर उसके पड़ोस में रहकर मैंने कुछ कमाई की है, तो वह यही कि बहुत बड़े-बड़े गुरुओं के चरणों पर बैठने का सौभाग्य मुझे मिला है। यह ऐसी चीज है जो मुझे किसी बड़े से बड़े ताकतवर आदमी के आगे भी झुकने नहीं देती, कभी कोई हलका काम नहीं करने देती।

दिल्ली आना मेरी जीवन-कथा का सबसे अटपटा और अजीगोगरीब अध्याय है। खुद मेरे लिए एक उलटबाँसी। इसलिए कि दिल्ली में आकर भी मैं कभी दिल्ली का हुआ नहीं और दिल्ली मेरी हो सके, यह तो असंभव ही था।... शायद मुझ सरीखा सिर से पैर तक घोर कसबाई आदमी दिल्ली के लिए बना ही नहीं था। लिहाजा जब मैं यहाँ आया, तो बहुत डरा-डरा सा था। सोचता, भला मेरे जैसा एकदम सीधा-सादा, मगर उजबक सा आदमी यहाँ कहाँ आकर फँस गया? ऊपर से स्वभाव भी माशाअल्लाह। जो मन में आए, वह सीधा सामने वाले के मुँह पर कह दिया, बगैर यह सोचे कि वह सोचेगा क्या. ..या फिर बदले में क्या कुछ कर गुजरेगा और मेरा जीना मुहाल हो जाएगा!

पर फिर ऐसे में कुछ बड़े सुखद संयोग भी हुए। पहले सत्यार्थी जी मिले, फिर रामविलास जी मिले, रामदरश जी मिले, शैलेश मटियानी मिले, विष्णु खरे मिले...! और मैं अंदर से भर सा गया। मुझे लगा, इसी दिल्ली में एक और दिल्ली है, उसे मैं क्यों भूले बैठा हूँ? वह तो मेरी और मुझ सरीखे सबकी दिल्ली है, जो अपनी ठेठ कसबाई जिंदादिली को छोड़ने को तैयार नहीं हैं, और दिल्ली को दिल्ली की तरह नहीं, बल्कि अपनी शर्तों और अपने जीवन मूल्यों के साथ जीना चाहते हैं।

और मैंने पाया कि एकाएक जीवन में स्वाद बढ़ गया है और यह भी कि दिल्ली में मैं भी अपने इन धुरंधर साहित्यिक गुरुओं की तरह

ढंग से लिख-पढ़ सकता हूँ, जी सकता हूँ। बहुत कुछ अंदर से उमग-उमगकर सामने आने लगा।... यहाँ मैं बहुतों से मिला। बहुत कुछ सीखा, बहुत कुछ पाया। बहुत से मित्र बने। बहुत कुछ लिखा भी। उपन्यास, कविता, कहानियाँ, आलोचना, साक्षात्कार, बच्चों का साहित्य।... जो कुछ मन में उमगता, वह कागजों पर उतरता जाता। लगने लगा, जीवन में रस है। ऐसा जीवन कोई बेमानी तो नहीं!...

पर क्या यह संभव था, अगर मैं इस दिल्ली के ही किसी कोने-ओने में मौजूद अपनी दिल्ली का साक्षात्कार न कर पाता?... और मैं यह साक्षात्कार कर सका, तो इसका पूरा श्रेय मैं अपने आगे-आगे चलने और राह दिखाने वाले गुरुओं को देता हूँ। सत्यार्थी जी, रामविलास शर्मा, रामदरश मिश्र, शैलेश मटियानी, विष्णु खरे...! सबसे मैंने बहुत कुछ सीखा, बहुत कुछ पाया।

इसीलिए कई बार मैं अपने मित्रों से कहता भी हूँ कि मैं तो छोटा सा आदमी हूँ, पर जिन गुरुओं का साथ मुझे मिला है, वे सच ही बड़े थे, बहुत बड़े। मैं बहुत बड़े-बड़े उस्तादों का शिष्य हूँ, यह बात एक क्षण के लिए भी मैं भूल नहीं पाता। अगर बरसों बरस दिल्ली, या फिर उसके पड़ोस

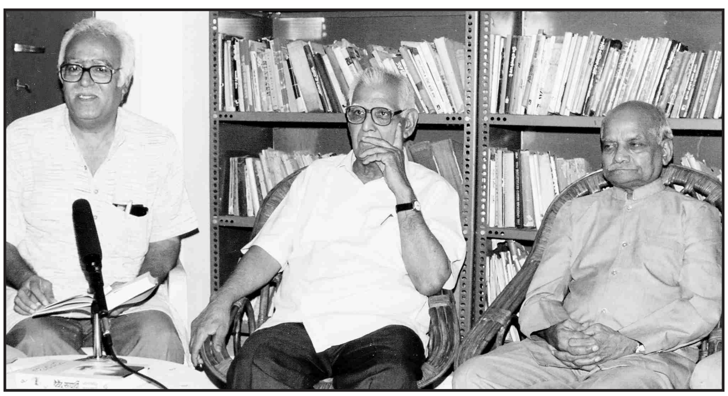

में रहकर मैंने कुछ कमाई की है, तो वह यही कि बहुत बड़े-बड़े गुरुओ के चरणों पर बैठने का सौभाग्य मुझे मिला है। यह ऐसी चीज है जो मुझे किसी बड़े से बड़े ताकतवर आदमी के आगे भी झुकने नहीं देती, कभी कोई हलका काम नहीं करने देती। मन में एक ही बात आती है कि मैं इतने बड़े-बड़े धुरंधर साहित्यकारों का शिष्य हूँ, तो जीवन में कोई ऐसा काम मुझसे न हो जाए, जिससे उनके नाम पर आँच आए। या कि लोग कहें कि जरा देखो तो, प्रकाश मनु, जो इतने बड़े गुरु का शिष्य है, उसने यह क्या किया! मेरे लिए यह मृत्यु से भी ज्यादा बड़ी सजा है।

चलिए, अब जरा रामदरश जी की ओर आते हैं। जिसने भी उन्हें देखा होगा, वह एकबारगी कहेगा कि वे बहुत ही सीधे-सरल हैं। मुझे भी ठीक ऐसा ही लगा था। मैं एक बार उनके निकट आया तो फिर खिंचता ही चला गया। कई बार मैं अपने आप से पूछता हूँ, भला सीधे, सहज रामदरश जी में ऐसा आकर्षण कहाँ से आया? उनमें ऐसा क्या है, जो एक बार आपको बाँधता है, तो आप जिंदगी भर के लिए उन्हीं के होकर रह जाते हैं।

पर जवाब अभी तक नहीं खोज पाया। तब अपने आप को यह कहकर समझा लेता हूँ कि शायद उनके पास कोई कच्चे धागे का सा जादू है। लोग बड़ी से बड़ी चट्टानी दीवारें भी तोड़कर बाहर आ जाते हैं। पर जो एक बार कच्चे धागे से बाँधता है, वह ताउम्र बँधा ही रह जाता है।

रामदरश जी भी शायद कच्चे धागों से बाँधने वालों में से हैं, जिनसे कभी कोई छूट नहीं पाया। लोहे की भारी-भरकम हथकड़ियाँ टूट जाती हैं, पर कच्चे धागे की पकड़ नहीं। शायद रामदरश जी ने मुझे भी इस कच्चे धागे से ही बाँधा होगा। इसलिए दिन में दो-चार बार उनका नाम जबान पर न आ जाए, तो दिन का स्वाद कुछ अच्छा नहीं लगता।...

आइए, अब मैं सर्दियों के उस धूप भरे दिन में आपको लिए चलता हूँ, जिसका जिक्र न करूँ, तो बात अधूरी रह जाएगी। मेरे जीवन का वह एक यादगार दिन था, जब मैं एक भीतरी उमंग से भरकर यों ही रामदरश जी के यहाँ पहुँच गया था बातचीत करने के लिए और पूरे दिन उनके साथ बहता रहा। एक ऐसा दिन, जिसके आनंद और आह्लाद का बखान करने के लिए मुझे रामदरश जी की ही एक कविता का सहारा लेना पड़ेगा, कि दिन एक नदी बन गया!

और सच पूछिए तो वह दिन आज भी नदी बनकर मेरे भीतर बह रहा है।

उस दिन रामदरश जी के जीवन के तमाम पन्ने खुले और खुलते ही चले गए। मैं लगभग पूरे दिन उनकी बातों और उनके अनुभवों की आँच में सीझा उनके पास बैठा रहा। उनकी जिंदगी और लेखन-यात्रा तथा संघर्षों के बहुत-से मर्म-बिंदु जानता था, लेकिन उनकी आधार-पीठिका पहली बार खुली और उस खुली बातचीत में रामदरश जी को ज्यादा खुलेपन से और कहीं ज्यादा करीब से जाना।

खास बात यह थी कि उनके यहाँ बड़े लेखकों वाली दिखावटी व्यस्तता का ताम-झाम मुझे बिल्कुल नजर नहीं आया। उनका वह पूरा दिन जैसे मुझे दे दिया गया। वे पूरी तरह प्रफुल्ल थे और बातचीत के मूड में थे। और वह बातचीत इस तरह अनौपचारिक थी कि एक प्रसंग में से तमाम प्रसंग निकलते चले जा रहे थे। फिर एकाएक रामदरश जी के साथ-साथ उनके तमाम साथियों और सहयात्रियों के चेहरे उनमें से झाँकने लगे। खासकर निराला और अपने गुरु हजारी प्रसाद द्विवेदी का जिक्र आने पर तो वे बेहद भावुक हो गए थे। तमाम वरिष्ठ लेखकों का जिक्र हुआ और उनके तमाम संस्मरणात्मक प्रसंग इस लंबी बातचीत में खुल-खुलकर सामने आने लगे। लेकिन सबसे बढ़िया प्रसंग वे थे, जिनमें गाँव के मामूली और अनपढ़ लोगों का जिक्र था और वे उनकी अद्‌भुत शख्सियत का बखान-सा करते थे कि उस समय उन लोगों ने मुझे बचाया न होता तो आज मैं कुछ न होता, कहीं न होता।

इसी बातचीत के क्रम में मैंने एक 'असुविधाजनक' सवाल पूछ लिया कि 'तमाम लोगों ने आपके साथ यात्रा की, मगर वे बहुत आगे निकल गए, उनका बहुत नाम है और आप कुछ पिछड़-से गए हैं। ऐसा किसलिए?' मैं सोचता था, सवाल सुनकर वे नाराज होंगे। लेकिन बड़ी ही सहजता के साथ उन्होंने सवाल का सामना किया और कहा कि, 'जो-जो ये तथाकथित बड़े लेखक हैं, उनके साथ कोई न कोई बड़ी पत्रिका या लेखक-संगठन जुड़ा रहा और उनकी जो भी

अच्छी रचनाएँ हैं, वे इस कदर उछाले जाने से पहले की हैं। बाद में तो वे लेखक के रूप में चुक ही गए, जबकि मैं लगातार एक लेखक के आत्मविश्वास के साथ अपनी राह पर आगे बढ़ता गया। और मुझे इस बात का मलाल नहीं है कि मुझे इतना उछाला क्यों नहीं गया। मुझे अपने पाठकों का बहुत प्यार मिला है और वही मेरी शक्ति है। जबकि इस तरह से बहुत उछाले गए लेखकों की रचनाएँ शायद पढ़ी ही नहीं जातीं।'

मेरा एक और थोड़ा अटपटा-सा सवाल था कि जो जीवन उन्होंने जिया, क्या उससे वे संतुष्ट हैं? और अगर दुबारा जीवन की शुरुआत करनी पड़े तो...? सवाल के जवाब में उन्होंने मुसकराते हुए कहा, 'जो जीवन मैंने जिया, उससे मैं पूरी तरह संतुष्ट हूँ। अगर दुबारा जीवन जीने को मिले, तो मैं बहुत कुछ ज्यों का त्यों रखना चाहूँगा। हाँ, मैं चाहूँगा कि मेरा झेंपू स्वभाव और घरघुसरापन थोड़ा कम हो, ताकि जो उपेक्षा मेरे खाते में आई है, वह न रहे और लोग मेरे बारे में जानें। खुद अपने गले में ढोल लटकाकर आत्म-विज्ञापन करने वालों की दुनिया में अगर एक ईमानदार लेखक को जीवित रहना है, तो उसे अपना अति संकोच और घरघुसरापन तो छोड़ना ही होगा।'

उस लंबे इंटरव्यू को किए लंबा अरसा हो गया और इतने समय में मैंने उन्हें लगातार और-और गहरे आत्मविश्वास से भरकर और अधिक दृढ़ता, लेकिन संयत ढंग से अपनी बात कहते देखा है। जयशंकर प्रसाद के 'आँसू' की एक प्रसिद्ध पंक्ति है, 'दीनता दर्प बन बैठी, साहस से कहती पीड़ा...!' रामदरश जी में दैन्य तो कभी था ही नहीं। हाँ, एक झिझक कभी-कभी नजर आती थी, बहुत सहने और सहकर लिखने वाले लेखक की झिझक। इधर मैं देखता हूँ, उन्होंने अपनी झिझक को तोड़ा है और खुलकर अपनी बात कहने लगे हैं।

'दयावती मोदी कवि शेखर सम्मान' मिलने पर उनके पास लेखकों और पाठकों की बधाइयों का ताँता लग गया, लेकिन कुछ 'महान' थे जो चुप्पी साधे रहे और यों दर्शाते रहे, जैसे अशोक वाजपेयी, केदारनाथ सिंह और विनोद कुमार शुक्ल के बाद रामदरश मिश्र को यह पुरस्कार मिल जाने से कोई कुफ्र हो गया हो और इस पुरस्कार की मर्यादा घट गई हो। हालाँकि बाद में इन महानों ने भी झेंपकर ही सही, उन्हें बधाई दी।

एक दिन यही प्रसंग चल निकलने पर रामदरश जी ने कहा, 'हिंदी साहित्य के ये जितने तथाकथित महान लोग हैं जो लिखते कुछ नहीं, सिर्फ पूरे समय साहित्य की राजनीति करते हैं, इन्हें मैं अपने सामने कुछ नहीं मानता। अगर एक लेखक की लेखन-यात्रा के लिहाज से ही देखा जाए तो ये मेरे सामने कहीं नहीं ठहरते। मुझमें पहले भी यह आत्मविश्वास था और अब भी यह आत्मविश्वास है कि लेखक तो मैं ही बड़ा हूँ, ये चाहे कितना ही अपना ढोल पीटते रहें! मैं आज भी इनसे बड़ा हूँ और आने वाले कल में भी निश्चय ही इनसे बड़ा साबित होऊँगा, जबकि ये ढोल पीटने और पिटवाने वाले कहीं नहीं होंगे।'

यह बात कोई कम काबिले-तारीफ नहीं कि राजधानी में इतने बरसों से रहते हुए भी रामदरश जी ने अपनी सहजता और गाँव के आदमी का खरापन खोया नहीं। इससे उन्हें नुकसान

चाहे जो भी हुए हों, लेकिन एक फायदा भी हुआ है कि वे छोटे-बड़े हर नए आदमी से प्यार से धधाकर मिलते हैं और पूरी तरह उससे समरस हो जाते हैं। इसीलिए तथाकथित बड़े जब एकांत की चारदीवारियों में कैद हैं, रामदरश जी ने खुद को खुला छोड़ दिया है। अब वे खुद के ही नहीं रहे, उन सभी के हैं जो उन्हें प्यार करते हैं और उन्हें प्यार करने वालों की संख्या निरंतर बढ़ती ही जाती है। खासकर युवा पीढ़ी को उनसे जो प्यार मिला है, उसकी तो मिसाल ही मुश्किल है। शायद ही उनके अलावा कोई दूसरा साहित्यकार हो, जो नई पीढ़ी के लेखकों से इतना खुलकर संवाद रख पाता है।

मुझे याद है, वाणी विहार में रामदरश जी के सम्मान समारोह में प्रसिद्ध आलोचक डॉ. नित्यानंद तिवारी ने एक बड़े काम की बात की। उन्होंने कहा कि अगर रामदरश जी को तथाकथित महान लोगों में ही शुमार होना होता, तो वह तथाकथित महानता तो उन्हें बहुत पहले ही मिल गई होती। तब वे औरों के बताए रास्तों और औरों के साँचों के हिसाब से औरों जैसा ही लिख रहे होते, पर रामदरश जी को ऐसी तथाकथित महानता की दरकार नहीं थी। इसके बजाय उन्होंने अपने ही रास्ते पर चलकर, अपने ही जैसा लिखना पसंद किया। और इसी कारण उन्हें अपने पाठकों का बेशुमार प्यार मिला। यह महानता, तथाकथित महानों की किसी भी नकली महानता से ज्यादा बड़ी है। पाठकों का जो आदर और प्यार रामदरश जी को मिला है, वही उन्हें महान बनाता है और उनकी यह महानता आज सभी स्वीकार कर रहे हैं।

नित्यानंद तिवारी जी के इन शब्दों को याद करता हूँ तो अनायास रामदरश जी का एक भोजपुरी गीत मेरे होंठों पर उतर आता है। मुझे इस भोजपुरी गीत के शब्दों में रामदरश जी का ठेठ गँवई चेहरा नजर आता है, जो महान लोगों की महानता को ठुकराकर, गाँव के सीधे-सादे किसान-मजदूरों के साथ बैठने, और उन्हीं की भाषा में उनके साथ बतियाने में कहीं अधिक सुख महसूस करता है। भोजपुरी मेरी मातृभाषा नहीं है, पर इस भोजपुरी गीत की संवेदना को महसूस करने में मुझे कोई परेशानी नहीं होती। लीजिए, आप भी इस भोजपुरी गीत में बहती करुणा को महसूस कीजिए-

घेरि-घेरि उठलि घटा घनघोर और कजरार, सावन आ गइल!
बेबसी के पार ओते, अवरु हम ए पार, सावन आ गइल!

घिरि अकासे उड़े बदरा, मेंह बरसे छाँह प्यारी ओ!
जरत बाटी हम तरे कल, क पकड़ के बाँहि, प्यारी ओ!

लड़ति बा चिमनी घटा से, रोज धुआँधार, सावन आ गइल!
उठति बा मन में तोहें, कजरी पुकारि-पुकारि, प्यारी ओ!

झकर-झकर मसीन लेकिन, देति बा सुर फारि, प्यारी ओ!
रहे नइखे देति कल से, ई बेदर्द बयार, सावन आ गइल!

खेत में बदमास बदरा, लेत होइहें घेरि, प्यारी ओ!
छेह पर लुग्गा सुखत होई, तोरे अधफेरि, प्यारी ओ!
पेट जीअत होई पापी, खाइ-खाइ उधार, सावन आ गइल!

यहीं एक प्रसंग और याद आता है। रामदरश जी से एक बार किसी ने पूछा, 'आपकी नजर में महानता क्या है...या महान आदमी कौन है?' इसके जवाब में रामदरश जी ने सहजता से कहा था, 'मेरे ख़याल से महान व्यक्ति वह है, जो अपने संपर्क में आने वाले छोटे-बड़े सभी को अपनाकर मिलता है और उन पर अपने बड़े होने का आतंक बिल्कुल नहीं डालता।'

इस लिहाज से अगर देखें तो आज के साहित्यिक परिवेश में रामदरश जी अकेले लेखक हैं, जो इतना अधिक नए लेखकों को पढ़ते हैं और निरंतर उनकी हौसला अफजाई करते हैं। आज के समय में जबकि न पढ़ने का ही चलन है और न पढ़ना कहीं ज्यादा बड़प्पन और रोब-दाब का सूचक बन गया है, वहाँ रामदरश जी की खोज-खोजकर नयों को पढ़ने और उन्हें आगे लाने की तत्परता चकित जरूर करती है।

मुझे सुखद आश्चर्य होता है, जब किसी पत्रिका में मेरा कोई लेख या रचना देखकर वे मुझे सूचना देते हैं, और साथ ही अपनी राय भी बता देते हैं। मेरे लिए ये क्षण जीवन के सर्वाधिक आनंद के क्षण होते हैं। और सार्थकता के भी। इन्हीं क्षणों में लगता है कि आज जब साहित्य में इतनी आपाधापी और टाँगखिंचाई चल रही है, तब रामदरश जी जैसे लेखक भी हैं जो एक व्यक्ति होते हुए भी, एक परंपरा की सदेह उपस्थिति जैसे लगते हैं। शायद इसी सचेत भाव से जीवन ने ही रामदरश जी को एक ऐसा सक्रिय, ऊर्जावान लेखक बनाया है, जो निरंतर खुद को बाँटता और देता चल रहा है, लेकिन झुका हरगिज नहीं है।

यह बात मुझे सुखद विस्मय से भर देती है कि इस अवस्था में भी, जब रामदरश जी सौ का आँकड़ा छूने के काफी निकट आ गए हैं, वे तन-मन से काफी स्वस्थ और सचेत हैं। कभी-कभार आ जाने वाली छोटी-मोटी व्याधियों के अलावा कोई ऐसी चीज नहीं, जो उन्हें काम करने से रोक सके। यहाँ तक कि उम्र की नवीं दहाई में उन्होंने दो-दो उपन्यास लिख डाले और वे दोनों रस विभोर कर देने वाले उपन्यास हैं। इनमें एक में स्वयं रामदरश जी का बचपन है। लेकिन इससे भी अचरज भरी चीज इस दौर की उनकी कविताएँ हैं। इस दौर में छपी उनकी कविता पुस्तकों 'आम के पत्ते' और 'आग की हँसी' में बड़े ही सहज ढंग से रामदरश जी की कविता एक नया मोड़ लेती है। मुझे सबसे अच्छी बात यह लगी कि उम्र की दहाई तक आते-आते रामदरश जी इस कदर कवि-सिद्धता हासिल कर चुके हैं कि उनकी कविताएँ बड़ी सहज और अनौपचारिक हो चली हैं। अपने आसपास का जो जीवन वे डूबकर जीते हैं, वह सहज ही उनके शब्दों की संवेदना में घुल-घुलकर बहता दीख पड़ता है। इतना सहज कि उन्हें कविता लिखने के लिए विषय ढूँढ़ने की दरकार नहीं है। बल्कि उनके आसपास जो कुछ भी है, वह खुद-ब-खुद कविता की ओर खिंचा चला जाता है, और फिर कवितामय होकर हमारी आँखों के आगे आता है तो हम चौंक पड़ते हैं कि अरे, यहाँ तक आते-आते तो रामदरश जी के लिए मानो सारा जीवन ही कवितामय हो उठा है। जीवन में कुछ भी ऐसा नहीं है, जो उनकी कविता की चौहद्दी से बाहर हो।

यह बात कहते हुए मुझे प्रेमचंद याद आते हैं, जिन्होंने अपनी कहानी और उपन्यासों में उस दौर की परिस्थितियों के साथ-साथ पूरा जीवन ही उतार दिया और उसे कथामय कर दिया।

ठीक ऐसे ही रामदरश जी अपनी अपूर्व सिद्धता से जीवन के हर रंग, हर रेशे को कविताई के रंग में ढालते जा रहे हैं। और इसके लिए उन्हें कुछ करना नहीं पड़ता। कविता तो हर समय उनके साथ बहती ही है, और जो कुछ वे देखते हैं, पास से महसूस करते हैं, वह खुद-ब-खुद कवितामय हो उठता है। जैसे अगर आप हरिद्वार या ऋषिकेष जाएँ, तो आपको पता चलेगा कि गंगा की धारा के आस-पास जो भी जीवन है, वह भी मानो गंगामय है। गंगा तो गंगा है ही, गंगा के चारों ओर जो जीवन बहता है, वह भी गंगा ही है, गंगा की पवित्रता में भीतर तक नहाया हुआ सा है। तुलसीदास ने 'सियाराममय सब जग जानी' कहा तो यह सिर्फ एक चौपाई ही न थी, बल्कि पूरे संसार को सच ही उन्होंने सियाराममय देखा था। उसी तरह रामदरश जी ने पूरे जग-जीवन को ही कवितामय कर डाला। क्या यह सिद्धता यों ही मिल जाती है...? अगर जीवन में बड़ी संवेदना और हदय विस्तार न हो, तो क्या आप उसे इस तरह सहज हासिल कर सकते हैं?

इस लिहाज से रामदरश जी की मेज, चाकू, चम्मच जैसी रोजमर्रा के इस्तेमाल की चीजों पर लिखी गई कविताएँ तो अद्‌भुत हैं। उनकी 'मेज' कविता पढ़ते हुए हम चकित होकर देखते हैं कि यहाँ मेज केवल मेज ही नहीं रह जाती, वह पूरी जिंदगी हो जाती है। और एक लेखक के जीवन का तो पूरा इतिहास ही उसमें होकर बहता है। इस मेज के आसपास कितने लोग आकर बैठे। उन सबके सुख-दुख की अपार कहानियाँ, दर्द और संवेदनाएँ, मित्रों और परिवारजनों के साथ स्नेह-प्रीतिमय संवाद, सब की साक्षी यह मेज ही तो है। फिर एक-एक कर इस मेज पर जमा होती गई पुस्तकें, पत्रिकाएँ और उनमें बहती हुई तरल संवेदना की यह गवाह है। इतना ही नहीं, इस मेज पर रखी हुई चिट्ठियाँ...स्याही के धब्बे, दाग...सभी जैसे जिंदगी के अनथक प्रवाह की कहानी कह रहे हैं। रामदरश जी न सिर्फ अपार धैर्य से उसे सुनते हैं, बल्कि आहिस्ता से कविता में भी पिरो देते हैं।

यों रामदरश जी की कविता में आई मेज सिर्फ मेज नहीं, एक सृजनधर्मी लेखक का पूरा जीवंत इतिहास बन जाती है। वह सुख-दुख की अमिट कहानी के साथ-साथ उन मानवीय उपलब्धियों को भी आँखों के आगे ले आती है, जिससे हमें अपना मनुष्य होना सार्थक लगने लगता है। और ऐसी एक नहीं, दर्जनों कविताएँ उनके यहाँ हैं।

ऐसे ही कुछ अरसा पहले माँ पर लिखी गई रामदरश जी की कविता बड़ी मार्मिक और पुरअसर है, जिसमें बचपन की बहुत सी मीठी-तीखी स्मृतियाँ जुड़ गई हैं। सरस्वती जी पर लिखी गई कविता भी एक रम्य किस्म के घरेलूपन की गंध लिए है। यहाँ तक कि तीसरी पीढ़ी के बच्चों पर लिखी गई रामदरश जी की कविताओं में भी बड़ा रस, आनंद और खुलापन है। खासकर एक छोटे बच्चे उत्तू पर लिखी गई रामदरश जी की कविता तो मैं भुला ही नहीं पाता। हो सकता है, उत्तू अब बड़ा हो गया हो, पर उनकी कविता का उत्तू तो अब भी उसी तरह छोटा और नटखट ही हैं, जो अपनी हँसी और विविध कौतुकपूर्ण छवियों से हमें लुभा लेता है।

कई बार मैं सोचता हूँ, मैंने प्रेमचंद को नहीं देखा, पर रामदरश जी में मैंने जिस प्रेमचंद को देखा, या रामदरश जी के विपुल साहित्य में जिस प्रेमचंद को पुनर्नवा होते हुए देखा और पाया,

वह क्या भुलाने की चीज है? प्रेमचंद गाँवों के कथाकार थे तो रामदरश जी भी जब गाँव की बात करते हैं, तो पूरा गाँव एकदम आँखों के आगे आ जाता है। दिल्ली में बरसोंबरस रहने के बावजूद अगर आज भी वे गाँव के हैं, गाँव की मिट्टी तथा पानियों की गंध और आस्वाद आज भी अगर उनकी कहानी और कविताओं में आता है, तो मन को अपने साथ बहा ले जाता है। प्रेमचंद की कला कलाविहीनता की कला थी। इसी में वह इतनी सुंदर, इतनी विराट भी है, जो अनायास ही मन में उतरती चली जाती है। और ठीक यही बात रामदरश जी के लिए कही जा सकती है।

मुझे कहने दीजिए कि प्रेमचंद और उनके साहित्य ने आजादी से पहले जो काम किया था, आजादी के बाद वही काम साहित्यकार रामदरश जी ने और नए विचारों की संवाहक उनकी कृतियों ने किया। आजाद भारत में उन्होंने गाँव की जनता को सच्ची आजादी का मतलब बताया और उसके लिए अपने आप से और व्यवस्था से लड़ने की प्रेरणा दी। अशिक्षा, दैन्य, जातिगत भेदभाव और रूढ़ियों से ग्रस्त ग्राम्य समाज में उनकी कृतियाँ नई सोच का पैगाम और नया जीवन लेकर पहुँचीं, और उन्होंने जनता को युग-परिवर्तन की राह पर आगे आने के लिए पुकारा। रामदरश जी के साहित्य के माध्यम से रूढ़ियों से मुक्ति की यह कोशिश एक नई आजादी का स्वप्न बनकर गाँव-गाँव में पहुँची। सच पूछिए तो रामदरश जी का पूरा साहित्य ही मानो आम आदमी का महाकाव्य या आम आदमी की महागाथा है। उन्होंने न सिर्फ एक मामूली आदमी को नायक के सिंहासन पर बैठाया, बल्कि उसे गरिमा दी, मान-सम्मान दिया। जनता का दुख-दर्द, जनता की बेचैनी और परेशानियाँ, जनता की आहत पीड़ा उनकी कविता, कहानी, उपन्यास, निबंध, संस्मरण, यात्रा-वृत्तांत समेत हर विधा में अपनी सूची करुणा के साथ बह रही है। वे सिर्फ कहने के लिए अपनी जनता के लेखक नहीं हैं, बल्कि सही मायनों में अपनी जनता से एकाकार हो चुके हैं। इससे बड़ी किसी लेखक की कोई चरितार्थता हो सकती है क्या?

फिर रामदरश जी एक बड़े परिवार के मुखिया की तरह हमेशा उन सबकी परवाह करते नजर आते हैं, जिनसे वे भावनात्मक रूप से करीब से जुड़े हैं। इधर जब भी उनसे मेरी बात होती है, वे हमेशा मेरी कविताओं की चिंता करते नजर आते हैं। वे बार-बार याद दिलाते हैं कि 'मनु जी, आपकी कविताओं में एक अलग रंग है, उनमें कुछ अलग बात है। आपने कविता लिखना क्यों छोड़ दिया?' उनकी बात सुनता हूँ तो भीतर उथल-पुथल सी मच जाती है। सच ही बहुत तरह के काम मैंने ओढ़ लिए हैं। इनमें कविता, जो शुरू से ही मेरी सहयात्री, बल्कि मेरी पहचान रही है-वह छूटती सी जा रही है। हालाँकि कविताएँ लिखना बंद नहीं हुआ, पर वे कुछ पीछे तो जरूर छूट गई हैं। मेरे बहुत से मित्र और आत्मीय जन हैं, जो मुझसे प्यार करते हैं। पर मेरी सहयात्री सुनीता के अलावा, यह बात कहने वाले केवल रामदरश जी हैं, जो बार-बार इस ओर मेरा ध्यान खींचते हैं। वे आपको प्यार करते हैं तो यह भी जानते हैं कि आपका कौन सा ऐसा पक्ष है, जो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है, या फिर जिसमें आपने सबसे अधिक सशक्त ढंग से खुद को व्यक्त किया है। वे घर भी आए हैं, बड़े प्यार से सुनीता से भी मिले हैं। घर-परिवार के वरिष्ठ सदस्य की तरह वे घर में सभी की चिंता करते हैं। रामदरश जी मुझसे कोई छब्बीस बरस बड़े हैं। उनमें और मुझमें एक पीढ़ी का फर्क है। फिर भी वे हमेशा प्यार से, बराबरी से मिलते हैं। कभी उन्होंने मुझे लघुता का

अहसास नहीं कराया। वे मेरे गुरु हैं, इसके बावजूद उन्होंने हमेशा बराबरी का सम्मान दिया, प्यार दिया। एक लेखक होने का गौरव दिया। और वे मुझसे कितने बड़े हैं, इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि जब उनका गीत संग्रह 'पथ के गीत', जिसकी भूमिका आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखी है, प्रकाशित हुआ, उस समय मैं कोई दो बरस का था। इसी वर्ष उन्होंने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली थी। यह सब सोचता हूँ तो मन में आता है कि कहाँ रामदरश जी और कहाँ मैं! अपनी लघुता के बोझ से दबने सा लगता हूँ।...पर फिर थोड़े ही समय बाद उनका फोन आता है और वे कहते हैं मनु जी, कल एक पत्रिका में आपका लेख पढ़ा। बहुत अच्छा लिखा है आपने...!' कहकर बात शुरू करते हैं तो बीच के सारे फासले गायब हो जाते हैं। मानो रामदरश जी ने मुझे भी सहारा देकर अपने पास बैठा लिया हो।

कई बार मुझे लगता है, मुझमें और रामदरश जी में कई समानताएँ हैं, जो हमें एक-दूसरे के इतना निकट ले आईं। रामदरश जी बचपन से ही भावुक हैं और उन्हीं के शब्दों में, कुछ-कुछ घरघुसरे भी। मेरी स्थिति भी इस मामले में उनसे कुछ अलग नहीं है। बचपन से ही मेरा हाल यह है कि किसी करुण प्रसंग को सुनते ही आँखों से टप-टप आँसू टपकने लगते हैं। गला रुँध जाता है।

इसी तरह रामदरश जी की तरह मैं दुनियादारी से दूर ही रहा। और मुँह दिखाई तो कभी सीख ही नहीं सका। कहीं बाहर बहुत आना-जाना भी मुझे पसंद नहीं है। बस, लिखने-पढ़ने में ही सुख मिलता है। लगता है, इससे दुर्लभ चीज कुछ और नहीं है। आदमी दुनिया में बाकी सब पा सकता है, पर यह लिखने-पढ़ने का सुख तो एक मानी में ईश्वरीय ही है। अगर भीतर गहरी अंत: प्रेरणा और चेतना है, तभी आप लिखने-पढ़ने में आकंठ डूबे रह सकते हैं। लेकिन अगर संवेदना ही नहीं है, तो फिर कुछ नहीं है। धरती पर अगर कुछ स्वर्गिक या स्वर्गोपम है, तो मैं कहूँगा कि वह यही है, यही है, यही है!

मेरा और रामदरश जी का परिवेश बेशक एक सा नहीं रहा। वे ग्रामीण अंचल के हैं, मैं शहराती बंदा। किशोरावस्था तक मुझे पता ही नहीं कि गाँव क्या चीज है। मैं शायद दसवीं में था, जब मेरा एक सहपाठी मुझे अपना गाँव दिखाने ले गया। तब गाँव को थोड़ा-बहुत जाना। पर गाँव में क्या सुंदर है, तब भी नहीं समझ सका था। गाँव को सच में जानने की शुरुआत तब हुई, जब मैंने प्रेमचंद के उपन्यासों को दुबारा-तिबारा पढ़ा। ऐसे ही आजादी के बाद के गाँवों को मैंने जाना रामदरश जी के उपन्यासों को पढ़कर। इस रूप में उनका ऋणी हूँ कि असली हिंदुस्तान और हिंदुस्तानी संस्कृति को मैं उनके उपन्यास पढ़कर ही समझ पाया, जिसके बिना शायद मैं अधूरा ही रहता।

पिछले दिनों रामदरश जी को याद कर रहा था, तो अनायास कविता की कुछ पंक्तियाँ बनीं, और वे मेरे शब्दों में उतरते चले गए। वे पंक्तियाँ तो कुछ खास नहीं, पर उनमें रामदरश जी हैं, यही खास है। शायद आप भी उनका आनंद लेना चाहें। तो लीजिए, आप भी उन्हें पढ़ लीजिए। कविता की शुरुआत इन पंक्तियों से होती है-

मेरे अंदर रामदरश जी, मेरे बाहर रामदरश जी,
आगे चलते रामदरश जी, पीछे दिखते रामदरश जी।

सुख में, दुख में, फाकामस्ती में भी हँसते और हँसाते-
अंदर-बाहर, बाहर-अंदर रामदरश जी, रामदरश जी।

जब से आए रामदरश जी, मन में कितना हुआ उजीता,
कहती बड़की, कहती छुटकी, कहती चुप-चुप यही सुनीता।
खुले द्वार, खुल गईं खिड़कियाँ, जब से आए रामदरश जी,
टूट गईं सारी हथकड़ियाँ, जब से आए रामदरश जी।

चह-चह करतीं घर में चिड़ियाँ, जब से आए रामदरश जी।
बिन दीवाली के फुलझड़ियाँ, जब से आए रामदरश जी।
एक रोशनी का कतरा था, बढ़ते-बढ़ते वह खूब बढ़ा,
छोटा सा था मेरा आँगन, लेकिन खुद ही हुआ बड़ा।

अब कविता की आखिरी पंक्तियाँ लिख देता हूँ, जिनमें एक विरल सा गुरु-शिष्य संवाद है, जो शायद पाठकों को अच्छा लगे-

शिष्य आपका, पाठक भी हूँ, चाहे थोड़ा अटपट सा हूँ,
ढाई आखर पढ़े प्यार के, तब से थोड़ा लटपट सा हूँ।
थोड़ा झक्की, थोड़ा खब्ती, थोड़ा-थोड़ा प्यारा भी हूँ,
इसी प्यार से जीता भी हूँ, इसी प्यार से हारा भी हूँ।

एक खुशी है मगर, आपने खुले हृदय से अपनाया है,
कुछ गड़बड़ गर लगा, प्यार से उसको भी समझाया है।
यह उदारता, यही बड़प्पन भूल न पाता रामदरश जी,
विह्वल मन ले, इसीलिए चुप सा हो जाता रामदरश जी।

जो कुछ सीखा, जो कुछ पाया, वह कविता में ढाल लिया है,
एक दीप उजली निर्मलता का अंतस में बाल लिया है।
चाहे आँधी आए, मन का दीप नहीं यह बुझ पाएगा,
अंगड़-बंगड़ छूटेगा, पर उजियारा तो रह जाएगा।

अंतर्मन में दीप जला तो कहाँ अँधेरा रह पाएगा,
यहाँ उजाला, वहाँ उजाला, अंदर-बाहर छा जाएगा।
आप साथ हैं तो जैसे यह सारी धरती अपनी है,
इस मन-आँगन में भी कोई गंगा अब तो बहनी है!

पता नहीं कि मैं अपने मन की बात कितनी कह पाया हूँ, कितनी नहीं। पर इन पंक्तियों को लिखने के बाद जो सुकून मिला, और मन कुछ हलका सा हो गया, वह अहसास शायद मैं कभी भूल न पाऊँगा।

यहीं प्रसंगवश इस बात की चर्चा की जा सकती है कि रामदरश जी की किताबों के नाम बहुत सुंदर और सुरुचिपूर्ण हैं। लीक से हटकर भी। लेखक रामदरश ऊपर से चाहे जितने सादा लगते हों, पर उनके भीतर कितनी गहरी कलादृष्टि और सौंदर्य चेतना है, इसे उनकी पुस्तकों के नामों से ही जाना जा सकता है। उनके उपन्यासों की बात की जाए तो 'पानी के प्राचीर', 'जल टूटता हुआ' और 'अपने लोग' बहुत खूबसूरत नाम हैं। ऐसे ही उनकी कहानियों के नाम 'बसंत का एक दिन', 'आज का दिन भी' और 'फिर कब आएँगे' मुझे बहुत आकर्षक लगते हैं। और कविता-संकलनों के नामों की तो बात ही क्या की जाए। 'पथ के गीत', 'बैरंग-बेनाम चिट्ठियाँ', 'पक गई है धूप', 'कंधे पर सूरज', 'दिन एक नदी बन गया', 'जुलूस कहाँ जा रहा है', 'बारिश में भीगते बच्चे', 'ऐसे में जब कभी', 'आम के पत्ते' ये सभी एक से एक सुंदर और मानीखेज नाम हैं।

ऐसे ही एक लेखक, एक बड़े साहित्यकार के रूप में रामदरश मिश्र का जीवन बहुत सुंदर है। हमारी आदरणीया भाभी सरस्वती जी सही मायने में उनकी सहधर्मिणी हैं। उनके सुख-दुख और संघर्षों की हमसफर भी। पत्नी को जितना मान-सम्मान रामदरश जी ने दिया है, वैसा आदर देने वाले कितने साहित्यकार हमारे समय में हैं? यहाँ रामदरश जी का कद मुझे बहुत ऊँचा लगता है। हमारे दौर में शायद ही कोई साहित्यकार हो, जिसे उनकी बराबरी पर रखा जा सके।

आज के दौर में भी रामदरश जी का परिवार एक भरा-पूरा सामूहिक परिवार है। उनके बेटे-बेटियाँ, बहुएँ, बच्चे सभी इस घर-परिवार को आनंद से भरते हैं। रामदरश जी ने सिर्फ अच्छा लिखा ही नहीं है, बल्कि एक सुंदर घर भी बनाया है, जिसमें सादगी के साथ-साथ हिंदुस्तानियत की गंध है। और इसीलिए वह घर बार-बार हमें बुलाता है। पुकार-पुकारकर बुलाता है। वहाँ जाकर हमें एक अलग तरह की शांति और शीतलता मिलती है, इसलिए कि वह सच ही में एक साहित्यकार का घर है।

और इसके साथ ही वे घर में मिलने आने-जाने वालों से, फिर चाहे वे एकदम उदीयमान लेखक ही क्यों न हों, बड़े प्रेम से मिलते हैं और उन पर अपनी विद्वत्ता और बड़प्पन का कोई बोझ नहीं डालते। इसके बजाय जो भी मिला, उससे सुख-दुख का हाल वे लेते हैं, दुख में सीझते, सुख में खुश होते हैं, और हर किसी को आगे बढ़ने और अच्छा लिखने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

इसके साथ-साथ उनकी कलम भी निरंतर चलती रहती है। जो भी मन में आया, वह रामदरश जी पूरे मन से लिखते हैं। कुछ और नहीं तो डायरी लेखन और संस्मरण, ये दो आत्मीयता भरा विधाएँ तो हैं ही, जिनमें उनका मन आजकल बहुत बहता है। चाहे थोड़ा लिखें या अधिक, पर कुछ न कुछ लिखना रामदरश जी को प्रिय है। डायरी लेखन और संस्मरण अपेक्षाकृत खुली विधाएँ हैं, जिन्हें साधने में विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता। इसलिए इन दो विधाओं में वे निरंतर ही कुछ न कुछ लिखते हैं। इसी सिलसिले में रामदरश जी की एक गजल याद आती है। इस गजल में रामदरश जी ने बड़ी खूबसूरती से अपने मन की कुछ बातें कही हैं। बहुतों को इस बात पर हैरानी होती है कि भला इस वय में भी रामदरश जी निरंतर कैसे लिख पाते हैं। इसका उत्तर भी उन्होंने इस गजल में गूँथ दिया है। असल में, मन में कुछ कहने के लिए हो, तो फिर राह भी

निकल ही आती है। पर मन में संवेदना ही न हो, दूसरों के सुख-दुख के साथ कोई भावनात्मक लगाव न हो, तो आप न लिखने के कारण पर बहसें भले ही करते रहें, पर जब लिखने की बारी आती है, तो आईना आपको बता देता है कि आप कहाँ खड़े हैं। खुद रामदरश जी की यह गजल भी ऐसे लोगों को आईना दिखाने का काम करती है-

चाहता हूँ कुछ लिखूँ, पर कुछ निकलता ही नहीं है,
दोस्त, भीतर आपके कोई विकलता ही नहीं है!
तब लिखेंगे आप जब भीतर कहीं जीवन बजेगा,
दूसरों के सुख-दुखों से आपका होना सजेगा।
टूट जाते एक साबुत रोशनी की खोज में जो,
जानते हैं जिंदगी केवल सफलता ही नहीं है!....

बगैर कठोर शब्दों का इस्तेमाल किए, इतनी सीधी और खरी बात कैसे कही जा सकती है, यह हमें रामददरश जी से सीखना चाहिए।

रामदरश जी मेरे गुरु हैं। उन्होंने कभी पढ़ाया नहीं, पर मेरे वे ऐसे गुरु हैं, जिन्होंने मेरे अंत: करण को प्रकाशित किया है, और मैं अपने समूचे व्यक्तित्व पर उनकी अनुराग भरी छाया महसूस करता हूँ।

आज इस अवस्था में भी, वे गुरु की तरह मेरे पथ को प्रकाशित करते, और जहाँ कहीं झाड़-झंखाड़ है, वहाँ भी रास्ता बनाते नजर आते हैं। कभी-कभी मैं सोचता हूँ, अगर संयोगवश दिल्ली आते ही रामदरश जी के बड़प्पन की स्नेह छाया को मैंने करीब से महसूस न किया होता, और उनके इतने निकट न आया होता, तो यकीनन मैं ऐसा न होता, जैसा आज हूँ। मुझे बनाने में जिन्होंने अपना बहुत कुछ खर्च किया, उनमें रामदरश जी भी हैं। अपने स्नेह से माँज-माँजकर उन्होंने मुझे उजला किया है। तब शायद इतना न समझ सका होऊँ, पर आज मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि उनके निकट आने पर मेरी फालतू अहम् की बहुत सारी केंचुलें छूटती गई हैं, और मैंने महसूस किया है, कि भीतर-बाहर से सरल होने का सुख क्या होता। इसके आगे दुनिया के सारे सुख और बड़ी से बड़ी सफलताएँ भी पोच हैं। इस समय जब रामदरश जी अपनी उम्र के आखिरी चरण में हैं, और अब भी अपनी धुन में जी रहे हैं, लिख और पढ़ रहे हैं, मैं कई बार उन्हें टटोलने की कोशिश करता हूँ। उन्हें बहुत देर से वे चीजें मिलीं, जो बहुतों को शुरू-शुरू में और अनायास ही मिल गई थीं, तो क्या उन्हें साहित्य जगत से इस बात की शिकायत है? पर मेरे लिए यह एक सुखद आश्चर्य की बात है कि रामदरश जी इस सबसे बहुत ऊपर उठ चुके हैं। हाँ, जो उनके निकट हैं, उनमें कोई कितना ही मामूली आदमी क्यों न हो, उसके प्रति एक भावनात्मक लगाव उन्हें हर वक्त तरंगित करता है। इस मैत्री और अपनत्व के सुख को वे अंदर तक महसूस करते हैं। और यहाँ तक कि अपने निकटस्थ मित्रों और आत्मीय जनों के लिए वे कृतज्ञता से भरे हुए जान पड़ते हैं। उनकी एक प्रगीतात्मक कविता उनकी इस भावस्थिति को बड़ी सुंदरता से अभिव्यक्त करती है। जरा आप भी पढ़ें इस कविता की ये पंक्तियाँ-

आभारी हूँ बहुत दोस्तो, मुझे तुम्हारा प्यार मिला,
सुख में, दुख में, हार-जीत में एक नहीं सौ बार मिला!

इतना लंबा सफर रहा, थे मोड़ भयानक राहों में,
ठोकर लगी, लड़खड़ाया, फिर गिरा तुम्हारी बाँहों में,

तुम थे तो मेरे पाँवों को छिन-छिनकर आधार मिला!
आया नहीं फरिश्ता कोई, मुझको कभी दुआ देने,

मैंने भी कब चाहा, दूँ इनको अपनी नौका खेने,
बहे हवा-से तुम, साँसों को सुंदर बंदनवार मिला!

हर पल लगता रहा कि तुम हो पास कहीं दाएँ-बाएँ,
तुम हो साथ सदा तो आवारा सुख-दुख आए-जाए,
मृत्यु-गंध से भरे समय में जीवन का स्वीकार मिला!

ये ऐसी पंक्तियाँ हैं, जिनमें हृदय की संवेदना छल-छल कर रही है। इसलिए इन्हें पढ़ते हुए कभी आँखें भीगती हैं तो कभी अनायास अपने समय के इस बड़े कवि के लिए आदर से भरकर, दोनों हाथ जुड़ जाते हैं, और मैं थोड़ी देर के लिए एकदम चुप और नि:शब्द खड़ा रह जाता हूँ।...

हम सबके अपने और ऐसे प्यारे रामदरश जी ने निश्चय ही दिल्ली में एक लंबा और समृद्ध जीवन जिया है और गाँव के आदमी के ठाट और स्वाभिमान के साथ दिल्ली को जिया है। लिहाजा उनके पास अनुभवों की कोई कमी नहीं है। इस पकी हुई उम्र में भी, वे जिस विधा को हाथ लगाते हैं, उसमें कुछ न कुछ नयापन ले आते हैं। कोई भी बड़ी और समर्थ प्रतिभा अपने स्पर्श से चीजों को नया कर देती है। रामदरश जी के बारे में भी यह काफी हद तक सही है। वे जीवन के कवि-कथाकार हैं, इसलिए चुके नहीं हैं। चुकते तो वे फैशनपरस्त कलावादी हैं, जो कुछ आगे जाते ही दिशाभ्रम के शिकार हो जाते हैं। इस लिहाज से बड़ी ही गहरी संवेदना से थरथराती रामदरश जी की एक कविता अकसर मुझे याद आती है, 'छोड़ जाऊँगा'। इसे पढ़ें तो पता चलता है कि रामदरश जी जीवन की इस अवस्था में करीब-करीब जीवन-मुक्ति की सी अवस्था में पहुँच गए हैं। इसीलिए भीतर की सारी उथल-पुथल से मुक्ति पाकर, अब वे बड़ी निस्पृहता के साथ कह सकते हैं कि जब वे जाएँगे तो कुछ कविता, कुछ कहानियाँ, कुछ विचार छोड़ जाएँगे, जिनमें कुछ प्यार के फूल होंगे और कुछ हम सबके दर्द की कथाएँ भी। उनके जीवन का सबसे बड़ा खजाना भी यही है-

तुम नम्र होकर इनके पास जाओगे
इनसे बोलोगे, बतियाओगे
तो तुम्हें लगेगा, ये सब तुम्हारे ही हैं
तुम्ही में धीरे-धीरे उतर रहे हैं

और तुम्हारे अनजाने ही तुम्हें
भीतर से भर रहे हैं।
मेरा क्या
भर्त्सना हो या जय-जयकार,
कोई मुझ तक नहीं पहुँचेगी...

हालाँकि जो सहृदय पाठक केवल शब्दों को ही कविता नहीं मानते, बल्कि शब्द और शब्द तथा पंक्ति और पंक्ति के बीच के खाली स्थान को भी पढ़ना जानते हैं, उनके लिए यह बात अबूझ न होगी कि रामदरश जी की इस निस्पृहता के भीतर बहुत गहरी रागात्मकता की एक नदी बह रही है। वे कितना भी चाहें, उससे मुक्त हो ही नहीं सकते।

रामदरश जी ने पूरी शिद्दत से इस दुनिया को चाहा है, जी भरकर प्यार किया है, और शायद सपने में भी इससे परे जाने की बात नहीं सोच सकते। वे तो इस दुनिया के हैं, इसकी धूल. मिट्टी, खेत, नदी, रेत और कछारों से जुड़े हैं, इसलिए हमेशा-हमेशा इस दुनिया में ही रहेंगे। जिस कवि-कथाकार ने अपने अस्तित्व का कण-कण, रेशा-रेशा इस दुनिया को दे दिया हो, वह भला शतायु होने के दुर्लभ सुख-आनंद के पलों में अपनों से दूर जा भी कहाँ सकता है? तो रामदरश जी हमेशा से इस दुनिया के थे और इस दुनिया के ही रहेंगे। यही उनकी कविता और सर्जना की चरम सार्थकता भी होगी।

हाँ, हम सब भी, जो रामदरश जी को इस कदर सक्रिय और कर्मलीन रहते हुए, धीर-गंभीर पदों से शतायु होने के करीब, बहुत करीब जाते देख रहे हैं, कम सौभाग्यशाली नहीं हैं। यह हमारे लिए गौरव ही है कि हमने अपने समय के एक बड़े कवि-कथाकार को धीरे-धीरे कमल की तरह खिलते-खुलते और चतुर्दिक अपनी गंध बिखराते देखा है और मैं तो अपने आप को इसलिए भी बहुत सौभाग्यशाली मानता हूँ कि मैंने उन्हें बहुत निकट से देखा है, उनसे खुलकर बातें की हैं। उनसे बहुत कुछ सीखा और पाया भी है। एक बड़े कद के संवेदनापूरित गुरु की तरह वे मेरे भीतर भी हैं, बाहर भी। यह सुख क्या मैं कभी शब्दों में बाँध सकूँगा? ईश्वर ने चाहा तो रामदरश जी इसी तरह बरसोंबरस तक हमारे बीच रहेंगे, और हम सबके प्रेरणा संबल बने रहेंगे। फिलहाल तो आप और हम यही कामना कर सकते हैं कि वे स्वस्थ रहें, सक्रिय रहें, और जो कुछ भीतर उमड़े, उसे निरंतर लिखते रहें। उनकी सक्रियता से लगता है, हिंदी साहित्य में विद्वेष और नफरत की आँधियों के बीच प्रेम और अपनत्व की धारा एकदम सूख नहीं गई है।

प्रकाश मनु, 545 सेक्टर–29, फरीदाबाद (हरियाणा)–121008
मो. : 09810602327, ई–मेल : prakashmanu333@gmail.com

✧ ✧ ✧

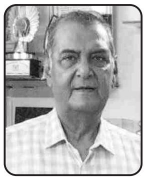

सीगिरिया पुराण

प्रो. (डॉ.) रत्नेश्वर मिश्र

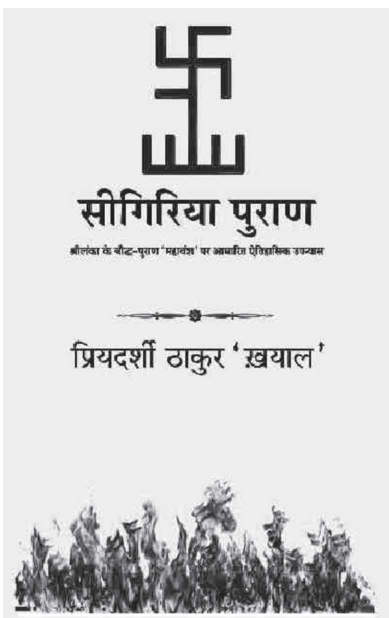

लेखक : प्रियदर्शी ठाकुर 'ख़याल'
प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ (2021)
मूल्य : रू. 450 (हार्डकवर)

'सीगिरिया पुराण' अपने नाम से भी और स्वयं लेखक प्रियदर्शी ठाकुर 'खयाल' की स्वीकारोक्ति से श्रीलंका के बौद्ध पुराण 'महावंश' पर आधारित ऐतिहासिक उपन्यास है। ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य लेखन की वह विशिष्ट विधा है जिसमें किसी क्षेत्र-विशेष के ऐतिहासिक कालखंड में वस्तुत: घटित घटना और उसमें जुड़े पात्र एवं स्थानादि का तथ्य पूर्ण विवरण होता है, किन्तु जहाँ ऐसे तथ्य उपलब्ध न हों वहाँ कल्पना से वर्णित युग के अनुरूप शाब्दिक चित्रण से साहित्यिकता का सृजन किया जाता है। प्रस्तुत उपन्यास में ऐसी ही चेष्टा परिलक्षित है। इस क्रम में अनेक स्थलों का उल्लेख किया जा सकता है किन्तु उपन्यासकार ने अपने सर्वाधिक महत्वपूर्ण पात्र मोगल्लान के भारत के पल्लव राज्य में बिताये दिनों के काल्पनिक तथा ऐतिहासिक चित्रण की समन्वित प्रस्तुति में जिस विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है वह सर्वतोभावेन प्रशंसनीय है।

ऐतिहासिक उपन्यास लेखन प्राय: ही आकर्षक, प्रेरणादायक और उर्जस्वितापूर्ण होता है किन्तु कभी कभी यह बहुत ही चुनौतीपूर्ण भी हो सकता है। प्रस्तुत रचना में ऐतिहासिकता को यथा संभव बनाये रखने के प्रति प्रतिबद्ध रहकर भी सृजनात्मक कल्पनाशीलता के सहारे उलझनपूर्ण घटनाओं को रोचक और पठनीय ढंग से प्रस्तत किया गया है। इस उद्देश्य से, एक ओर जहाँ उन्होंने 'महावंश' के चूलवंश में वर्णित कथा को अपनी कहानी का आधार बनाया और अनेक मूल स्रोत-ग्रंथो से उसकी पुष्टि करने का प्रयत्न किया वहीं उन्होंने

सतर्कता बनाये रखने की चेष्टा भी की कि श्रीलंका और भारत जैसे पड़ोसी राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्ध को दुष्प्रभावित करने वाला कोई प्रकरण इतिहास-सम्मत न होने पर भी सम्मिलित न हो जाए। इसके बावजूद यह उल्लेखनीय है कि पूरे उपन्यास में प्रत्येक पात्र किसी न किसी तरह लेखक की संवेदनाओं का संवाहक बना दिखता है। महाराज धातुसेना हों या दासी से उत्पन्न उनका बड़ा पुत्र कश्यप, राजाज्ञा से जला कर की गई अपनी माता की हत्या के प्रतिशोध के लिए आकुल महाराज का भांगा मिगार हो अथवा स्वयं महाराज की हत्या के प्रतिशोध के लिए सर्वथा धैर्यपूर्वक वर्षो प्रतीक्षा करनेवाला युवराज मोगल्लान, इन सभी के जीवन तथा चिंतन में निहित संघर्ष तथा उनके अन्तर्द्वन्द्व को जिस अपनापन ने प्रस्तत किया गया है वह अनन्य है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि लगभग इतिहास पढ़ते हुए भी इस पुस्तक में साहित्य की सरसता सर्वथा बनी रहती हे।

हिंदी में सही अर्थों में ऐतिहासिक उपन्यासों की संख्या उक्त भाषा की प्रतिष्ठा के अनुरूप पर्याप्त नहीं कही जा सकती है। कुछ नामचीन साहित्याकरों के ऐतिहासिक उपन्यास के प्रभाव की पूर्वव्याप्ति का प्रस्तुत समीक्षा वाले पुस्तक के सन्दर्भ में आकलन करने पर जो तथ्य सामने आते हैं वे उपन्यासकार 'खयाल' के लिए विशेष रूप से प्रशंसात्मक लग सकते हैं, किन्तु हैं सत्य। वैचारिक प्रतिबद्धता के कारण कभी-कभी ऐतिहासिक तथ्यों को निराधार अथवा सत्य से दूर बताने की चेष्टा और इसके विपरीत निरी कल्पना को इतिहास अथवा इतिहास विहित बताने की चेष्टा साहित्य में भी अस्वीकार्य होनी चाहिए। 'खयाल' अपनी इस रचना में ऐसे किसी कुटावपात में नही फँसते। इसका बड़ा कारण यह है कि उन्होंने ऐतिहासिक तथ्यों के संकलन के लिए ख्यात ऐतिहासिक पुस्तकों का सहारा लिया और इस पुस्तक के अंत में उनकी सूची देकर पाठकों को अपने ढंग से घटनाओं को समझने की सुविधा प्रदान कर दी तथा उनको अपनी प्रस्तुति को जाँचने-परखने की छूट भी दे दी। इतना ही नहीं, उन्होंने अपनी पुस्तक का श्रीलंका के दो प्रसिद्ध इतिहासज्ञों निमाल डी सिल्वा तथा अजीत अमरसिंघे से संवीक्षण तथा परिनिरीक्षण भी करवा लिया। इतिहासकार भी और साहित्यकार भी इतिहास की घटनाओं की अपने-अपने ढंग से व्याख्या कर सकते हैं किन्तु साहित्यकारों को वांछित स्थान पर पाद-टिप्पणी अथवा अन्य टिप्पणियों से स्पष्ट कर देना चाहिए कि वे इतिहासकारों की व्याख्या से क्यों असहमत हैं, अथवा जहाँ इतिहासकारों का प्रवेश नहीं हो पाया है अर्थात जहाँ एकाधिक घटनाओं के बीच बची अज्ञानता की खाई को वे नहीं पाट पाये हैं, वहाँ साहित्यकार कैसे पहुँच पाये। बड़ी निष्ठा से लेखक ने अपनी पुस्तक की भूमिका 'कुछ खास बातें' में स्पष्ट कर दिया है कि मोगल्लान के जम्बूद्वीप के प्रवास के विषय में प्रामाणिक विवरण नहीं उपलब्ध होने के कारण उन्होंने साहित्यिकता अथवा कल्पना का सहारा लिया है। ऐतिहासिक उपन्यास में कितने परिमाण में इतिहास हो और कितने में साहित्य यह निर्णय करना उपन्यासकार का विशेषाधिकार है किन्तु यह अंतिम अधिकार तो पाठक का है कि वह कह सके कि जो लिखा गया वह इतिहास है या उपन्यास या वस्तुत: ऐतिहासिक उपन्यास। इन पंक्तियों में लेखक समीक्षक है, किन्तु उससे पहले वह पाठक है, और दोनों ही रूपों में वह निर्णयात्मक रूप से कह सकने में संतुष्ट है कि ''सिगिरिया पुराण'' इतिहास और कल्पना का सम्यक समन्वय बनाये रखने में सर्वतोभावेन सफल हैं।

''सिगिरिया पुराण'' श्रीलंका के इतिहास की पाँचवीं शताब्दी की घटनाओं पर आधाारित कथाओं का पुनर्वाचन जैसा है। ये कथाएँ वस्तुत: अब किसी न किसी रूप में लोक कथाओं में समाहित होकर अन्यथा भी श्रीलंका के साहित्यिक इतिहास का अंश है और पर्याप्त प्रचलित भी है।

कथा के इस पुनर्वाचन के क्रम में उपन्यासकार ने अपनी साहित्यिक रचनात्मकता का विशिष्ट परिचय दिया है और ऐतिहासिक तथ्यों को भी उन्होंने नवीन और रोचक, किन्तु स्वीकार्य रूप दिया है। कथ्य और उसका स्वरूप यथासंभव ऐतिहासिक है, वर्ण्य स्थान और उसकी पृष्टभूमि में वृहतर क्षेत्र तथा सिंहल और जम्बद्वीप आदि भी ऐतिहासिक है, मुख्य पात्रादि तो निश्चय ही ऐतिहासिक हैं किन्तु सर्वत्र लेखक की प्रस्तुति निजी है। इस पुस्तक के प्रकाशन के बाद इसमें वर्णित तथ्यों पर पहले की तुलना में विवेचना अधिक होगी, ऐसी सम्भावना तो व्यक्त की ही जा सकती है। सिगिरिया श्रीलंका के पूर्व से प्रसिद्ध अक्ष-पर्वत को महाराज कश्यप द्वारा दिए गए नाम सिंहगिरि का परिवर्तित अथवा अपभ्रंश सीगिरि से निकला हुआ नाम है। कश्यप ने उस दुर्भेद्य दुर्ग जैसे पर्वत पर अपनी नयी राजधानी बनवाई ताकि वह अपने छोटे सौतेले भाई मोगल्लान से अपनी रक्षा कर सके जो उसे पारम्परिक राजधानी अनुराधापुर में संभव नहीं लगती थी। परन्तु, उसकी सारी सुरक्षा व्यवस्था धरी रह गयी क्योंकि जब अट्ठारह वर्षों की तैयारी के बाद मोगल्लान सैन्य दल-बल लेकर आया तो जन-सामान्य अपनी सद्भावना संग उसके सहयोग के लिए उठ खड़ा हुआ और कश्यप के पास आत्महत्या के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं बचा। ऐतिहासिक उपन्यास में रचनाकार अवसर पा कर अपने काल और परिवेश की ज्वलंत समस्या पर स्पष्ट या छदभ टिप्पणी कर सकता है। यह कहना संभव नहीं है कि यहाँ ऐसी टिप्पणी की गयी है या नहीं, किन्तु पाठक की दृष्टि में लेखक एक शाश्वत सत्य को रेखांकित करने में समर्थ दिखता है कि सत्ता को जब जन समर्थन नहीं होता है तो कितने भी सुरक्षा कवचों के पीछे बैठा शासक असुरक्षित ही रहता है।

यहाँ एक बात दुहराने योग्य है कि ऐतिहासिक उपन्यास वह विधा है जिसमें क्षेत्र विशेष के किसी काल-खंड की प्रख्यात कथा का चित्रण हो। यह द्रव्टव्य है कि हिंदी के कई उपन्यास इस एक शर्त की कमी अथवा मात्र इसी एक शर्त के होने के कारण या तो शीघ्र ही विस्मृत हो गए या आलोचकों की दृष्टि में बहुत आदरणीय नहीं रह सके, और ऐसा प्रसिद्ध साहित्यकारों और उनकी रचनाओं के सन्दर्भ में भी हुआ। प्रस्तुत उपन्यास में शुद्ध इतिहास भी है जैसे चूलवंश की कथाएँ अथवा उससे भी बढ़कर यह कहना की श्रीलंका के तमिल तो भारतीय मूल के हैं ही, श्रीलंका को सिंहलद्वीप का नाम देनेवाले सिंहली भी वहाँ के मूल निवासियों तथा जम्बूद्वीप से आये आर्यों के मेल से बनी प्रजाति है (पृष्ठ 18)। यह इतिहास सिद्ध तथ्य भी है पूर्वोत्तर भारत तथा श्रीलंका की आदिम जातियों के मिश्रण से बने हैं सिंहली। यह उपन्यास अपनी ऐतिहासिकता के कारण भी पठनीय है किन्तु इतिहास कहीं भी पुस्तक को बोझिल नहीं करता।

''सिगिरिया पुराण'' की एक और विशेषता, पात्रों का चित्रांकन है। महाराज धातुसेना का विपरीत परिस्थितियों में भी अपना धैर्य एवं राजसी व्यवहार बनाए रखना, कश्यप का पश्चाताप और राजा होकर भी किसी और के नियंणाधीन रहने की विवशता, मोगल्लान का स्पष्ट उद्देश्य संग भारत पलायन किन्तु वहाँ उद्देश्य की पूर्ति न होने की संभावना के बावजूद राजसी संतुलन बनाए रखना, मिगार का शारीरिक और मानसिक रूप से स्पष्टत: प्रति-नायक का स्वरूप एवं इस रूप में सफलता के बावजूद वीतरागी तथा निर्विकारी-सा रहना ऐसी चारित्रिक विशेषतायें हैं जो उपन्यासकार ने विलक्षण ढंग से उकेरी है। इसके अतिरिक्त महारानी सुमनवल्लरी, दासीरानी अधरअमृता, पल्लव राजकुमारी चित्रांगदा, परिचारक महानाम जैसे प्रकृतित: अलग मूल्यों के संग जीनेवाले पात्रों के द्वन्द्व एवं संघर्षों का भी रोमांचक ढंग से विवरण दिया है। एक उल्लेखनीय बात यह भी है कि लेखक ने प्रत्येक पात्र की परिस्थितियों और उनके कृत्यों का वर्णन कर उनके विषय

में कोई स्पष्ट निर्णय स्वयं न देकर पाठकों पर छोड़ दिया है कि वे अपना निष्कर्ष आप ही निकालें। पात्रों के हर्ष-विषाद, निष्ठा-षडयंत्र तथा भावनाओं और कृत्यों के विषय में रचनाकर पूरे अपनापन से वर्णन करते हैं पर अंततोगत्वा वे निरपेक्ष बने दिखते हैं। लेखक कभी कहीं किसी पात्र के पक्ष या विपक्ष में खड़े नहीं दिखते । यह कहा जा सकता है कि उपन्यास में लेखक किसी पात्र को नायक अथवा किसी को प्रति-नायक के रूप में दिखाने की चेष्टा नहीं करते है जैसा अन्यथा उपन्यासों में सामान्य-सी परिपाटी होती है। इसी क्रम में यह उल्लेख कर देना भी समुचित होगा कि उपन्यासकार चित्रांकन की प्रभावोत्पादकता को बढ़ाने के लिए कहीं भी सुस्थापित तथ्यों एवं घटनाओं में यथासंभव कोई परिवर्तन नहीं करते और इसलिए उनकी यह रचना पाठक को, चाहे वह ऐतिहासिक सन्दर्भो का जानकार हो या ना हो, सर्वथा ग्राह्य होनी चाहिए।

साहित्यकार 'ख्याल' का भाषा पर अधिकारा स्तुत्य है। उनकी भाषा सामान्यत: संस्कृत सम्मत है किन्तु उन्हीं के शब्दों को उद्धृत करके कहा जा सकता है कि उन्होंने कतिपय शब्दों को यथावत स्वीकार कर देश और काल की विशिष्टता बनाये रखने की सफल चेष्टा की है। उनका कथन है कि लंका के स्थानीय वातावारण का कुछ रंग इस किताब में बनाये रखने की दृष्टि से कुछ वस्तुओं के लिए वही शब्द उपयोग किये हैं जिनसे वे लंका में जाने जाते हैं। मिसाल के तौर पर कामिनी फूल के लिए अन्दरगस, जूही के लिए समनपिच, हरसिंगार के लिए सेपालिका और नागचम्पा या गुलेंच के लिए अरलिया, दागब मोटे तौर पर वही होता है जिसे हम भारत में स्तूप कहते है। लंका में ताता पिता को और बाप्पा दादा को कहते हैं।' इस उद्धरण में भी और अन्यत्र भी भाषा का प्रभाव बनाये रखने के लिए लेखक ने उर्दू के शब्दों का खुलकर प्रयोग किया है। वैसे भी, वे उर्दू के स्थापित कवि हैं। वे मौलिक रूप से मैथिली-भाषी हैं और इसलिए उनके द्वारा 'खदबदाती हुई हांडी,' टघर आना' व 'भागिन' जैसे शब्दों तथा अभिव्यक्ति का प्रयोग सुखकारी लगता है। भाषा का ऐसा प्रयोग सदैव समन्वय और सद्भाव को बल देता है।

सारांशत: पाठकों को वर्ण्य देश और काल में सहजता से ले जाने की दृष्टि से और उन्हें उन दिनों के मूल्य, सोच तथा व्यवहार के तथ्यान्वेषण एवं कल्पना के सम्यक संयोजन द्वारा अपने शब्द-चित्रण के माध्यम से परिचित कराने की दृष्टि से प्रस्तुत उपन्यास पठनीय है। ऐतिहासिक उपन्यास का हिंदी का भण्डार भरने की दृष्टि से तो यह अभिनंदनीय है ही। अंत में यह उल्लेख कर देना भी वांछित है कि ''सिगिरिया पुराण'' में पात्रों के नाम और उनकी इतिहास-मान्य तिथियाँ देकर उपन्यासकार अपने उपन्यास का बार-बार ऐतिहासिक होने का उद्घोष करते हैं किन्तु ऊपर की गई विवेचना के अनुसार यह दुहराया जा सकता है कि वे अंततोगत्वा साहित्यकार के रूप में प्रतिष्ठित दिखते हैं, किन्तु इस क्रम में वे ऐतिहासिक-उपन्यास लेखन शैली को कई अवदान देते हैं। भारतीय ज्ञानपीठ ने इस पुस्तक को प्रकाशित कर लेखक की प्रतिष्ठा को मान्यता दी है, किन्तु यह उपन्यास भी ज्ञानपीठ की प्रतिष्ठा का विस्तार करता प्रतीत होता है।

प्रो. (डॉ.) रत्नेश्वर मिश्र, 403, कर्पूरा प्रतिभा पैलेस, गाँधी पथ,
नेहरू नगर, पटना–800013

✧ ✧ ✧

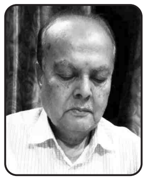

हिन्दी साहित्य के शिखर पुरुष- डॉ० राम निरंजन परिमलेन्दु

डॉ. राम सिंहासन सिंह

डॉ० राम निरंजन परिमलेन्दु का सम्पूर्ण जीवन लेखन में ही समर्पित रहा। सर्वप्रथम नागरी प्रयारिणी सभा, वाराणसी से प्रकाशित 'भारतेन्दुकाल के भूले विसरे कवि और उनका काव्य' साहित्यकारों को अपनी ओर आकर्षित किया। इस ग्रंथ में 19वीं शताब्दी के 750 अज्ञात, विस्मृत अवगेषित और अल्पज्ञात हिन्दी कवियों का अध्ययन-अनुशीलन किया गया है। साहित्य मनीषियों का कहना है कि हिन्दी में बीसवीं शताब्दी में ऐसा पहली हुआ। परिमलेन्दु जी की यही मौलिकता साहित्य जगत में पहचान बनी। साहित्य सृजन अधिकांशतया तथा कुटिया में ही संभव हुआ है।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी, गंभीर चिन्तक, सरल-सरस सादगी सम्पन्न विनोदी व्यक्तित्व से युक्त डॉ० राम निरंजन परिमलेन्दु अपने पाठकों एवं श्रोताओं को मंत्रमुग्ध करने की अद्‌भुत क्षमता, योग्यता एवं दक्षता रखते थे। यों तो गया की धरती साहित्यिक क्षेत्र में ऊर्जावान हैं हीं अध्यात्म, ज्ञान, विज्ञान के क्षेत्र में भी अग्रगण्य है। इसी धरती पर पं० जानकी वल्लभ शास्त्री, पं० मोहनलाल महतो विभोगी, डॉ० ब्रजमोहन पाण्डेय बलिन पं० हंस कुमार तिवारी, श्री गुलाब खंडेलवाल, गोवर्द्धन प्रसाद सदय आदि साहित्याकरों ने अपनी साहित्य-साधना से इस धरती को पुष्पित और पल्लवित किया। इसी कड़ी में डॉ० राम निरंजन परिमलेन्दु विशिष्ट कड़ी के रूप में हमारे बीच उपस्थित होकर साहित्य की गरिमा को आगे बढ़ाया। उनका प्रेरक एवं प्रतिभाशाली चुम्बकीय व्यक्तित्व बरबस ही लोगों को आकृष्ट करता है। साहित्य-सृष्टा के साथ-साथ वे साहित्य निर्मित के अनुभवी प्रेरक तथा साहित्य-सर्जना के प्रेरणा स्त्रोत थे। उनकी साहित्य-साधना से प्रभावित एवं प्रेरित होकर अनेक युवा-कवियों में काव्य-सर्जना की भावना जागरित हुई है। निः संदेह ही उन्हें-सूर्योदयी संकल्पो के रचनाकार के साथ-साथ उनमें कला की उत्कृष्टता, गहन-चिंतन क्षमता, जीवनानुभूति की संश्लिष्टता वैचारिक गांभीर्य, मानवीय मूल्यों की स्थापना तथा जीवनादर्शो के प्रति-अटूट आस्था, विश्वास एवं निष्ठा का

भाव परिलक्षित होता है। उनकी विद्वता, सहदयता एवं सौम्य प्रकृति ने अनेक लोगों को आकर्षित किया है।

प्रोफेसर डॉ० राम निरंजन परिमलेन्दु का जन्म 24 अगस्त 1935 को हुआ था। 1953 से ही हिन्दी में डॉ० परिमलेन्दु की मौलिक रचनाओं का पदार्पण होने लगा था। 1953 से अब तक सुवीर्थ, गहर और व्यापक साहित्य-साधना ने उनको शिखर पुरुष के रूप में स्वीकार कर लिया। विगत बासठ वर्षों से भारत की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में अनेक विधाओ में सहस्त्राधिक मौलिक रचनाओं को प्रकाशित कर वे अमरता के निकट पहुँच चुके थे। सच्चे अर्थो में वे मौलिक और दार्शनिक साहित्यकार थे।

डॉ० राम निरंजन परिमलेन्दु का सम्पूर्ण जीवन लेखन में ही समर्पित रहा। सर्वप्रथम नागरी प्रयारिणी सभा, वाराणसी से प्रकाशित 'भारतेन्दुकाल के भूले विसरे कवि और उनका काव्य' साहित्यकारों को अपनी ओर आकर्षित किया। इस ग्रंथ में 19वीं शताब्दी के 750 अज्ञात, विस्मृत अवगेषित और अल्पज्ञात हिन्दी कवियों का अध्ययन-अनुशीलन किया गया है। साहित्य मनीषियों का कहना है कि हिन्दी में बीसवीं शताब्दी में ऐसा पहली हुआ। परिमलेन्दु जी की यही मौलिकता साहित्य जगत में पहचान बनी। साहित्य सृजन अधिकांशतया तथा कुटिया में ही संभव हुआ है। राज महलों में रहकर साहित्य सृजन संभव नहीं हो सका। व्यास-वाल्मीकि, तुलसी-सूर-कबीर सभी कुटिया वासी ही रहे तो भारतेन्दु से लेकर निराला तक अधिकांश साहित्यकार गरीबी की जीवन रेखा से नीचे ही रहकर साहित्य सृजन कर कालजयी साहित्य दे गये। वैसे ही साहित्य सृजन के रूप में प्रो० राम निरंजन परिलेन्दु के व्यक्तित्व और कृतित्व में हम पाते हैं। इनकी दूसरी पुस्तक 'भारतेन्दुकाल का अल्पज्ञात हिन्दी साहित्य' हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, इलाहाबाद से जब प्रकाशित हुआ तो साहित्य जगत में तहलका-सा मच गया। इस ग्रंथ में हिन्दी साहित्य की विभिन्न सम्पूर्ण गद्य विधाओं में भारतेन्दु काल के सर्वथा अज्ञात, विस्मृत, अगवेषित साहित्यकारों का अध्ययन अनुशीलन किया गया है। ऐसा कहा जाता है कि उपर्युक्त दोनों ग्रंथो ने हिन्दी साहित्य के इतिहास की धारा ही बदल दी।

सचमुच प्रो० (डॉ०) राम निरंजन परिमलेन्दु एक ऐसे व्यक्तिव के धनी है जो विविध आयामी हैं। वे उच्च कोटि के प्राध्यापक, समीक्षक, चिन्तक, साहित्यकार शोध निर्माता तथा अध्ययनशील मनीषी रहे हैं। वे भावनाओं के अथाह सागर थे, वे चिंतन के पर्वत शिखर थे, वे धरती के प्रेमधारा में बंधे वह झरने थे जो धरती को उपकृत करने के लिए शिखरों से उतरने में भी संकोच नहीं करते थे। वे ऐसे दरिया थे जो उफनते नदी, वरन् अपने शीतल जल से प्यासों के प्यास बुझाते थे। वे ऐसे पुरुष थे जो केवल सुगंध बिखेरना ही जानते थे। समाज और राष्ट्र में किसी भी व्यक्ति की पहचान उसके ज्ञान और गुणों के कारण होती है। साधारणत: यह माना जाता है कि एक व्यक्ति किसी एक विशेष गुण में ही पारंगत होता है, किन्तु डॉ० राम निरंजन परिमलेन्दु के साथ ऐसा नहीं देखा गया। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। गद्य-पद्य, आलोचना तथा नयी खोज के वे सशक्त हस्ताक्षर थे।

परिमलेन्दुजी के प्रमुख रचनाओं में –'अध्योध्या प्रसाद खन्नी, प्रकाशक-साहित्य अकादेमी नई दिल्ली, 'खड़ी बोनी का गद्य, 1887 में प्रकाशित खड़ी बोली कविताओं के सर्वप्रथम संकलन का विद्ववता पूर्ण सम्पादन, हिन्दी का गौरवग्रंथ प्रकाशक-साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, मोहनलाल महतो वियोगी' बिहार के वरिष्ठ साहित्यकार वियोगी जी पर प्रकाशित सर्वप्रथम पुस्तक, प्रकाशक साहित्य अकादमी नई दिल्ली आदि उल्लखनीय है।

डॉ० राम निरंजन परिमलेन्दु मूल रूप से प्रोफेसर थे। उन्होंने बिहार विश्वविद्यालय में वर्षो तक सेवा दी। यद्यपि वे अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. किया था और बाद में हिन्दी साहित्य में एम. ए. कर हिन्दी साहित्य के प्रख्यात आलोचक बन गये। परिमलेन्दु जी की कृतियों पर मनीषी विद्वानों ने अपनी समीक्षा लिखकर उसमें निहित साहित्य की वैशिष्ट्य की अति प्रशंसा की है। आप भूले बिसरे साहित्याकारों की खोज कर हिन्दी साहित्य में एक नवीनता लाने का प्रयास किया जो श्लाध्य है। गहरी संवेदना से भरपूर आपके साहित्य समय में साक्षात्कार कराती है। समाज के बदलते परिपेक्ष्य में अतीत की गहराइयों तक मंथन कर वर्तमान व्यवस्था के ह्रास होते पहुलओं पर

हिन्दी साहित्य का इतिहास विशेषता उन्नीसवी शताब्दी का हिन्दी साहित्य, देवनागरी लिपि आन्दोलन का इतिहास, राष्ट्र लिपि, उन्नीसवीं शताब्दी के हिन्दी गध की विभिन्न विधाओं के आरंभिक उपन्यास, भारत में सार्वजनीत लिपि की अवधारणा का इतिहास और उसमें हिन्दीतर भाषियों का अवदान तथा नवलेखकों का मार्गदर्शन आदि इनकी प्रमुख साहित्यिक विशेषताएँ है। डॉ० परिमलेन्दु जी हिन्दी साहित्य के इतिहास के टूटी हुई कवियों को जोड़ने और उसकी भ्रांतियों के निराकरण हेतु सदैव जागरूक और सक्रिय रहे हैं।

अभिव्यक्ति देने में कहीं भी संकोच नहीं, साथ ही उन्हें पुन: स्थापित करने उनके मूल्यों को संरक्षा देने में अपने कर्तव्य-निर्वहन में पूर्णता को प्राप्त परिमलेन्दु जी सदैव मानव-हितार्थ ही रचनाओं में धर्म का निर्वाह किया है।

परिमलेन्दु जी मूलत: साहित्य-साधक थे। निरन्तर साहित्य सेवा ही उनका धर्म था। जब भी मैं उनके निकट जाता था, सदैव अध्ययनरत ही दिखते थे। भारतेन्दु काल के महत्वपूर्ण कवि और नाटककार पंडित बद्रीनारायण चौधरी, 'प्रेमधन' पर सर्वप्रथम मौलिक पुस्तक की रचना परिमलेन्दु जी की ही है। मौलिकता इनकी विशेषता रही है। इसके अतिरिक्त 'बच्चन पत्रों के दर्पण में' में भी इनकी प्रमुख रही है। डॉ० परिमलेन्दु के नाम कविवर हरिवंश राय द्वारा लिखित प्राय: सवा दो सौ साहित्यिक पत्रों का संकलन, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित है जो साहित्यिक जगत में अमूल्य योगदान कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त 'बलवंत भूमिहार' 1901 में प्रकाशित प्रेमचन्द्र पूर्व यर्थाथवादी उपन्यास का सम्पादन भी उन्होंने ही किया था। 'रामचन्द्र शुक्ल का पहला हिन्दी साहित्य का इतिहास' नाम प्रमुख ग्रंथ, साहित्य-भंडार, पं० चाहचंद जीरो

रोड, इलाहाबाद से जब प्रकाशित हुआ तो साहित्य जगत में तहलका मच गया। इस पुस्तक में उन्होंने बहुत से साहित्यकारों की चर्चा की है, जो रामचन्द्र शुक्ल द्वारा छुट गयी थी। डॉ० राम निरंजन परिमलेन्दु ने 'देवनागरी लिपि आन्दोलन का इतिहास' भी लिखा, जो संसार की किसी भाषा में लिखित देवनागरी लिपि आंदोलन का सर्वप्रथम प्रमाणिक इतिहास है। 'देवनागरी लिपि और हिन्दी संघर्षो की ऐतिहासिक यात्रा भी इनकी पुस्तक आई। यह ग्रंथ देवनागरी लिपि और हिन्दी की ऐतिहासिक यात्रा का दस्तावेज है, जो संग्रहनीय, पठनीय और मननीय भी है। हिन्दी का सर्वप्रथम मौलिक नाटक का उन्होंने सम्पादन किया जो 'आनन्द रघुनन्दन नाटक' के नाम से हिन्दी साहित्य जगत में प्रचलित है। 'राधारमण गोस्वामी रचना संचयन, राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द का हिन्दी व्याकरण आदि इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं, जो काफी प्रचलित हुई।

हिन्दी साहित्य का इतिहास विशेषता उन्नीसवीं शताब्दी का हिन्दी साहित्य, देवनागरी लिपि आन्दोलन का इतिहास, राष्ट्र लिपि, उन्नीसवीं शताब्दी के हिन्दी गद्य की विभिन्न विधाओं के आरंभिक उपन्यास, भारत में सार्वजनीत लिपि की अवधारणा का इतिहास और उसमें हिन्दीतर भाषियों का अवदान तथा नवलेखकों का मार्गदर्शन आदि इनकी प्रमुख साहित्यिक विशेषताएँ है। डॉ० परिमलेन्दु जी हिन्दी साहित्य के इतिहास के टूटी हुई कवियों को जोड़ने और उसकी भ्रांतियों के निराकरण हेतु सदैव जागरूक और सक्रिय रहे हैं। इस दिशा में वे संपूर्ण भारत में निर्विवाद रूप से एकमात्र व्यक्ति है। अखिल भारतीय स्तर पर अनेक अनुसंधाताओं ने डॉ० परिमलेन्दु जी के निर्देशन मे पी.एच.डी. और डी. लिट. की उपलब्धियाँ प्राप्त की। नि: संदेह वे शोध निर्देश के रूप में अखिल भारतीय स्तर पर लब्ध प्रतिष्ठित रहे है।

डॉ० राम निरंजन परिमलेन्दु जी ने समाज के प्रति मंगल कोशी उदार मन से कार्य किया है तथा साहित्य सेवक के रूप में आप में सरस्वती जी का सलिल-प्रवाह सदैव चिन्तन की चमक का आभास देता रहा है। परिमलेन्दु जी यह विशेषता रही है कि वे मंगलान्मुखी समाज के संवाहक के रूप में समाज और साहित्य की सेवा की है। आपने भारतीय संस्कृति की संरक्षा, वर्तमान की सुरक्षा और भविष्य के प्रति शिवत्तव से प्रेरित आकांक्षा ने समाज के प्रति उपादेय होकर उनकी महानता और श्रेष्ठता में संलिप्त होकर आज भी श्रीवृद्धि कर रहे हैं। नीतियों पर रचना एक बात है, लेकिन नैतिक साहस से अनीतियों पर विजय पाना अपने आप में उपलब्धि है और डॉ० परिमलेन्दु जी ने इसी साहस के द्वारा अनेक अवसरों पर अपनी उपलब्धियों से गुणों में शोभा बढ़ाई है, जिसका सीधा सम्बन्ध अध्ययन, चिन्तन, व्यावहारिकता तथा कार्य के प्रति निष्ठा से है। अन्त में वे अस्वस्थ होते चले गये। 29 सितम्बर 2020 को वे हमेशा के लिए हमसे विदा हो गये। ऐसे साहित्य साधक को नमन।

डॉ. राम सिंहासन सिंह, चम्पा कुंज, दुर्गा नगरी, सुधा टॉकीज मानपुर गया के नजदीक,
पो. : बुनियादगंज, गया – 823003

✧ ✧ ✧

आधुनिक हिन्दी काव्य में आख्यानपरकता

डॉ. दिलीप राम

मानव-सभ्यता के विकास के साथ ही साहित्य-सृजन की भी शुरूआत होती है। प्रकृति, जीवन और जगत इसके उपादान बनते हैं। प्रकृति और जीवन में घटने वाली घटनाएँ, कथन या वृत्तांत के स्रोत बनते हैं। इन घटनाओं और कथन वृत्तांत के प्रवाह अनुश्रुति के रूप में दंत कथाओं के रूप में इतिहास के रूप में आगे बढ़ती है फिर काव्यगत आख्यानपरकता का रूप ले लेती है।

आधुनिक हिन्दी काव्य का तात्पर्य :- सन् 1850 ई० के बाद ऐसी रचनाएँ, जो परंपरागत भाषा से मुक्त होकर खड़ी बोली (परिनिष्ठित हिन्दी में रची गईं, जिनके विषय, रूपक या कथानक प्राचीन, पौराणिक तथा ऐतिहासिक होते हुए भी शाश्वत भावों तथा समस्याएँ आधुनिक जीवन को उद्घाटित करने वाली थीं, आधुनिक हिंदी कविता कहलाई। अर्थात् अतीत के काव्य-भाव वर्तमान तथा आधुनिक जीवन के यथार्थ से निर्मित थे। भारतेंदु के बाद द्विवेदी युग में अनेक आख्यानपरक रचनाएँ प्रकाश में आईं, जिनके कथानक का आधार पौराणिक तथा मिथकीय होते हुए भी आधुनिक जीवन की व्याख्या के समर्थ एवं प्रभावकारी प्रतिमान बने। साकेत, पद्मावत, प्रियप्रवास, कामायनी, राम की शक्तिपूजा, यशोधरा, तुलसीदास आदि इसके सर्वोत्तम उदारहण हैं।

आख्यानपरकता का तात्पर्य :- 'आख्यानपरकता' को जानने से पूर्व 'आख्यान' शब्द की व्युत्पत्ति और उसके कोषगत अर्थ को जानना जरूरी है।

'आख्यान' शब्द के लिए अंग्रेजी में 'Narration' का प्रयोग मिलता है, जिसका अर्थ होता है कथन, वृत्तांत, वर्णन, विवरण आदि। आख्यान+परक का अर्थ हुआ, कथनमूलक, वृत्तांतमूलक, वर्णन तथा विवरणादिमूलक। तात्पर्य यह कि वैसी कविताएँ जिनके भाव एवं विचार कथात्मक एवं वृत्तांतमूलक हों, आख्यानपरक रचनाएँ कहलाती हैं।

कथा के प्रस्तोता को Narratior अर्थात आख्यानकर्ता कहते हैं।

छंततंजपअम में यथार्थ और कल्पना – दोनों का योग होता है। आख्यान (दंततंजवद) अर्थात् वृत्तांत एक दीर्घ कथन या लंबा वाक्य (long statements) होता है जिसका प्रत्येक वाक्यांश लघु वृत्तांत होता है। जिनके अपने स्वतंत्र मूल्य एवं भाव बोध होते हैं। यथा रामचरितमानस भक्तिकालीन वृत्ति पर आधृत निराला की 'राम की शक्तिपूजा' एक लंबी आख्यानपरक कृति है लेकिन Narrator के उस वृहत्वाक्यों में प्रत्येक वाक्यांश एक विशेष महत्व का 'कथन' होता है जो दीर्घ कथन के साथ संपृक्त होते हुए भी अपने स्वतंत्र मायने एवं अर्थ रखते हैं। वस्तुतः आख्यान या अनुश्रुति शब्द प्रारंभ से ही कथा या कहानी के रूप में प्रयुक्त होता रहा है।

कहने का तात्पर्य है कि आख्यान वृहत्तर कथा संयोजन है जो शिल्प की दृष्टि से उपन्यास के समकोटिक हैं जिसमें अनेक छोटे-छोटे एवं लघु कथ्य समानांतर गतिशील रहते हैं, इन्हें हम आख्यायिका भी कह सकते हैं, जिसमें कहानी के सभी तत्व मौजूद होते हैं। आख्यायिका वस्तुतः छोटी कहानी का पूर्व रूप भी माना जा सकता है। अतः जहाँ आख्यान अपनी आकृति में उपन्यास है तो आख्यायिका कहानी।

आख्यानपरक काव्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

मानव-सभ्यता के विकास के साथ ही साहित्य-सृजन की भी शुरूआत होती है। प्रकृति, जीवन और जगत इसके उपादान बनते हैं। प्रकृति और जीवन में घटने वाली घटनाएँ, कथन या वृत्तांत के स्रोत बनते हैं। इन घटनाओं और कथन वृत्तांत के प्रवाह अनुश्रुति के रूप में दंत कथाओं के रूप में इतिहास के रूप में आगे बढ़ती है फिर काव्यगत आख्यानपरकता का रूप ले लेती है।

इस प्रकार आख्यान वाचिक रूप में लोक मतों से पोषित एवं स्वीकृत होकर तथा लिखित रूप में वैदिक साहित्य से गतिमान होती है।

विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ वेद हैं, जो चार हैं- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। इन्हीं वेदों से साहित्यिक आख्यानपरकता की ऐतिहासिकता की पहचान की जा सकती है।

उपर्युक्त सरणी से यह स्पष्ट है कि आख्यानपरक रचनाएँ वैदिक काल से लिखी जाती रही हैं, जिसके अनेक प्रमाण हैं। खड़ी बोली हिन्दी की परम्परा में अनेक विशिष्ट एवं महत्त्व की आख्यानमूलक रचनाएँ मिलती हैं, जिसका मूल्यांकन हमें आधुनिक एवं समकालीनता परिप्रेक्ष्य में करने की आवश्यकता है। विचारनीय यह है कि –

1. क्या यह आख्यानमूलक रचनाएँ, जो खड़ी बोली में लिखी गईं, सामयिक महत्व के तथा समय के सच के साथ अन्तर्संबंध स्थापित करने में समर्थ हैं?
2. क्या पौराणिक तथा लोकमत से पोषित ये रचनाएँ वर्तमान जीवन को प्रभावित और प्रेरित करने में समर्थ हैं? क्या इनके सामयिक और कालजयी महत्व हैं? आदि-आदि।

खड़ी बोली हिन्दी के आख्यानमूलक काव्यों के सामयिक महत्व तथा कालजयी प्रभाव :

खड़ी बोली हिन्दी में काव्य-सृजन की यात्रा भारतेंदु युग से माना जाता है, जो उचित है। खड़ी बोली हिन्दी में निम्नलिखित महत्वपूर्ण आख्यानमूलक प्रबंधात्मक काव्य लिखे गये हैं-

प्रियप्रवास (हरिऔध), साकेत (मैथिलीशरण गुप्त), कामायनी (प्रसाद), उर्वशी (दिनकर), अंधेरे में (मुक्तिबोध) तथा आत्मजयी (कुँवर नारायण) ।

प्रियप्रवास (अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध') : हरिऔध जी द्विवेदीयुगीन कवि हैं। खड़ी बोली में कायदे से कविता करने का श्रेय इन्हीं को है। 'प्रियप्रवास' खड़ी बोली हिन्दी की प्रथम आख्यानमूलक प्रबंधात्मक कृति है। सत्रह सर्गों में बंटा 'प्रियप्रवास' की कथावस्तु पौराणिक आख्यानों पर आधृत श्रीकृष्ण के मथुरा गमन वृत्तांत पर आधारित है। यह एक विरह-काव्य है। विरह-व्यथित ब्रजवासियों ने श्रीकृष्ण का गुणगान करते हुए उनके कर्तव्य का वर्णन करते हैं।

कथानायक श्रीकृष्ण की महानता अलौकिक पुरुष के रूप में चित्रित है, जिसमें आदर्श, नैतिकता, लोकसेवा एवं मानव कल्याण साहित्य का परम उद्देश्य है। वृत्तांत मिथकीय होते हुए भी जीवन सत्य के निकट है। वहीं श्रीकृष्ण का युगानुरूप चित्रण गत्यात्मक एवं कालजयी है।

'प्रियप्रवास भारतीय जन-जागरण काल का ही आख्यानमूलक प्रबंधकाव्य नहीं, वह जीवन के श्रेष्ठ मानव मूल्यों का कीर्तिस्तंभ एवं प्रकाशपुंज भी है। वैज्ञानिक युग की विभीषिका में 'मानवतावाद' का सिंहनाद है। कृष्ण को केंद्र बनाकर इसमें जो वृत्तांत वर्णित है, उससे मनुष्य की महानता, जीवन की सुंदरता, प्रेम की शक्ति और सबसे अधिक मानवीय संबंधों की अनुपम कोमलता पर प्रकाश पड़ता है।' -विश्वम्भर मानव

महाकाव्य परम्परा के अनुसार 'प्रिय-प्रवास' के नायक-नायिका श्रीकृष्ण एवं राधा हैं जो पौराणिक काल के आदर्श हैं। श्रीकृष्ण महान पुरुष एवं राधा उदात्त नायिका के रूप में चित्रित हैं।

इन वृत्तांतों के आख्यानपरकता की मौलिकता इस बात में है कि राधा-कृष्ण परमब्रह्म न होकर मानव-मानवी हैं। श्रीकृष्ण लोकसेवक एवं राधा लोकसेविका के रूप में है। इन दोनों के माध्यम से कवि ने मानवीय प्रेम को धीरे-धीरे इतनी उच्च भावभूमि पर ले जाकर प्रतिष्ठित किया है कि वह व्यक्ति, परिवार, ग्राम और समाज की सीमाओं को पार करता हुआ विश्व-प्रेम में रूपायित हो जाता है। वैयक्तिकता का निर्वैक्तिकरण हो जाता है। श्रीकृष्ण के लोक-सेवक रूप का चित्रण द्रष्टव्य है :-

'जो होता निरत तप में मुक्ति की कामना से।
आत्मार्थी है, न कह सकते हैं कि उसे आत्मत्यागी।
जी से प्यारा जगत-हित और लोक-सेवा जिसे है।
प्यारी, सच्चा अवनि-तल में आत्म त्यागी वही है।'

पौराणिक आख्यानमूलक प्रियप्रवास महाकाव्य का महत् उद्देश्य विश्व-मैत्री, विश्व-कल्याण है। श्रीकृष्ण के चरित्र को मानवीय रूप देकर कवि ने इन्हें लोक-सेवा में तत्पर करवाया है। साथ ही स्थायी मानव संबंधों का सम्यक् विवेचन हृदय के साथ किया है। जहाँ माता-पिता, प्रेमी-प्रेमिका, सखा-सखी निरंतर सुख-दुख में एक-दूसरे का साथ देते हैं और पथ बाधा नहीं बनते वरन् लोकसेवा को परम उद्देश्य मानते हुए सहभागी बनते हैं।

इन आख्यानों का उद्देश्य आधुनिक मानव में मानवीय मूल्यों का संचार तथा स्वयं के लिए नहीं बल्कि लोगों के लिए जीने की अमूल्य प्रेरणा है। श्रीकृष्ण का कथन :

'है आत्मा का न सुख किसको विश्व के मध्य प्यारा।
सारे प्राणी स-रूचि इसकी माधुरी में बंधे हैं।
जो होता है न वह इसके आत्मा उत्सर्ग द्वारा।
ऐ कांते! है सफल अवनी मध्य आन उसी का।'

कला-सौंदर्य की दृष्टि से कवि ने परंपराओं से मोहभंग दिखाते हुए 'प्रकृति-वर्णन' से काव्य का प्रारंभ किया है-

'दिवस का अवसान समीप था,
गगन था कुछ लौहित हो चला।
तरुशिखा पर थी अब राजती
कमलिनी कुल वल्लभ की प्रभा।'

प्रियप्रवास सन् 1914 में रचित प्रथम आख्यानपरक प्रबंध काव्य है। महत विषय, उदात्त चरित्र, महत्व उद्देश्य, खड़ी बोली, संस्कृत छंद तथा भिन्न तुकान्त में महाकाव्य की रचना विलक्षणता का द्योतक है।

यहाँ भक्तिकालीन-रीतिकालीन इतिवृतात्मक आख्यानपरकता की प्रवृत्ति या संकेत दिखलाई नहीं पड़ते बल्कि युग अनुकूल संदेश के साथ भारतीय नवजागरण की दिशा श्रेष्ठतम् मानव-मूल्यों को पुनर्प्रतिष्ठित करने वाला यह काव्य है। वैज्ञानिक युगों की विभीषिका में मानवतावाद का जयघोष है। इसके आख्यान मनुष्य की महता जीवन की सुंदरता, प्रेम की शक्ति, मानवीय संबंधों की तरलता एवं भारतीय सांस्कृतिक विरासत को गति प्रदान करती है।

साकेत (मैथिली शरण गुप्त) : साकेत 12 सर्गों में विभक्त गुप्तजी की उत्कृष्ट आख्यानमूलक प्रबंध-काव्य है जिसमें कवि ने पौराणिक रामकथा के कुछ स्थलों के आधार पर साकेत के कथावृत्तांत की रचना की है।

काव्य का महत्व इस बात में है कि गुप्त जी ने साकेत में रामायण के परित्यक्त, विस्मृत एवं उपेक्षित प्रसंगों एवं पात्रों को प्रकाश में लाने तथा उसे आधुनिक आयाम देने का सार्थक प्रयास किया है। दूसरी विशेषता यह है कि यह भारतीय इतिहास का वह कालखंड है जब उपेक्षित-शोषित इंसान को राष्ट्र की मुख्यधारा में लाने के लिए समूचा देश संघर्ष कर रहा था न कि रामकथा को पुनर्जीवित और पुनर्प्रतिष्ठित करने का। हाँ यह जरूर कहा जा सकता है कि रामकथाओं के विभिन्न आख्यानों के माध्यम से आधुनिकता और जन सामान्य को प्रेरित करने के लिए उसे समकालीन आयाम दिए जा रहे थे।

उर्मिला को अपने यौवन निधि के लूट जाने का दु:ख है, यौवन की खिलखिल करती बेला के चले जाने का संशय है किंतु तभी लक्ष्मण आते हैं और उर्मिला को समझाते हैं-

'वह वर्षा की बाढ़ गई उसको जाने दो।
सूची-गंभीरता प्रिये, शरद की यह आने दो।'

इस तरह कर्तव्य और प्रेम में जीवन की सार्थकता को तलाशती यह आख्यानमूलक खड़ी

बोली की रचना साकेत एक ओर राष्ट्रीय मुक्ति का दायित्व का निर्वाह करती है तो दूसरी तरफ वैयक्तिक सुखभोग की लालसा को प्रस्तुत करती है। लेकिन विजय राष्ट्रीय-मुक्ति की भावना की होती है। तत्पश्चात् व्यक्तिगत जीवन की सफलता के संकेत प्राप्त होते हैं। इस प्रकार एक लंबे अंतराल के बाद युगल दंपत्ति का मिलन होता है और फिर साकेत के वृत्तांत का अंत होता है।

कामायनी (जयशंकर प्रसाद) : कामायनी आख्यानपरक काव्य की श्रेणी में भक्तिकालीन कृति रामचरितमानस के बाद खड़ी बोली हिन्दी की सर्वोत्कृष्ट कृति है। कामायनी के 'आमुख' के रूप में प्रसाद के कथन इसकी विशेषताओं को उद्घाटित करने के उपयुक्त प्रमाण हैं। मुझे लगता है कि इस संदर्भ में अलग से ज्यादा कुछ कहने सुनने की गुंजाइश नहीं बनती- 'आर्य साहित्य' में मानवों के आदि पुरुष मनु का इतिहास वेदों से लेकर पुराण इतिहासों में बिखरा हुआ मिलता है।'

कहने का तात्पर्य यह है कि- कामायनी के आख्यान आर्य साहित्य (वेदों एवं उपनिषदों पर आधृत हैं। श्रद्धा और मनु के सहयोग से मानवता के विकास की रूपक रूप में आख्यान, कथा कही गयी है। मनु ऐतिहासिक पुरुष हैं तथा मानवता के नवयुग के प्रवर्तक हैं। यह लोकमत भी स्वीकारता है।

'यदि श्रद्धा और मनु अर्थात् मनन के सहयोग से मानवता का विकास रूपक है, तो भी बड़ा ही भावमय एवं श्लाघ्य है। यह मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास बनने में समर्थ हो सकता है।' -आमुख-कामायनी -प्रसाद

कामायनी आख्यान होते हुए भी मनोवैज्ञानिक इतिहास है, क्योंकि मनोनयन ही उत्कर्ष की अवस्था है। इतिहास और कल्पना का योग आख्यान को व्यवस्थित रूप प्रदान करते हैं।

'जल-प्लावन भारतीय इतिहास में एक ऐसी प्राचीन घटना है जो मनु को देवों से विलक्षण, मानवों की एक भिन्न संस्कृति प्रतिष्ठित करने का अवसर दिया।' -प्रसाद

कहने का तात्पर्य यह है कि- जल प्लावन इतिहास की प्राचीन घटना है। आख्यान प्राचीन होते हुए भी मनुष्य की संस्कृति के प्रतिष्ठित होने की कहानी कहती है। बुद्धि का विकास, राज्य-स्थापना, बुद्धिवाद का प्रभाव, शासक एवं ज्ञानमय विश्व की परिकल्पना जैसे आधुनिक युगबोध प्राचीन आख्यानों को नवीनता प्रदान करती है।

डॉ. नामवर सिंह के शब्दों में कामायनी के आख्यानपरकता को लेकर यही कहा जा सकता है कि- 'कामायनी के रूपक प्राचीन हैं, भाव शाश्वत हैं तथा समस्याएँ आधुनिक हैं।'

अतः कामायनी के आख्यान प्राचीन होते हुए भी समरसता का मूल मंत्र देती है। सहअस्तित्व का संदेश देती है-

'औरों को हँसते देखो मनु, हँसो और सुख पाओ
अपने सुख को विस्मृत करलो, सबको सुखी बनाओ!'

मानवता के विजयिनी होने की कामना कामायनी का महत् संदेश है।

'शक्ति के विद्युतकण जो व्यस्त विकल बिखर हैं, हो निरुपाय,
समन्वय उसका करे समस्त विजयिनी मानवता हो जाय!'

राम की शक्ति-पूजा (निराला) : आख्यानपरकता की दृष्टि से 'राम की शक्ति-पूजा' समकालीनता में अपने युगीन बोध को प्रभावकारी रूप में प्रस्तुत करती है। इसका मुख्य कथानक बंगला के कृतिवासी रामायण से प्रेरित एवं गृहीत है। 'शक्ति पूजा' में 'शक्ति संधान' की रचनात्मक व्याख्या है और इसका मूलसूत्र जाम्बवान के परामर्श में है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल कहते हैं कि 'रचना प्रक्रिया' एवं 'भाव बोध' के स्तर पर यह कविता लोकमंगल की साधना की कृति है। कृतिवास कृत रामायण में आख्यान पौराणिकता से युक्त होकर अर्थ देती है, जबकि 'राम की शक्ति पूजा' में आख्यान भले ही पौराणिक है, आधुनिकता से युक्त हो कर भी युगपरिवेश एवं युगबोध के आलोक में अर्थ की कई भूमियों को स्पर्श करती हैं।

भक्ति के वृत्तांत (आख्यान) भले ही पौराणिक हैं, लेकिन इसे आत्म संघर्ष एवं युग चेतना से जोड़ते हुए निराला ने आत्म संघर्ष का मनोवैज्ञानिक धरातल पर बड़ा ही प्रभावशाली चित्र प्रस्तुत करने में समर्थ हो सके हैं।

निसंदेह 'राम भी शक्तिपूजा' एक प्राचीन पौराणिक आख्यानपरकृति है लेकिन यह अपने प्रतिकार्थ में नैतिक सिद्धि का काव्य है। इस कविता का रचनाकाल पराधीन भारत का वह गांधीवादी युग था जिसमें आतातायी अंग्रेजी शासन के विरुद्ध नैतिक शक्ति का संबल लेकर भारतीय जनता अहिंसात्मक संघर्ष कर रही थी तभी तो आत्मचेतस सूक्ष्म नैतिक शक्ति का अर्न्तनाद होता है –

'होगी जय, होगी जय
हे पुरुषोत्तम नवीन!'

उर्वशी (रामधारी सिंह 'दिनकर') : 'उर्वशी' 'दिनकर' द्वारा रचित काव्य नाटक है। 1961 ई. में प्रकाशित इस काव्य में दिनकर ने उर्वशी और पुरुरवा के प्राचीन आख्यान को नए अर्थ से जोड़ने का सार्थक प्रयास किया है। आख्यानपरक अन्य रचनाओं से भिन्न उर्वशी, इन अर्थों में विशिष्ट है कि यह राष्ट्रवाद की अधूनातन भावबोध से सम्पृक्त और वीर-रस प्रधान रचना बन पड़ी है।

'दिनकर' को इस कृति के लिए 1972 में ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ। 'उर्वशी' के आख्यान बहुत प्राचीन हैं। ऋग्वेद के 10वें मंडल के 95वें शूक्त में पुरुरवा-उर्वशी के वृत्तांत मिलते हैं। इस कृति में दोनों अलग तरह की प्यास लेकर आते हैं। पुरुरवा धरती पुत्र हैं और उर्वशी देवेलोक से उतरी हुई रमणीरूप नारी। पुरुरवा के भीतर देवत्व की तृष्णा और उर्वशी सहज विधिवत भाव से पृथ्वी का सुख भोग चाहती है। यह प्रेम और सौंदर्य का काव्य रूप जिसकी मूल धारा में जीवन की अनेक छोटी-छोटी धाराएँ मिल जाती हैं। इस आख्यान में 'दिनकर' ने प्रेम को मनोवैज्ञानिक धरातल पर पहचाना है।

उर्वशी की आख्यानपरकता के महत्व एवं वैशिष्ट्य पर मैं अलग से कुछ नहीं कहना

चाहता बल्कि स्वयं दिनकर के कथन ही पर्याप्त होंगे, जिसे भूमिका के रूप में उन्होंने लिखी है। पुरुरवा एवं उर्वशी के आख्यान को एक विशेष उद्देश्य से ग्रहण किया है। जिसका संकेत करते हुए उन्होंने अपने वक्तव्य में लिखा है- 'सृष्टि विकास की जिस प्रक्रिया के कर्तव्य पक्ष का प्रतीक मनु और इड़ा का आख्यान है, उसी प्रक्रिया का भावना-पक्ष पुरुरवा और उर्वशी की कथा में कहा गया है। .....मनु और इड़ा का आख्यान तर्क, मस्तिष्क, विज्ञान और जीवन की सोद्‌देश्य साधना का आख्यान है, वह पुरुषार्थ के अर्थ-पक्ष को महत्व देता है। किंतु, पुरुरवा उर्वशी का आख्यान भावना, कला और निररुद्देश्य आनंद की महिमा का आख्यान है, वह पुरुषार्थ के काम-पक्ष का महात्म्य बताता है।' इस उल्लेख से स्पष्ट है कि 'उर्वशी' के रचयिता के मन में इस आख्यान के पौराणिक इतिवृत्त के भावात्मक सौंदर्य के साथ-साथ उसके वैचारिक अर्थ के प्रति भी विशेष आकर्षण रहा है। कवि ने उर्वशी-पुरुरवा के माध्यम से जीवन के भाव-पक्ष, निरुद्‌देश्य आनंद एवं काम-पक्ष के महात्म्य को भी व्यंजित किया है।

प्रकार	प्रतिनिधि	विशेषताएं
1. स्वतंत्र या स्वच्छंद काम (प्रेम)	उर्वशी तथा उसकी सखियाँ (मुख्यत: रंभा)	(क) निरूद्देश्य (ख) विवाह की मर्यादा से मुक्त (ग) संतानोत्पत्ति की कामना से रहित (घ) शुद्ध वासना की प्रेरणा से प्रेरित (ड.) आनंद-केवल लक्ष्य
2. शुद्ध भावात्मक काम (प्रेम)	पुरुरवा	(क) उद्देश्य शारीरिक स्तर से ऊपर मन और आत्मा की तादात्म्यता (ख) स्थिर एवं स्थायी भावात्मक संबंध (ग) प्रेम योग द्वारा देवत्व एवं परमेश्वर की प्रति
3. दाम्पत्य जीवन का एकाकी रूप	औशीनरी	(क) पत्नी सतीत्व के आदर्श से प्रेरित (ख) पति (पुरूष) को अन्य से संबंध स्थापित करने में भी आजादी (ग) लक्ष्य संतानोत्पत्ति
4. दाम्पत्य जीवन का संतुलित या उभयपक्षी	च्यवन एवं उनकी पत्नी सुकन्या	(क) पति के लिए पत्नी ईश्वर द्वारा प्रदत उपहार तथा पत्नी के लिए पति वरदान (ख) कामवासना और भोग से ऊपर उठा हुआ शुद्ध एकोन्मुखी, आत्मिक एवं स्थायी प्रणय (ग) आत्म विकास एवं आदर्श समाज की स्थापना ही लक्ष्य

'उर्वशी' के विभिन्न पात्र काम या प्रेम-दर्शन के चार रूपों का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसे इस रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है-

उपर्युक्त सरणी से यह स्पष्ट हो जाता है कि दिनकर ने इतिहास में प्राप्त चार प्रकार की प्रमुख व्यवस्था पद्धतियों के आधार पर पुरुष नारी के यौन संबंधों या काम व प्रणय के स्वरूपों का

निरूपण करते हुए काम दर्शन की तुलनात्मक व्याख्या प्रस्तुत की है यही इस प्राचीन आख्यान के आधुनिकता बोध हैं।

'आत्मजयी' आत्मजयी कुँवर नारायण लिखित खड़ी बोली की आख्यानमूलक उत्कृष्ट प्रबंध-काव्य है। इस आख्यानमूलक रचना में मृत्यु संबंधी शाश्वत समस्या को, कठोपनिषद् को माध्यम बनाकर, हमारे सामने शाश्वत एवं समकालीनता में प्रस्तुत की गई है।

आख्यान इस प्रकार है - नचिकेता अपने पिता की आज्ञा, 'मृत्यु वे त्वा ददामिम' अर्थात 'मैंने तुम्हें मृत्यु को दिया / देता हूँ' जैसे वचन को शिरोधार्य करके यम के द्वार पर चला जाता है, जहाँ वह तीन दिन तक भूखा-प्यासा रहकर यमराज के घर लौटने की प्रतीक्षा करता है। उसकी साधना से यमराज प्रसन्न होते हैं और उसे तीन वरदान माँगने की अनुमति देते हैं। नचिकेता पहला वरदान यह माँगता है कि उसके पिता वाजश्रवा का क्रोध समाप्त हो जाए। इस प्रकार दो वरदान वह और माँगता है।

कुँवर नारायण की कृति 'आत्मजयी' ने हिन्दी साहित्य के मानक प्रबंध काव्य के रूप में अपनी एक खास जगह बनायी है। आत्मजयी के आख्यान का आधार कठोपनिषद् पर आधारित है जिसमें कवि ने आख्यान के पुराकथात्मक पक्ष को आज के मनुष्य की जटिल मन:स्थिति को एक बेहतर अभिव्यक्ति देने का एक साधन बनाया है। जीवन के पूर्वानुभव के लिए किसी ऐसे मूल्य के लिए जीना आवश्यक है जो मनुष्य जीवन की अनवरता का बोध कराये। वह सत्य कोई ऐसा जीवन-सत्य हो सकता है जो मरणधर्मा व्यक्तिगत जीवन से बड़ा, अधिक स्थायी या चिरस्थायी हो। यही मनुष्य को सांत्वना दे सकता है कि मर्त्य होते हुए भी वह किसी अमर अर्थ में जी सकता है। जब वह जीवन से केवल कुछ पाने की ही आशा पर चलने वाला असहाय प्राणी नहीं, जीवन को कुछ दे सकने वाला समर्थ मनुष्य होगा तब उसके लिए यह सहसा व्यर्थ हो जाएगी कि जीवन कितना असार है- उसकी मुख्य चिंता यह होगी कि वह जीवन को कितना सम्पूर्ण बना सकता है।

निसंदेह 'आत्मजयी' मनुष्य की रचनात्मक सामर्थ्य में आस्था की पुनर्प्रतिष्ठा की कहानी है, जिसमें आधुनिक मनुष्य की जटिल नियति से एक-एक गहरा काव्यात्मक साक्षात्कार है।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है खड़ी बोली हिन्दी काव्य में विन्यस्त आख्यान प्राचीन होते हुए भी अर्वाचीन हैं क्योंकि उनमें अतीत के साथ-साथ वर्तमान एवं भविष्य की सम्पूर्ण संभावनाओं की तलाश की जा सकती है।

'वृत्तांत भले ही प्राचीन है लेकिन इन वृत्तांतों (आख्यानों) के भाव शाश्वत हैं तथा आधुनिकता बोध को यथार्थ रूप में प्रकट करने वाले प्रमाणित होते हैं।'

संदर्भ -

1. प्रियप्रवास - अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', 2. साकेत - मैथिलीशरण गुप्त, 3. कामायनी - जयशंकर प्रसाद, 4. राग-विराग - निराला, 5. उर्वशी - रामधारी सिंह 'दिनकर', 6. आत्मजयी - कुँवर नारायण, 7. हिंदी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल, 8. कविता के नए प्रतिमान - डॉ॰ नामवर सिंह

डॉ. दिलीप राम, एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
पटना विश्वविद्यालय, पटना

✧ ✧ ✧

सारस्वत व्यक्तित्व के धनी डॉ. बेचन

कुमार कृष्णन

बहुआयामी सारस्वत व्यक्तित्व के धनी थे डॉ. विष्णु किशोर झा 'बेचन'। बिहार के साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक जीवन के सशक्त हस्ताक्षर थे। ज्ञान-प्रभा से दीप्त उनका मुख-मण्डल सदैव स्निग्ध मुस्कान से खिला रहता था, जो सहज ही सबको आकर्षित कर लेता था। एक महान शिक्षाविद, समर्थ साहित्यकार, समालोचक, प्रखर चिंतक, कला-संस्कृति के महान पोषक एवं अनेक मानवीय गुणों से युक्त साधु-पुरुष थे, जिन्होंने चार दशक तक साहित्यिक जीवन को गति दी। अपनी कीर्तियों से माँ भारती के मंदिर को सजाया और साहित्य की विभिन्न विधाओं पर कलम चलायी। उन्होंने न केवल पुस्तकों का प्रणयन किया, वरन पुस्तकालय आंदोलन को भी नया आयाम दिया। वे अपने जमाने सम्मेलनों के अनोखे ठाठ थे। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य के मौलिक समालोचक के रूप में पूरे बिहार को गौरवान्वित किया। साहित्य की पुरातन मान्यताओं की अपेक्षा आधुनिक मूल्यों के प्रति समर्पित रहे उनकी तीक्ष्ण तत्वात्वेशिणी दृष्टि से सृजन और मूल्यन के नए-नए पथ उद्घाटित हुए हैं। मार्क्सवादी विचारधारा से निर्मित प्रतिमानों पर आग्रह रखते हुए भी कलात्मक एवं शाश्वत मानवीय मूल्यों से बननेवाली कसौटियों का सम्मान किया। वे मूलतः समीक्षक थे। राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित होनेवाली आलोचना जैसे त्रैमासिक पत्रिका में इनके लेख लगातार आते रहे उन दिनों इस पत्रिका के संपादक ख्यातिप्राप्त प्रगतिशील आलोचक शिवदान सिंह चौहान थे। इस पत्रिका में नागार्जुन पर उनका स्वतंत्र प्रबंध प्रकाशित किया गया ,जो उस दौर में शायद हिन्दी में नागार्जुन पर इतने व्यापक रूप से लिखा गया पहला आलेख था। 1971 में आगरा

से प्रकाशित समीक्षालोक 'के पंत विशेषांक में सुमित्रानंदन पंत पर समीक्षा प्रकाशित हुई पंत पर लिखा गया डॉ. बेचन का यह निबंध पंत साहित्य को समझने में एक महत्वपूर्ण सोपान है। उन्होंने जब भी समालोचना लिखी साहित्य के रस में डूबकर लिखी। यही कारण है कि पंत विषयक समीक्षा में नवीन आलोचना के प्रतिमान उपस्थित होते हैं। इनके आलोचनात्मक निबंधों का संग्रह 'अध्ययन के विचार' ने आलोचक के रूप में काफी प्रतिष्ठा दी। उन्होंने कई पुस्तकें लिखी। इनमें अध्ययन के विचार, आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और चरित्र विकास', कवि श्यामसुंदर : जीवन और कृर्तियाँ, समकालीन साहित्य और समीक्षा, बिहार का साहित्य और साहित्यिक मानमूल्यों की प्रेरणा, प्रेमचंद (आलोचना) इंसान की लाश, मेरी प्रिय कहानियाँ (कहानी संग्रह) चीन के मोर्चे पर, दो लघु उपन्यास, जेल के अंतराल से (उपन्यास) और डॉ. बेचन की कविताएँ प्रमुख हैं। इसके अलावा कई पुस्तकों का संपादन किया इनमें नई प्रतिभा, भगवान पुस्तकालय रजत जयंती स्मारिका, फिर शोला, आग और बंदूकें, जय बंगला, चयन संचयन, शताब्दी संवाद, आधुनिक मैथिली साहित्य, आधुनिक मैथिली गद्य, स्वातंत्रयोत्तर मैथिली निबंध, नाटक और रंगमंच कवि श्यामसुंदर ग्रंथावली हिन्दी संचय, अनाम की डायरी, पात्र शिकायत करते हैं, इंटरमीडिएट हिन्दी, हिन्दी राष्ट्रभाषा संग्रह, हिन्दी शिक्षण एवं व्याख्यान, कथा- कहानी, चित्रकाव्यम प्रमुख है। डॉ. बेचन साहित्य की सभी विद्याओं में ऑल राउंडर थे। बावजूद इसके आलोचनात्मक लेखन में जहाँ रत रहे, वहीं जीवन के अंतिम क्षण तक सृजनात्मक लेखन से मोह नहीं छूटा। डॉ. बेचन के मामले में यह मिसफिट है कि असफल कवि आलोचक बन जाता है। हालांकि साहित्य में डॉ. बेचन का प्रवेश कविता से हुआ। इनकी कविताएं स्वातंत्रयोत्तर काव्य सृजन का अप्रतिम दृष्टांत उपस्थित कराती है। वे एक प्रगतिशील जनवादी कथाकार ये उनकी कहानियों में युग की अनुभूति तथा प्रेरणा है। इतिवृतात्मकता के जंजाल से मुक्त साफ-सुथरी स्पष्ट जीवंत संघर्ष और मुक्त कल्पनाओं का सहारा नहीं लिया। उन्होंने सामाजिक और आर्थिक विषमताओं से ग्रस्त जीवन स्त्रोतों को पहचाना। उनकी कहानियां विषमताओं से दूर परिणामों का उद्बोध कराती है और पाठकों के समक्ष प्रथम चुनौती बनकर आती है। यह चुनौती उन साहित्यकारों के लिए भी है, जो जीवन के यथार्थ तरंग स्त्रोत की उपेक्षा कर इधर-उधर भटकते फिरते है। वे कहानी की मौलिक शैली के धनी रहे। यह बात दीगर है कि बराबर कहानियाँ नहीं लिखते रहे पर जो कुछ भी उन्होंने लिखा उनमें उनकी मौलिकता झांकती है। उनकी ऐसी ही मौलिक शैली में प्रकाशित कहानीनुमा चर्चित रिर्पोताज 'भागलपुर भागता हुआ शहर' का प्रकाशन अमृत राय ने मार्च 1971 में किया इस रचना ने एकमत से यह मानने को मजबूर किया कि डॉ. बेचन ने हिन्दी कहानी को नई शैली दी। इनकी बहुचर्चित कहान 'भात' 1957 में प्रख्यात पत्रिका 'कहानी' में प्रकाशित हुई। हिन्दी की पांक्तेय कहानियों में इसकी चर्चा होती है। यह रचना अपनी मौलिकता, करूणा और सहजता के कारण काफी चर्चित हुई। कहानी के संपादक सितम्बर 1957 के संपादकीय में लिखा-निम्न वर्ग के मैथिल समाज की यह दर्दनाक कहानी मर्म छुए बिना न रहेगी। राष्ट्रपिता बापू के जन्म शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में प्रकाशित कविता 'संग्रह-शहादत की शाम' काफी चर्चित हुई। उन्होंने 1966 में 'बसेरा' नाटक लिखा, जिसका प्रसारण रेडियो से बार-बार हुआ विषय और संवाद संचयन की दृष्टि से हिन्दी के श्रेष्ठ नाटकों में इसका महत्व सुरक्षित है यह इतना लोकप्रिय हुआ कि 1966 से 1969 तक इसका प्रसारण श्रोताओं की मांग पर होता रहा। बिहार का सहरसा के लगमा गाँव इनकी पैतृक भूमि है। भागलपुर के भगवान पुस्तकालय में इनका जन्म 1933 में हुआ। पिता पं. उग्र नारायण झा हिन्दी और संस्कृत के उद्भट विद्वान थे। ज्योतिषाचार्य के रूप में उनकी ख्याति दूर-दूर तक थी। उनके शिशुकाल में बुरे ग्रह की आशंका के फलस्वरूप उनकी माता ने भागलपुर के गोलाघाट निवासी स्व. मधुसूदन दास के परिवार को बेच दिया और फिर उनकी माता ने खरीद लिया। इस कारण बेचन कहे जाने लगे और नाम के आगे उपनाम 'बेचन' जोड़ा। अपने स्वध्याय, अध्यव्यवसाय और कारियत्री प्रतिभा के बल पर उन्होंने विद्वान पिता का विद्वान पुत्र

की उक्ति को चरितार्थ किया। 1955 में हिन्दी से एमए करने के बाद 1963में 'डॉक्टर ऑफ फिलोसोपी' की उपाधि प्राप्त कर भागलपुर विश्वविद्यालय का प्रथम डॉक्टर होने का गौरव हासिल किया। अपने कैरियर का आरंभ भगवान पुस्तकालय के पुस्तकाध्यक्ष के रूप में किया। 1956 से 1960 तक सुलतानगंज के मुरारका कॉलेज में प्राध्यापक रहे। 1960 से 1978 तक भागलपुर के मारवाड़ी कॉलेज में व्याख्याता रहे। इसी महाविद्यालय में 1978 से 1980 तक रीडर और 1981 से 1987 तक प्रोफेसर सह हिन्दी विभाग के अध्यक्ष और प्रधानाचार्य रहे। साहित्यिक कद की ऊँचाई और शोहरत के कारण भागलपुर विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति पद को सुशोभित किया। साहित्य के क्षेत्र में बहुमूल्य योगदान के लिए वर्ष 1996 में बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष चुने गए और 2000 तक इस पद पर रहे।

भागलपुर के भगवान पुस्तकालय को उन्होंने ऊँचाई प्रदान की। उनके संयुक्त सचिव के कार्यकाल से ही यह पुस्तकालय राष्ट्रीय नेताओं से लेकर हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठ साहित्कार पुस्तकालय परिदर्शन को आते रहे। तात्कालीन रेल मंत्री जगजीवन राम, तात्कालीन राज्यपाल डॉ. जाकिर हुसैन, तात्कालीन मुख्यमंत्री पं. विनोदानंद झा, हजारी प्रसाद द्विवेदी, नागार्जुन, डॉ. नामवर सिंह, शिवपूजन सहाय, हंस कुमार तिवारी, पं. रामेश्वर झा द्विजेन्द्र, गोपाल सिंह नेपाली, रामधारी सिंह दिनकर, विष्णु प्रभाकर, वलायचांद मुखोपाध्याय वनफूल, डॉ. रामदयाल पांडेय, तारकेश्वर प्रसाद, हरिकुंज, पं. अवधभूषण मिश्र, श्यामसुंदर घोष, सविन शॉ पुष्प, डॉ. खगेन्द्र बकुर, आचार्य कपिल, लक्ष्मीकांत मित्र आदि प्रमुख हैं। अपने आकर्षक व्यक्तित्व के कारण हर किसी को प्रभावित करते। जिनके भी संपर्क में आए उनका असीम प्यार मिला। डॉ. बेचन के कारण 1950 से 1990 तक भगवान पुस्तकालय साहित्यिक गतिविधियों का केन्द्र रहा। समीक्षा के माध्यम से नई प्रतिभा को तरासने का काम करते रहे उनकी संगठन क्षमता अद्‌भूत थी। तभी तो वे जब तक जीवित रहे, वे संस्थाएं जीवंत रही। डॉ. बेचन पुस्तकालय आंदोलन से भी जुड़े थे। अनुज शास्त्री, डॉ. रामशोभित सिंह, रंग शाही के साथ मिलकर बिहार राज्य पुस्तकालय संघ का गठन किया। वे 1980 से लेकर मृत्युपर्यन्त अध्यक्ष रहे। उन्होंने अपनी पैतृक संपत्ति स्व. कुंजीलाल पं. उग्रनारायण योगमाया स्मारक पुस्तकालय को दान में दी। 30 अगस्त 2004 को वे इस दुनिया से रुखसत हो गए। वे साहित्य के एक ऐसे वेत्ता थे, जिनके पास जीवन के अनुभवों का सत्व था।

चित्रशाला की बैठक की पूरानी तस्वीर, एल से आर - डॉ. विष्णु किशोर झा बेचन, हरि कुंज (मेरा पिता), दिनकर और बंगला के साहित्यकार बनफूल।

कुमार कृष्णन, स्वतंत्र पत्रकार, दस भूजी स्थान रोड, मोगल बाजार, मुंगेर–811201
मो. : 9304706646

✧ ✧ ✧

बिहार में लघुकथा आंदोलन के जनक डॉ. सतीश राज पुष्करणा

डॉ. ध्रुव कुमार

वैसे उन्होंने सोलह सौ से अधिक लघुकथाएं लिखीं। लघुकथा लेखन से अन्य साहित्यकारों को जोड़ने के लिए, विशेषकर युवा पीढ़ी को लघुकथा के प्रति जागरूक करने के लिए उन्होंने सन 1988 में कृष्णानंद कृष्ण, नरेंद्र प्रसाद नवीन, डॉ. मिथिलेश कुमारी मिश्र और निशांतर के साथ मिलकर अखिल भारतीय प्रगतिशील लघुकथा मंच की स्थापना की और प्रति वर्ष लघुकथा सम्मेलन आयोजित करने लगे, जहाँ देशभर के लघुकथाकार इकट्ठा होते और लघुकथा की प्रगति के लिए विमर्श करते।

''सतीश राज पुष्करणा'' यानी ''लघुकथा'' और ''लघुकथा'' यानी ''सतीश राज पुष्करणा''। पिछले 45 वर्षों में दोनों एक-दूसरे के पर्याय बन गये।

सन 1972-73 के आस-पास की बात होगी जब मैंने उन्हें पहली बार देखा था। वे मेरे घर से दो मकान बाद बच्चों का एक स्कूल खोलने की तैयारी कर रहे थे। लंबा कद, आत्मविश्वास से भरा मुखमंडल, खनकती - रौबदार आवाज। वे अपने कुछ सहयोगियों के साथ, जिनमें दो-तीन महिलाएँ थी, मोहल्ले में घर-घर घूम कर अपने स्कूल में बच्चों के नामांकन का अभियान चला रहे थे। वे मेरे घर भी आएं और मेरी दादी जी से अपने पोते-पोतियों को अपने स्कूल में दाखिले कराने का अनुरोध किया। दादी जी ने बाबूजी से सलाह मशविरा के बाद मेरा नामांकन पुष्करणा सर के स्कूल में करवा दिया। ''विवेकानंद बाल बालिका विद्यालय'' में 2 साल पढ़ने के दौरान मैंने पुष्करणा सर के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं बाल सुलभ जिज्ञासाओं और किशोरवय मनोभावों के साथ उनके व्यक्तित्व को बहुत कुछ पढ़ा और समझने की कोशिश की। नवाचार और रचनात्मकता उनके व्यक्तित्व का एक अहम हिस्सा था। थोड़े जिद्दी और अपने धुन में मगन, लगातार और कठिन परिश्रम। वे अक्सर कहा करते थे- ''व्यक्ति अगर कुछ ठान लें, तो कुछ भी असंभव नहीं।

यह उन्होंने अपने जीवन में कई बार करके दिखाया।

शुरुआती दिनों में वे लघुकथा से अधिक कविता, गजल, कहानी, हाइकु, ताका आदि लिखा करते थे। यह बात उन दिनों की है जब वे अपने स्कूल को टिकिया टोली में संचालित कर रहे थे, उसी गली में मैथिली और हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकार प्रो. हरिमोहन झा भी रहते थे। उन्होंने एक बार पुष्करणा जी से पूछा? तुम क्या हो? पुष्करणा जी किंकर्तव्यविमूढ़! कहा- आपका आशय नहीं समझा! हरिमोहन झा जी ने कहा भाई, तुम क्या हो? आलोचक हो, कवि हो, कहानीकार हो, लघुकथाकार हो? उनकी बात का पुष्करणा जी जब कोई स्पष्ट उत्तर न दे सके, तब हरिमोहन झा जी ने कहा-कोई एक विधा चुनकर उसी में समर्पण भाव से कार्य करो, तभी तुम्हारी साहित्य-सेवा का कोई अर्थ है अन्यथा जहाँ इतने लोग कागज काला कर रहे हैं, तुम भी करते रहो। उनका सुझाव था कि तुम जो यह छोटी-छोटी कथाएँ लिखते हो, उसी में अपनी राह बनाओ। आपातकाल का दौर शुरू हो चुका था। तत्कालीन राजनैतिक उथल-पुथल और बदलाव को केंद्र में रखकर उन्होंने लघुकथाएँ लिखनी शुरू की और धीरे-धीरे उनकी वे लघुकथा के होकर ही रह गए। वे न सिर्फ लघुकथाएँ लिखने लगे, बल्कि लघुकथानगर में रहने भी लगे। उन्होंने अपने घर का नाम ही लघुकथानगर रख लिया। लोगों ने ही नहीं, पोस्टमैन ने भी आपत्ति की, उनके खिलाफ मोहल्ले का नाम बदलने की शिकायत दर्ज हुई, जाँच के लिए दो पदाधिकारी आएं, लेकिन लघुकथाकार सतीश राज पुष्करणा जी के अकाट्य तर्कों से संतुष्ट होकर वापस लौट गए। लघुकथा को स्थापित करने की दिशा में यह उनकी पहली महत्वपूर्ण जीत थी। फिर उन्होंने पीछे मुड़कर नहीं देखा।

वैसे उन्होंने सोलह सौ से अधिक लघुकथाएँ लिखीं। लघुकथा लेखन से अन्य साहित्यकारों को जोड़ने के लिए, विशेषकर युवा पीढ़ी को लघुकथा के प्रति जागरूक करने के लिए उन्होंने सन 1988 में कृष्णानंद कृष्ण, नरेंद्र प्रसाद नवीन, डॉ. मिथिलेश कुमारी मिश्र और निशांतर के साथ मिलकर अखिल भारतीय प्रगतिशील लघुकथा मंच की स्थापना की और प्रति वर्ष लघुकथा सम्मेलन आयोजित करने लगे, जहाँ देशभर के लघुकथाकार इकट्ठा होते और लघुकथा की प्रगति के लिए विमर्श करते। उन्हीं दिनों विद्यालय संचालन के साथ-साथ उन्होंने पुस्तक प्रकाशन के कार्य को अंजाम देने के लिये ''बिहार सेवक प्रेस'' की स्थापना की। अब तक 29 लघुकथा सम्मेलन का आयोजन पटना के अतिरिक्त फतुहा, बरेली और हिसार में भी उन्हीं की अगुआई में सफलता पूर्वक संपन्न हुए। उन्होंने 45-46 वर्षों में लगभग 1650 लघुकथाएँ लिखी, उनकी अनेक लघुकथाएँ उनके एकल संग्रहों 'वर्तमान के झरोखे में', 'प्रसंगवश', बिहार सरकार द्वारा पुरस्कृत, 'बदलती हवा के साथ', 'उजाले की ओर', 'जहर के खिलाफ' और 'आग की नदी' में संगृहीत हैं। उनकी लघुकथाओं के स्तर का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि सन् 1973 ई. से वर्तमान तक की कोई भी ऐसी उल्लेखनीय पत्रिका एवं सम्पादित संकलन नही हैं जिसमें उनकी लघुकथाओं का प्रकाशन न हुआ हो। उन्होनें लगभग डेढ़ दर्जन लघुकथा-संकलनों का सफल संपादन भी किया और कुल मिलाकर 90 से अधिक पुस्तकें लिखीं। उनकी लघुकथाओं को मुख्यत: तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है, पहला- सामाजिकोत्थान के उद्देश्य से लिखी

हुई लघुकथाएँ, दूसरा-मानवोत्थान के उद्देश्य से लिखी हुई लघुकथाएँ और तीसरा - अन्यान्य विषयों पर आधारित लघुकथाएँ। उनकी अधिकांश लघुकथाएँ या तो एक बेहतर समाज का चित्रण करती हुई प्रतीत होती हैं या उनकी लघुकथाओं में मानवोत्थान का उद्देश्य छिपा हुआ दिखाई देता है। आज के भौतिक समाज में जहाँ संवेदनाएँ दम तोड़ती दिखाई देती हैं वहीं कुछ ऐसे भी लोग है जो मनोवैज्ञानिक तरीके से ही अथवा अन्य किसी भी तरीके से, दूसरे को कुछ सोचने को विवश कर देते हैं। यह बात अलग है कि किसी एक व्यक्ति के कुछ करने से समाज में बदलाव नहीं आ सकता, परन्तु यह भी उतना ही सच है कि किसी-न-किसी को तो पहल करनी ही होगी। पुष्करणा जी की लघुकथाओं को पढ़कर उनके संवेदनशील होने का भी प्रमाण मिलता है तथा साथ ही यह भी कि उन्होंने इन लघुकथाओं के माध्यम से समाज को बुराइयों से निजात पाने के लिए काफी हद तक समाधान देने का भी सद्प्रयास किया है। वे अक्सर कहा करते थे कि मनुष्य एक

भारतीय समाज की परम्पराओं में पारिवारिक मर्यादाओं का पालन होता है जो प्रायः सभी घरों में देखा जा सकता है और इन्हीं मर्यादाओं का पालन करने में व्यक्ति अपने को कई बार विवश पाता है। ''अपनी-अपनी विवशता'' लघुकथा में भारतीय पारिवारिक मर्यादाओं में बंधे हुए पति-पत्नी की विवशता को बहुत ही करीने से उकेरा गया है। इसका शीर्षक सहज है, जो इस कथानक के अनुसार एकदम सटीक है। इस लघुकथा के लिए कृष्णानंद कृष्ण लिखते हैं- 'अपनी-अपनी विवशता में बड़ी सफलतापूर्वक मध्यकालीन भारतीय समाज के भीतर चलती-बढ़ती परंपरा और आदमी के भीतर बैठा सामाजिक डर, जिसके दबाव में झूठी मर्यादा में अपनी इच्छाओं का खून कर देता है, की अभिव्यक्ति की गई है।' लघुकथा में शीर्षक का क्या महत्त्व है, यह इस लघुकथा से जाना जा सकता है कि किस प्रकार एक शीर्षक लघुकथा को श्रेष्ठता के शीर्ष तक पहुँचाने की शक्ति प्रदान करता है।

सामाजिक प्राणी है। एक अकेला आदमी अपने लिए कुछ भी नहीं कर पाता है, सो हर पल, हर कार्य के लिए या हर स्थिति में उसको किसी-न-किसी व्यक्ति या संस्था की परोक्ष या अपरोक्ष रूप से सहायता लेनी ही पड़ती है। अगर एक समाज को देखा जाए तो इसमें रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति, संस्था, कार्यालय, अस्पताल इत्यादि सभी समाज का ही हिस्सा होते हैं। समाज में रहते हुए हमें न मात्र अपने निजी स्वार्थ के लिए बल्कि पूरे समाज के हित का विचार करना चाहिए, तभी हम एक बेहतर समाज बना सकते हैं और बेहतर समाज ही एक बेहतर राष्ट्र का निर्माण कर सकता है। इस लिहाज से उनकी लघुकथा 'सहानुभूति', 'जमीन से जुड़कर', 'खुदगर्ज', 'उच्छलन', 'रंग जम गया', 'बदबू', 'श्रद्धांजलि', 'अन्तश्चेतना', 'उपहार', 'परिभाषा', 'अपनी-अपनी विवशता', 'कुमुदिनी का फूल', 'नई पीढ़ी' ,' दीया और तूफान उत्कृष्ट हैं।

लघुकथा की भाषा-शैली में कहावत और मुहावरों का प्रयोग कब और कैसे करना है, यह पुष्करणा जी की लघुकथाओं से सीखा जा सकता है। उनके कथानुसार 'किसी भी लघुकथा में कहावत और मुहावरों का उपयोग उसका श्रृंगार होता है। भारत-भूमि अपने संस्कारों और परम्पराओं की वजह से विश्वभर में जानी-पहचानी जाती है और अपनी अमिट-छाप लोगों के हृदय पर छोड़ जाती है। अनेक परम्पराओं में एक गुरु-शिष्य परम्परा भी अतुल्य है जिसकी मिसाल विश्वभर में दी जाती है। गुरु: ब्रह्मा गुरू: विष्णु गुरु: देवो महेश्वर: की परम्परा को मानने वाली भारतभूमि की इसी परंपरा को दर्शाती पुष्करणा जी की लघुकथाएँ 'श्रद्धांजलि', 'अन्तश्चेतना' पढ़ने वालों के मन में संस्कार के भाव उत्पन्न करते हैं।

भारतीय समाज की परम्पराओं में पारिवारिक मर्यादाओं का पालन होता है जो प्राय: सभी घरों में देखा जा सकता है और इन्हीं मर्यादाओं का पालन करने में व्यक्ति अपने को कई बार विवश पाता है। ''अपनी-अपनी विवशता'' लघुकथा में भारतीय पारिवारिक मर्यादाओं में बंधे हुए

पति-पत्नी की विवशता को बहुत ही करीने से उकेरा गया है। इसका शीर्षक सहज है, जो इस कथानक के अनुसार एकदम सटीक है। इस लघुकथा के लिए कृष्णानंद कृष्ण लिखते हैं- 'अपनी-अपनी विवशता में बड़ी सफलतापूर्वक मध्यकालीन भारतीय समाज के भीतर चलती-बढ़ती परंपरा और आदमी के भीतर बैठा सामाजिक डर, जिसके दबाव में झूठी मर्यादा में अपनी इच्छाओं का खून कर देता है, की अभिव्यक्ति की गई है।' लघुकथा में शीर्षक का क्या महत्त्व है, यह इस लघुकथा से जाना जा सकता है कि किस प्रकार एक शीर्षक लघुकथा को श्रेष्ठता के शीर्ष तक पहुँचाने की शक्ति प्रदान करता है। लघुकथा में शीर्षक के महत्त्व को पुष्करणा जी भली-भाँति समझते थे और अपनी लघुकथाओं को प्राय: ऐसे शीर्षक देने में सिद्धस्थ थे, जो पाठकों तक संप्रेषित होने में सहायक सिद्ध होते हैं। उनकी अधिकांश लघुकथाओं का अंत सकारात्मकता लिए होता है परन्तु यह उनका लेखन- कौशल है जो नकारात्मक अंत के बावजूद उनकी इस लघुकथा में एक सकारात्मक सन्देश संप्रेषित होता दिखाई पड़ता है।

डॉ. पुष्करणा जी की प्राय: सभी लघुकथाएँ विषय-वस्तु एवं शिल्प की दृष्टि से पर्याप्त वैविध्य लिए हुए हैं। पड़ाव और पड़ताल के खण्ड 22 में प्रकाशित उनकी 66 लघुकथाओं में पुष्करणा जी ने मनोविज्ञान को अपने अन्य समकालीनों की अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व दिया है। इनकी लघुकथाओं को पढ़ते हुए यह लगता है उन्होंने इस विषय का पर्याप्त गहराई तक जाकर

अध्ययन किया है और अपने गहन अध्ययन की वजह से ही इन लघुकथाओं में यह विशेषता प्रत्यक्ष होती है और वह अपने समकालीनों में अपनी नितान्त भिन्न पहचान बनाते हैं। उनकी बहुत-सी लघुकथाएँ ऐसी हैं जिनमें मानवोत्थान का सन्देश संप्रेषित हो रहा है। मानवोत्थान के उद्देश्य से लिखी गयी उनकी लघुकथाओं में 'भावनाओं का यथार्थ', 'आग', 'भविष्य-निधि', 'जीवन-संघर्ष', 'दायित्वबोध', 'मृगतृष्णा', 'आत्मिक बंधन', 'पुरुष', 'दीप जल उठे', 'मन के साँप', 'बीती विभावरी', 'मन का अक्स', 'बोफोर्स काण्ड', 'निष्ठा', 'झूठा अहम्', 'वापसी', 'आकांशा', 'खून का असर', 'छल-छद्‌म', 'आतंक', 'दरिद्र', 'जमीन की शक्ति', 'भीतर की आग', 'स्वाभिमान', 'चूक', 'उधेड़बुन', 'नपुंसक', 'ऊँचाई', 'बेबसी', 'पुरस्कार', 'विश्वास', 'सबक', 'माँ', 'इक्कीसवीं सदी आदि महत्वपूर्ण हैं।

वे अपनी लघुकथाओं के लिए जिस गंभीरता से विषय का चयन करते हैं उतना ही सटीक शिल्प का भी चयन करते हैं और उसके प्रस्तुतीकरण में भी कहीं ढील नहीं छोड़ते। यही कारण है कि लघुकथा के प्रति उनका समर्पण अन्य रचनाकारों से कहीं अधिक ज्यादा प्रदर्शित होता है। उनकी 'दिखावा', 'हाथी के दाँत', 'बेबस विद्रोह','विवशता के बावजूद' 'रक्तबीज' 'इबादत', 'सही दिशा', 'बदलती हवा के साथ', 'सबक' 'आकाश छूते हौसले' 'महान् व्यक्ति', 'सिफारिश', 'फर्ज', 'स्वार्थी', 'दादागिरी के खिलाफ', 'बलि का बकरा', 'टेबल टॉक' 'परिस्थिति' इत्यादि लघुकथाएँ भी मुझे बेहद पसंद हैं।

लघुकथा पर केंद्रित कोई पत्रिका, पुस्तक या फिर कोई विशेषांक निकलता तो बड़े जोश और उल्लास के साथ वे अपने संपर्क के सभी लघुकथाकारों की इसकी सूचना देते और उन्हें अपनी लघुकथाएं संबंधित जगह प्रेषित करने को कहते। दो वर्ष पूर्व ''साहित्य यात्रा'' के लघुकथा विशेषांक के दौरान इसी उत्साह और उमंग के साथ उन्होंने देशभर के लघुकथाकारों और समीक्षकों को इसकी न सिर्फ सूचना दी बल्कि उनसे रचनाएँ और आलेख संग्रहित कर इसके संपादक कलानाथ मिश्र जी को उपलब्ध करवाया। खुद भी एक सुंदर सारगर्भित आलेख इस अंक के लिए विशेष तौर पर तैयार किया। वे कहते थे - ''लघुकथा की स्थापना और विस्तार के लिए यह सहयोग बेहद जरूरी कदम है।''

अब वे हम लोगों के बीच भले सशरीर मौजूद न हों, किंतु उनकी रचनाएँ, उनके विचार और लघुकथा के प्रति उनका समर्पण हम सबको हमेशा प्रेरित करता रहेगा।

लघुकथा के लिए पर्याय बन चुके परम श्रद्धेय डॉ. सतीश राज पुष्करणा जी को ''साहित्य यात्रा'' की संपादकीय टीम और पाठकों की ओर से शत-शत नमन !

डॉ. ध्रुव कुमार, लेखक–पत्रकार, व्योम, पी. डी. लेन, महेंद्रू, पटना–800006
मो. : 9304455515, ई–मेल : dhrub20@gmail.com

✧ ✧ ✧

किताब

सवाई सिंह शेखावत

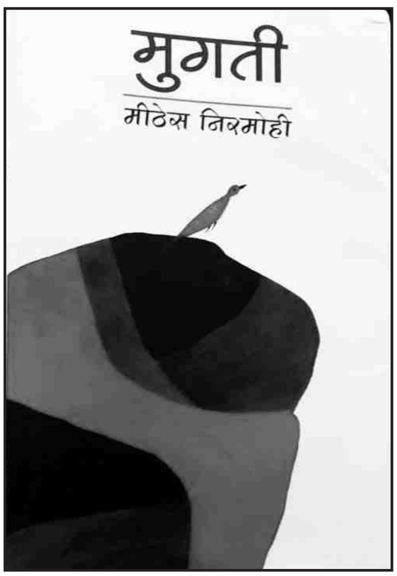

मुगती (राजस्थानी कविता संग्रह)
लेखक : मीठेश निर्मोही
प्रकाशक : मरुवाणी प्रकाशन, राजोला हाउस, उम्मेद चौक, जोधपुर (राजस्थान) - 342001
पृष्ठ - 136
मूल्य : रू. 300/-

हिंदी एवं राजस्थानी के वरिष्ठ कवि मीठेश निर्मोही का राजस्थानी में 'मुगती' शीर्षक से ताजा कविता संग्रह आया है। जैसी की मान्यता है मुक्ति से तात्पर्य वैराग्य लिया जाता है- अर्थात जीवन से संन्यास जैसा कुछ। वैसे संग्रह में 'मुगती-एक', 'मुगती-दो' शीर्षक से दो कविताएँ भी शामिल हैं जिनमें कवि का कहना है कि: 'भरमजाळ उलझयोड़ै धकस्तूरी मिरगलै री जात / मन रै कुळाचां भरियां ई /लग्गूलग बंब-बंब भंवतौ / फिरियौ हौ म्हैं /घर गिरस्ती रै चक्रव्यूह / जीवण-जगत रै पड़पंचां पड़ियौ.. '....फिर घर गिरस्त के गोरखधंधे से जुड़ा समूचा परिदृश्य! औलाद से जुड़े गिले-शिकवे और यह अरदास भी कि 'म्हैं व्हैणी चावूं मुगत आपौ आप सूंध .. काया सूं जीव री मुगती व्हैला के दुरगती धम्हनै कोनीं ठाह / कैध म्हैं कदैई / पतियारौ को करियौ नींधजीव री मुगती माथै...'

पर संग्रह की इस दूसरी कविता में जीवन जगत की सतरंगी रंगतों में जाते हुए कवि जीवन के निमित्त यह संकल्प भी दुहराता है कि- 'जे लड़णौ पड़ैला एक औरूं जुद्ध/ आं सूं अर आपौ आप सूं / तौ लडूंला म्हैं/ निसंक रैजौ थे।' बल्कि कहना चाहिए कि संग्रह में शामिल लगभग सभी कविताएँ जीवन से पलायन की नहीं बल्कि उस हेतु जूझने के संकल्प और जीवन के सजीवन स्रोतों से जुड़ने खरी सीख देने वाली कविताएँ हैं। ऐसे में सवाल उठना स्वाभाविक है कि फिर इन्हें मुक्ति की कविताएँ कैसे और क्यों माना जाए?

दरअसल मध्यकालीन मान्यताओं ने

इस देश में कई गलत रीत-परम्पराओं की शुरुआत की। मुक्ति बाबत मान्यता भी एक ऐसा ही उदाहरण है। मध्यकालीन संत भक्तों ने दुनिया को समझाया कि दुनियादारी के जंजाल से मुक्ति के लिए आवश्यक है कि हम हर तरह के कर्म से बचें। क्योंकि यह कर्म दोष ही वह गड़बड़ है जिसके चलते मनुष्य संसार फिर-फिर जन्म लेता है। इसलिए तन पर लँगोटी, रूखा-सूखा भोजन और हरि भजन इसी में मुक्ति है। इस दर्शन ने देश दुनिया को बहुत नुकसान पहुँचाया। इसी के चलते दुनिया में भारत की साख घटी और देश में गरीबी बढ़ी।

पर इस सदी के वैज्ञानिक विकास ने मुक्ति बाबत अवधारणाओं को बदला है। ठीक वैदिक मान्यताओं के अनुरूप आज यह माना जा रहा है कि जीवन से भागने की जरूरत नहीं है। सभी कुछ करते धरते भी मुक्ति संभव है। यहाँ तक कि नई वैज्ञानिक शोधों से यह भी पुष्ट हुआ है कि ब्रह्माण्ड में जीवन क्रियाएँ सतत चलती रहती हैं। पुराने ग्रह-नक्षत्र नष्ट होते रहते हैं और नए आकार लेते रहते हैं। जैसा कि कभी स्टीफन हॉकिंग का मानना था कि 'खगोलीय परिवर्तन पुराने ग्रहों को पता नहीं किन आकाशीय खंदकों में फेंक देते हैं?' लेकिन पिछले बीस-पच्चीस वर्षों में इस दिशा में खगोल-शास्त्रियों ने इस तथ्य को झुठलाया है कि ऐसा कुछ नहीं होता। इसके विपरीत निहारिकायें उल्का पिंडों को अपनी गोद में समेटती रहती हैं। स्वयं सूर्य भी एक उल्का-पिंड है जो एक बार फिर से शक्ति संचय कर जीवन को बचाता है। वेद के ऋषि ने उसे सविता देव कहा है।

मीठेश जी के मरुधर मुल्क की बात करें तो भूगोल वेत्ताओं का मानना है कि कभी यह प्रदेश पृथ्वी के सर्वाधिक विकसित क्षेत्रों में रहा। वेद उपनिषद यहीं रचे गये। पर खगोलीय परिवर्तनों के चलते यहाँ एक बार हजार सालों का अकाल पड़ा। एक बून्द तक नहीं बरसी। जिसके चलते यहाँ मौजूद स्टेथिस महासागर पूरी तरह सूख गया। इसके चलते लोगों को यहाँ से पलायन करना पड़ा। आज जोधपुर से पाली-सिरोही और अजमेर-ब्यावर मार्ग पर जो कटावदार पहाड़ों की विशिष्ट श्रृंखला और पहाड़ों के बीच काली रेख सी दिखाई देती है वह इसी बात का प्रमाण है। लेकिन पिछले वर्षों से मंजर बदला है। एक बार फिर यहाँ कुदरत मेहरबान होती नजर आती है। गत वर्षों में यहाँ वर्षा का अनुपात बढ़ा है। भूगर्भीय जल भी ऊपर आया है। जिससे यहाँ कई इलाकों में दोनों फसलें संभव हुई हैं।

मीठेश जी के संग्रह की खूबियों को समझने और उनके 'मुगती' में अंतर्निहित 'सृष्टि-राग' को समझने के लिए यह तजकिरा जरूरी था। मीठेश जी संग्रह की शुरुआत ही 'प्रीत' जैसे सृष्टि के सनातन भाव से करते हैं। जो उनके आत्म उजास का प्रसार है : 'प्रीत सूं पैली/म्हैं थनै पोथी ज्यूं बांची ही/परभाती सूं गोधूळी तांई /धारणी रै फूटरापै नै / ज्यूं बांचौ है धारणी धर।'

...फिर आत्म के उजास की वेला में गायों का रंभाना, पक्षियों का पेड़ों पर स्थित अपने घोंसलों में लौटना, धूप और ध्यान के साथ ही मंदिर-मंदिर शंख-झालरों के नाद रचते आरती के स्वर, घी-गुड़ की मिठास पगी ब्यालू, खड़ताल मंजीरों पर बजते भजन और हुंकारों से आगे बढ़ते किस्से कहानियों का समूचा आत्मीय संसार-कवि एक ही कविता में रच देने की सामर्थ्य रखता है।

यही वे कविता को सम्बोधित अपनी कविता में भी करते नजर आते हैं। यहाँ हरियल खेत हैं, पकी हुई फसलें हैं, वृक्षों पर मुलकते और झूला झूलते परिंदे हैं, बड़े सवेरे भोर में चक्की पीसती

और हरजस गाती माँ है, घर-गुवाड़ी और आँगन की उदासियों को दूर करते बच्चों के हँसी ठठ्ठे के साथ पीढ़ियों के संवाद हैं। गैर नाचते पुरुष हैं। जीवन के तमाम छल-छंदों के बीच मीठेश जी का कवि जिस तरह जीने का सरंजाम जुटाता है वह देखते ही बनता है। जीसा को लेकर उनकी अथक जिजीविषा, उनके जीवन संघर्ष और आत्मीयता के साथ ही कवि उनकी अनूठी मुक्ति के साथ उन सपनों की भी बात करता है जिनमें वे अपने पोते से आज भी बंतळ करने चले आते हैं। जीसा को लेकर जिस संवेदना को कवि ने रचा है वह हमें भिगो देती है।

कहा जा सकता है कि मीठेश जी जीवन-राग के कवि हैं। वह जीवन राग जो थार के कण-कण में उमग रहा है। यहाँ मनुष्य की अजनबी गंधा पर भौंकते श्वान हैं तो तीखे शीत की रात्रि में हुंआते सियार भी। वे राजनेताओं के चतुर प्रस्तावों और मोहक नारों की असलियत खोलते हैं और उन्हें चुनौती भी देते हैं कि 'अबकै आवाजै देखांणी/म्हारी ढांणी/रेवांण रै टांणै/गीत गवावण आजादी रौ। 'बजार' कविता में भूमंडलीकरण के बाद उभरी तमाम शक्तियों और उनसे उपजी विसंगतियों पर कवि तीखे प्रहार करते हुए मनुष्य और उसकी सामर्थ्य पर भरोसा प्रकट करता है- मीठेश जी के कवि की यही असल शक्ति है।

संस्कृत में कहा गया है कि कवि अपने रचना-संसार का ब्रह्मा है। वह अभिप्रेरण की सामर्थ्य के चलते नई-नई कल्पनाएँ करता और अभिनव-सा रचता रहता है। मरुधारा की मीठी अनुभूति से जुड़ी सम सीरीज की 'लो, सूंपूं हूँ थांनै 'कविता में कवि मीठेश अपनी अंतश्चेतना के तीन स्तरों से गुजरते हैं। पहला स्तर अहसास या अनुभूति का है-जो कवि ने 'सम' स्थित विश्व-ख्यात धोरों के शिखर पर ठंडी मुलायम बालू रेत में धँसे नंगे पाँवों के अछूते अहसास से हासिल किया है। दूसरे स्तर पर वही विरल अनुभूति अपने सतरंगे वितान में सेवण घास के बीच फुनगी से चटक कर सप्तरंगी फूल बन जाती है। यह निराकार से साकार में ढलने की अगली प्रक्रिया है। अंतिम और तीसरे चरण में वह हिरणी-सी कुलाँचे भरती मरुगंधा में जारी अनहदनाद में शामिल हो जाती है। यह जीवन की गतिमयता है- 'लो, सूंपूं हूं थांनै' (लो, सौंपता हूँ तुम्हें') के आत्मीय आह्वान के साथ कवि जैसे उसे जीवन की सकर्मकता से जोड़ देता है। 'सम' सीरीज की अन्य कविताओं में भी कवि मरुप्रदेश के सांस्कृतिक वैभव के साथ ही बाजारू शक्तियों के प्रतिरोध का जिक्र करते हुए जिस तरह 'उछाळै री पीड़' कविता में सामंत सालम सिंह के जालिमपने का स्मरण करते हुए पालीवाल परिवारों के साथ हुए जोर-जुल्म को याद दिलाता है वह कवि की मानवीयता की थाह का पता देती है।

मीठेश जी की एक सरल सीधी कविता- 'यूं ईज मुळकजै' की सबसे बड़ी खूबी इसका स्थानिकता के गुण से गहरे से लैस होना है। मरुधारा के मिनख के मुस्कराने की उम्मीद के लिए वे जो रूपक लाए हैं- ठेठ वहाँ की मिट्टी से हैं। सेवण थार के रेगिस्तान में पैदा होने वाली वह सदाबहार घास है जो यूँ तो धूल में मिली-सी रहती है लेकिन चार बूँदे बरसते ही सरसब्ज होने लगती है। दूसरा रूपक गोडावण का है वह दुर्लभ पक्षी जो अब केवल राजस्थान में ही पाया जाता है। पाँखे खुजलाती गोडावण बेहद सुंदर लगती है- गरिमा से दीप्त-सी। तीसरा रूपक रेगिस्तान में टीलों पर पल-पल बदलते रेत के परिदृश्य का है जिसे देख कर विदेशी पर्यटक अभिभूत ही नहीं चित्रलिखे से रह जाते हैं और अंत में थार प्रदेश की वृक्ष वनस्पति-कैर, खेजड़ी, रोहिड़े, थोहर और

बबूल। जो यकीनन शताब्दियों से रेगिस्तान में जीवन के अस्तित्व को बचाने की अनथक चेष्टा में जुटे हैं।

'तौ सुणा भायलां' कविता का उल्लेख खासतौर से जरूरी है जो अपनी संरचना में समूची सृष्टिजात को सम्बोधित है। पर्यावरण के मार्फत जल संकट, उसके अभाव में नष्ट होती वनस्पति, विनष्ट होती पक्षियों की प्रजातियां, जंगली जीव जंतुओं का विनाश और इन सबके चलते मनुष्य की वंश वेल पर मंडराते आसन्न खतरे की बात करते हुए कवि जिस तरह समूचे 'सृष्टि-राग' को बचाने की अरदास करता है वह हर हाल में अनूठी है- ताकि ऋतुओं को बारिशों को, नदी नालों को, खेत खलिहानों को, हल बैलों को, किसान को, धरती के बीज को बचाया जा सके। इतना ही नहीं इसके मार्फत कवियों की कविताओं, मरुधारा के गीत संगीत को, मनुष्य की संवेदना को और समूचे जीवन-क्रम को बचाया जा सके।

पर यहाँ थार के जीवन को लेकर कवि किसी खुशफहमी का शिकार भी नहीं है। 'बुझूं हूँ सवाल' 'कूख रौ बीज बचावण' और 'म्हे मांडिया' जैसी कविताओं में उसने समाज में सदियों से चली आ रहीं उन सामाजिक बुराइयों का भी जायजा लिया है। आज आये परिवर्तन का भी कवि साक्षी होता है। राजस्थान में बरसों बरस व्याप्त रही बच्चियों को जन्म लेते ही मार देने की क्रूर प्रथा और स्त्रियों पर सदियों से होते चले आ रहे अत्याचारों के साथ अब आजादी के पश्चात तेजी से हुए सामाजिक परिवर्तनों और इस दिशा में सकारारात्मक बदलाव पर भी कवि की दृष्टि गई है।

इसे लेकर वरिष्ठ राजस्थानी कवि- आलोचक तेज सिंह जोधा ने संग्रह की भूमिका में ठीक ही लिखा है: आज रै समै, समाज अर राजनीतिक विसंगतियाँ अर बजार कीकर मिनख नै प्रभावित करै, कवि इणनै आपरी केई कवितावां में परतक करै। इण रै अलावा कवि आपरै परिवेस रै फूटरापै अर विडरूप नै ई रचौ, तो मरुधर रौ भूगोल, ऋतुवां रा रंग, कुदरती कहर, कुदरती, समाजू अर सांस्कृतिक मांनखी क्रिया वौपार, अभावां सूं आथड़तै पांख-पखेरू, पसु, जीव-जंतु अर मिनखां रौ जीवट भरियौ जीवण कवि रै अनुभूत सत रौ हिस्सौ बणियोड़ौ है।

मीठेश जी के पास स्थानिकता के जादू से लैस मार्मिक कथ्य के साथ अपनी ही कमाई आत्मीय भाषा है और वह मुहावरा भी जो किसी रचनाकार को भीड़ से अलग विशिष्ट और जिंदा सर्जक बनाता है। यह संग्रह निश्चय ही उनकी ही नहीं बल्कि राजस्थानी की भी आगीवाण काव्य-कृति है।

सवाई सिंह शेखावत, 7/86 विद्याधर नगर–जयपुर–302039 (राजस्थान)
मो. : 7976304969

✧ ✧ ✧

समकालीन हिन्दी कथा साहित्य में स्त्री विमर्श

रंजना अरगड़े

इसी बात को वर्तमान संगोष्ठी के संदर्भ में इस तरह से भी कहा जा सकता है कि आज के नेताओं और माफिया ठेकेदारों द्वारा आदिवासियों एवं अन्य ग्रामीणों पर जो अत्याचार हो रहे हैं, जिसके विरुद्ध इदनन्मम (1994) की नायिका मंदाकिनी जुझारू बन कर खड़ी हो जाती है अथवा चाक (1997) में जिस नयी नारी- चेतना का प्रवेश दिखाया गया है, उस पर भी सोचना जरूरी है। क्या इस तरह के विषय उपन्यास में आने के बाद यथास्थिति में कोई परिवर्तन आता है। परिवर्तन तो सकारात्मक राजनैतिक निर्णयों से आता है, वह भी इस बात पर आधारित है कि वह निर्णय कब और किस प्रकार के समाज की जमीन पर पड़ता है।

मुझे याद है कि एस. एन. डी. टी. बंबई ने सन् 1992 एवं सन् 1993 में क्रमशः आधुनिक काव्य में नारी: स्वरूप और प्रतिमा तथा आधुनिक कथा साहित्य में नारी: स्वरूप और प्रतिमा (उमा शुक्ल) शीर्षक से दो राष्ट्रीय परिसंवाद आयोजित किए थे। मेरी जानकारी में हिन्दी विभागों द्वारा इस विषय पर सेमीनारों की शुरुआत वहीं से हुई होगी। इसके पूर्व इस विषय पर सेमीनार संभवत: नहीं ही हुआ था। आज इस बात को 22 वर्ष हो गए। इस बीच नारीवाद, नारी लेखन, नारी विमर्श, नारी चेतना, नारी अस्मिता पर भारत भर के विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभागों में अनेक संगोष्ठियाँ / परिसंवाद हो चुके हैं। आज हम यहाँ समकालीन कथा साहित्य में स्त्री विमर्श पर बात करने के लिए एकत्रित हुए हैं। अगर हम एक क्षण के लिए यह कल्पना करें कि समग्र भारत के हिन्दी जगत की एक अकादमिक सातत्य पूर्ण सोच है, तो बाईस वर्ष पहले हमारी चिंता नारी के स्वरूप और प्रतिमा को पहचानने का प्रयत्न कर रही थी तो आज इस संगोष्ठी का उद्देश्य बहुत ही महत्वाकांक्षी एवं उदात्त है। प्रस्तुत संगोष्ठी में स्त्री के प्रति अपनाए गए पारंपरिक एवम् संकीर्ण दृष्टियों से ऊपर उठ कर उसके प्रति स्वस्थ बोध निर्माण करने की चेष्टा की जाएगी। स्त्री के माध्यम से समकालीन जीवन मूल्यों की स्थापना करने का प्रयास होगा। साहित्य एवं साहित्यकार के द्वारा स्त्री विषयक संवेदनाओं को उद्धृत कर उसे सामाजिक न्याय व अधिकार देना ही संगोष्ठी

का उद्देश्य है। अगर स्त्री को सामाजिक न्याय व अधिकार देना ही संगोष्ठी का उद्देश्य है, तो इससे अधिक महत्वाकांक्षी तथा उजात्त परियोजना और क्या हो सकती है। लेकिन आज का हमारा समाज, राज्य, विधि-कानून और यह विश्व बाजार देख कर ही यह संदेह पैदा होता है कि क्या इस संगोष्ठी का उद्देश्य पूरा हो सकेगा मुझे आप माफ करेंगे कि आज जब साहित्य, साहित्यकार तथा उसके संप्रेषक एवं प्रसारक माध्यम-जिनमें एक ओर संचार माध्यमों जैसे जड़ माध्यमों का समावेश होता है। वहीं दूसरी और हम अध्यापकों जैसे सजीव माध्यमों की भी गिनती की जा सकती है- वे क्या इतने विश्वसनीय और समर्थ हैं कि इतना बड़ा काम कर ले जाएंगे। इस संगोष्ठी का उद्देश्य परिपूर्ण कर सकेंगे स्त्रियों के संदर्भ में अध्यापकों की तारीफ में कितने ही कसीदे अखबारों में पढ़े जाते हैं। कितने ही अनकहे भी रह जाते हैं। यह बात क्या हम करना और सुनना चाहते हैं। क्योंकि इस संदर्भ में जो लोग अखबार में हैं, वह व्यक्तिश: हम नहीं हैं, पर अगर उनका संबंध शिक्षा के व्यवसाय से है, तो वह हम ही हैं- इससे भला इन्कार कैसे हो सकता है और फिर साहित्यकारों की संवेदनशीलता तथा विवेक संपन्न बातों से कब समाज बदला है। मैंने वर्षों पहले अपने एक विद्यार्थी को शोध का विषय दिया था कि स्वातंत्र्योत्तर काल में हजारी प्रसाद द्विवेदी, अज्ञेय, शमशेर, मुक्तिबोध, निर्मल वर्मा और रघुवीर सहाय जैसे रचनाकारों के चिंतनात्मक साहित्य में समाज, कला, भाषा तथा संस्कृति को लेकर जो उदार चिंतन हुआ है, उसका समाज पर क्या कोई प्रभाव पड़ा है। इन रचनाकारों का इतना उदार चिंतन होने के बावजूद समाज में सकारात्मक परिवर्तन क्यों नहीं दिख रहा। इसके विपरीत इन वर्षों में सामाजिक असहिष्णुता बढ़ी है, असामाजिकता का प्रसार हुआ है, अपसंस्कृति, गाली, कुभाषा और फूहड़ सौन्दर्यबोध ही समाज में क्रमश: पनपा है। उसके शोध का निष्कर्ष था कि राष्ट्रीय भावना का ह्रास, निजि स्वार्थों का विकास और संकीर्ण राजनीति के सर्वव्यापी प्रसार के गहरे कुहासे में ये उदात्त विचार ओझल हो गए हैं। समाप्त हो गए हैं- कहना निराशाजनक लगता है। पर ऐसा अगर कोई माने तो इसमें संदेह नहीं करना चाहिए।

इसी बात को वर्तमान संगोष्ठी के संदर्भ में इस तरह से भी कहा जा सकता है कि आज के नेताओं और माफिया ठेकेदारों द्वारा आदिवासियों एवं अन्य ग्रामीणों पर जो अत्याचार हो रहे हैं, जिसके विरुद्ध इदनन्मम (1994) की नायिका मंदाकिनी जुझारू बन कर खड़ी हो जाती है अथवा चाक (1997) में जिस नयी नारी- चेतना का प्रवेश दिखाया गया है, उस पर भी सोचना जरूरी है। क्या इस तरह के विषय उपन्यास में आने के बाद यथास्थिति में कोई परिवर्तन आता है। परिवर्तन तो सकारात्मक राजनैतिक निर्णयों से आता है, वह भी इस बात पर आधारित है कि वह निर्णय कब और किस प्रकार के समाज की जमीन पर पड़ता है। अगर परिवर्तनकामी, प्रगतिशील उपजाऊ जमीन है तो ऐसे निर्णय फलीभूत होते हैं। चाक में रेश्मा और गुलबंदी की हत्या का विरोध सारंग करती है, यह अच्छा है। पर पंचायत का चुनाव लड़ने हेतु सभी का विरोध (पति समेत) होने पर भी मास्टर श्रीधर से देह संबंध स्थापित करके ही वह यह साहस कर पाती है। इस पर कई प्रकार के प्रश्न उठते हैं। क्या मास्टर श्रीधर से देह संबंध स्थापित किए बिना वह यह नहीं कर सकती थी। परन्तु 2007 में लिखी नीलम कुलश्रेष्ठ की हैवेनली हैल की नायिका सारंग से आगे जाती है। अपना व्यवसाय स्थापित करने के लिए परिस्थितिगत (ग्राऊंड लेवल पर) एवं मानसिक संघर्ष उसे करना पड़ता है। वह एक सामान्य मध्य वर्ग की स्त्री है। उसके पास पूँजी अथवा परिवार का कोई

समर्थन नहीं है। किन्तु अपनी व्यावसायिक महत्वाकांक्षा को पूरी करने के लिए वह अपने तथाकथित 'मित्र' को समर्पित नहीं होती, जो बड़ी बेसब्री से उस क्षण की प्रतीक्षा कर रहा है। अपने 'मित्र' की ऐसी इच्छा को हँसी में उड़ाने की बहुत बड़ी कीमत चुकाने के बाद भी उसका निर्णय यथावत् रहता है। उसे यह भी अनुभव होता है कि जिन्हें वह अपना हित-चिंतक मानती थी- जिनमें उसका परिवार (बड़ा भाई), सहेली (तरला), नौकर और अन्य व्यावसायिक समर्थक (मि. सेन) का समावेश होता है, वे सब-स्वर्ग के देवताओं जैसे साबित हुए, जो स्निग्ध चेहरे का नकाब लगाए। तलवार से घाव करते रहते हैं और वह तो जैसा है वैसा है, बिना नकाब के (कुलश्रेष्ठ 148)। यह निश्चय ही चाक के बाद की स्त्री है। चाक से पहले धनिया थी, जो महत्वाकांशी नहीं थी, सामान्य निम्न वर्ग की मजदूर स्त्री थी, परन्तु फिर भी व्यवस्था का सामना तो करती है। तमाम विरोधों के बावजूद झुनिया को अपने यहाँ रखती है। पर उसकी कोई राजनीतिक अथवा व्यावसायिक महत्वाकांक्षा नहीं थी। वह समकालीन नारी नहीं है।

सवाल यह है कि हम किस स्त्री को चुनना चाहते हैं.... महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए समझौते करती स्त्री या संघर्ष के साथ जितना मिल सकता है उतने में संतोष मान लेने वाली और वस्तुस्थिति के आकलन में तटस्थ रह पाने की कोशिश करती स्त्री यह चुनाव सरल नहीं है। अंत में हैवेन्ली हैल की नायिका के सामने जो प्रश्न खड़ा होता है वह तो यही है- ''इस बिजनस एम्पायर के मालिक की सभी लालचों को दर किनार करती हुई जब वह बाहर आती है और अपनी परिस्थितियों का विश्लेषण करती है- दुनिया एक नर्क है। अपनी उजली दुनिया के नर्क से छिदी-बिंधी वह उन तक चली आई थी। इसी नर्क को अपने पाँवों से दबाए अपनी दोनों सशक्त बाहें फैलाए वे उसे अपने मजबूत घेरे में लेने को तैयार हैं। क्या करे वह अपने अंदर से स्वच्छ स्फ्टिक स्वर्ग का जिसमें अपने ही लोगों ने उसके दिल को छेद-छेद कर मार डाला है। यदि वह दूसरी तरफ चली गयी तो उसके अंदर की अच्छाई का चाहना उसे लहूलुहान कर पूरी की पूरा मार डालेगी, वही जैनेटिक प्रॉब्लेम और कुछ नहीं। ऑफिस के बाहर उस फैक्टरी के बाहर दोपहर की सफेद उजली धूप अपने पूरे उजास पर है। उजाला उसके लिए अपनी बाहें फैलाए खड़ा है। अभी जो वह भव्यता देख कर आ रही है, कैसे गर्व करे अपने स्वर्ग पर इस स्वर्ग से कीचड़ को देखकर कैसे घृणा करे उस पार के जीवन को उसे संदेह होता है कहीं वह उजाले पर से आस्था तो नहीं खो चुकी क्योंकि उजाले ने भी क्रोध से तेजी से कहा था-

दुनिया एक नर्क है। (कुलश्रेष्ठ, हैवेनली हैल 151-152)

अपने बूते पर व्यवसाय करने वाली सामान्य स्त्रियों का संघर्ष अलग है। फिर चाहे वह मारवाडी हो या पंजाबी। यह कहानी किसी वर्ग विशेष की अथवा समूह विशेष की स्त्री के संघर्ष को नहीं बताती जैसा प्रभा खेतान अथवा दिनेशनंदिनी डालमिया अथवा पुष्पा मैत्रेयी की नारियों का संघर्ष है। यहाँ एक सवाल है जिस पर सोचा जाना चाहिए। यह बात बार-बार कही गयी है कि अलका सरावगी या प्रभा खेतान आदि ने मारवाड़ी समाज की अंदरूनी शोषणगत हकीकतों को अपनी रचनाओं में उजागर किया है। इसमें किसी को क्या आपत्ति न हो सकती है! महाराष्ट्र की बात मैं नहीं जानती परन्तु गुजरात की बात जानती हूँ। यह प्रश्न मारवाडेतर समाज की स्त्री के मन में

भी आ सकता है कि उसके यहाँ तो इस प्रकार की कोई समस्या नहीं है। सन् 2003 में प्रकाशित मृणाल पांडे की (पांडे) पुस्तक में, जिसमें उन्होंने भारतीय स्त्री के प्रजनन और यौवन जीवन के संदर्भ में कोख से चिता तक का सर्वेक्षण प्रकाशित किया है। इसमें भारत भर की स्त्रियों के अलग-अलग प्रसंग दिए गए हैं। इस में एक बात अत्यन्त विलक्षण है। उनका निरीक्षण है कि भारत भर की स्त्रियों की कठिनाइयों और रोगों में 19-20 का अंतर हो तो हो, परन्तु विभिन्न प्रदेशों की स्त्रियों तथा पुरुषों की प्रकृति की भिन्नता के कारण, कार्य व परिणाम भिन्न है। मुद्दा इतना ही है कि समकाल से पूर्व यानी 1980 के पहले लिखे जाने वाले कथा साहित्य में नारी की प्रदेशगत और जातिगत अस्मिता इतनी स्पष्ट रूप से रेखांकित नहीं हुआ करती थी। तब वह नारी थी इतना ही काफी माना जाता था। धनिया चाहे उत्तर प्रदेश के गाँव की थी, पर उस पर उत्तर प्रदेश हावी नहीं था, कमली और लछमी चाहे ठेठ मेरीगंज की हों, पर फिर भी अपनी चेतना में वह मेरीगंज के बाहर भी अर्थपूर्ण भासित होती हैं। इसका कारण संभवत: वह समय है जिसमें ये उपन्यास रचे गए। इधर के वर्षों में स्त्री पर होते अन्याय के रेखांकन में उसकी जाति-प्रदेशगत अस्मिता इतनी अधिक झलकती है कि वह एक निश्चित दायरे की स्त्री बन कर रह जाती हैं। यूनिवर्सलिजेशन ऑफ लिटरेचर- यह उत्तर आधुनिक काल का लक्षण नहीं है। फिर भी इसमें कोई संदेह नहीं कि ऐसे उपन्यासों की प्रशंसा तथा स्वागत किया ही जाना चाहिए, क्योंकि इसे पढ़कर ही पाठक को यह समझ में आता है कि संकीर्ण और दंभी मारवाड़ी समाज की इन स्त्रियों ने कम-से-कम इतना तो साहस बताया कि वह अपने विरुद्ध होते शोषण के बारे में कह सकीं। जाट समाज के बारे में यही बात इदनन्मम और चाक के संदर्भ से कही जा सकती है। लेकिन क्या इन कृतियों के बाद मारवाड़ी समाज अथवा जाट समाज में कोई परिवर्तन आया? क्या उसमें किसी प्रकार की चेतना आयी? खाप पंचायतें तो अभी भी हैं ही। इसीलिए आरंभ में मैंने यह कहा था कि साहित्यकार इतना प्रभावशाली नहीं होता कि वह जो कुछ लिखे उसका असर समाज पर पड़ता है। यह तब संभव है जब सातत्य के साथ अपने इन मुद्दों को विभिन्न रचनाओं के साथ फौलो अप किया जाए या अनेक रचनाकार इन्हीं मुद्दों को अपना बनाकर इन पर लगातार सातत्य पूर्ण ढंग से लिखे। साहित्य में प्रवाहित विभिन्न प्रवाहों में बहने की अपेक्षा अगर अपने प्रवाह को पहचान कर उसी में आगे बढ़ा जाए, तो कुछ परिवर्तन आने की संभावना है, वह भी एक लंबे समयान्तराल के बाद। साहित्य में बदलाव तेजी के साथ आते हैं, समाज में बदलाव की गति अपेक्षाकृत बहुत धीमी होती है।

समकालीन का अर्थ अमूमन 1980 के बाद का दौर। इसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। इसपर थोड़ा विचार करें तो यह देखा जा सकता है कि 1975 से 1990 तक का समय एक अलग तरह के परिवर्तन का समय रहा है। 1976 में आपातकाल, 1981 में गुजरात में हुए आरक्षण विरोधी दंगे, 1990 में राष्ट्रीय स्तर पर हुए आरक्षण विरोधी दंगे- अगर ये तीन तिथियाँ भारतीय संदर्भ में महत्वपूर्ण हैं तो वैश्विक स्तर पर यू. नो. द्वारा 1975 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के रूप में घोषित किया गया। 1985 में सोवियत संघ के विघटन का आरंभ और 1990 में यह विघटन पूरा होने पर विश्व बाजार का उदय और उसका सक्रीय होना बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि शीत युद्ध समाप्त हो गया था। 1990 से 2000 के बीच भारतीय राजनीति, अर्थ नीति में इस कदर परिवर्तन आया कि इन सब का असर कहीं न कहीं लेखन, और विशेष रूप से नारी लेखन पर पड़ा। यह

वही समय है जब हिन्दी में भी महिला लेखन को ले कर जागृति बढ़ी और बड़ी तेजी से इस दिशा में वह (हिन्दी लेखन) आगे बढ़ा। यह भी अध्ययन करना रोचक होगा कि सन् 2000 से आज तक यानी 2014 तक प्रत्येक वर्ष यूनो के द्वारा महिला दिवस पर दिए विषयों का और लेखन में उकेरे गए स्त्री बिम्बों से उसका क्या और कितना संबंध है, कितना इसका समाज तथा लेखन पर प्रभाव पड़ा है। अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के लिए यूनो ने सन् 2000 से क्रमश: शांति, संघर्ष प्रबंधन, लिंगगत समानता, विकास संबंधी लक्ष्य, स्त्री एवं स्वास्थ्य (एड्स), सुरक्षित भविष्य, निर्णय प्रक्रिया में स्त्री की भागीदारी, स्त्री हिंसा, स्त्री एवं बच्चों के हित में निवेश करना, हिंसा के विरुद्ध स्त्री-पुरुष का साझा संगठन, समान अधिकार-समान अवसर-सभी का विकास, शिक्षा में समान अवसर, प्रशिक्षण, विज्ञान में प्रौद्योगिकी, स्त्री को बेहतर काम के अवसर, ग्राम्य स्त्री का सशक्तिकरण (2012)- भूख एवं दारिद्रय की समाप्ति, वादा निबाहना- स्त्री विरुद्ध हिंसा पर रोक का निश्चय, (2013) स्त्री की समानता- सभी का विकास इस पूरी सूची में स्त्री हिंसा को लेकर कितनी यूनो जैसी संस्था को बार बार निर्णय लेना पड़ा वह इस बात का संकेत है कि समाज में तथा सामाजिक व्यवहार तथा एक हद तक व्यापक सामाजिक चिंतन में अभी इसे जगह नहीं मिल पायी है। स्त्रियां के संबंध में इन वर्षों में जितने कानून बने हैं वे कहीं न कहीं इसका भी प्रतिफलन है- ऐसा कहना सर्वथा गलत नहीं होगा। यह ध्यान देने वाली बात है कि 1997 में मैत्रेयी पुष्पा का चाक आता है जिसमें ग्राम्य स्त्री के सशक्तिकरण को केन्द्र में रखा है। जबकि यूनो ने 2012 में ग्राम्य स्त्री सशक्तिकरण को थीम के रूप में प्रसारित किया। इससे पता चलता है कि मैत्रेयी पुष्पा अपने समय के साथ, समय की समस्याओं को उपन्यास का विषय बनाती हैं। लेकिन समस्या से निपटने के उनके तरीके से सहमत हों या नहीं, यह बकणैल हैवेनली हैल की नायिका प्रत्येक स्त्री की अपनी जैनेटिक प्रॉब्लेम है। लिंगगत समानता की बात तो समकालीन उपन्यासों में प्राय: देखी जा सकती है। स्त्री विरुद्ध हिंसा समाज में बदस्तूर जारी है अत: वैश्विक फलक पर बार-बार इसे दोहराना-तिहराना पड़ता है।

समकालीन समय का स्त्री-विमर्श गाँव के परिवेश में भी है और शहर में भी; गाँव में कम पर शहर में अधिक दिखायी पड़ता है। इस संदर्भ में मृणाल पांडे का यह कथन दृष्टव्य है- लेकिन मानना ही पड़ेगा कि भार में अब तक नारीवादी विमर्श के केन्द्र में प्राय: शहरी उच्च मध्यवर्गीय सवर्ण स्त्रियाँ ही रहता आयी हैं।' (पांडे, ओ उब्बीरी 14) शहर शायद अपनी पहचान में लगभग एक जैसे हों, परन्तु गाँवों की तो अपनी अलग पहचान बनी हुई है। मन्नू भंडारी, मृदुला गर्ग, राजी सेठ, नासिरा शर्मा, सुरेन्द्र वर्मा, विष्णु प्रभाकर आदि उपन्यासकारों नें दिल्ली का परिवेश पूरी विश्वसनीयता के साथ प्रस्तुत है। गीतांजलि श्री, सुनिता जैन, कमलकुमार के उपन्यास भी महानगरीय परिवेश में ही नारी की स्थिति और नियति का चित्रण करते हैं। (राय 412-413) इसमें और भी कई नाम हैं जो आज के लेखन में अत्यन्त महत्वपूर्ण है- जैसे मृणाल पांडे, चित्र मुद्गल, चंद्रकांता, ममता कालिया ... इस फेहरिस्त में और भी कई नाम जुड़ सकते हैं।

लेकिन भारतीय भाषाओं में 1975 के भी बहुत पहले से स्त्री कथा साहित्य में अपनी जगह बना चुकी थी। हिन्दी कथा साहित्य इस अर्थ में गर्व कर सकता है कि विषय, समस्या, चरित्र

और रचनाकार की हैसियत से स्त्री वहाँ सदैव ही विद्यमान रही। उसको महत्व कितना मिला यह बात अलग है। समकालीन स्त्री विमर्श की बात करते हुए हमारे सामने कुछ बातें स्पष्ट होनी चाहिए। मसलन 80 के पहले का स्त्री विमर्श और 80 के बाद का स्त्री विमर्श किस मायने में भिन्न है। फिर समकालीन स्त्री विमर्श के लेखक और लेखिकाएं अपनी सोच में कहाँ अलग हैं। क्या यह अलगाव लेखक के रूप में स्त्री की उपस्थिति को अनिवार्य बनाते हैं। इसके साथ ही कुछ और मुद्दों पर चर्चा होनी अनिवार्य है। मसलन स्त्री विमर्श की राजनीति ने किस प्रकार की लेखिकाओं को महत्व दिया है और किस प्रकार की लेखिकाओं को दरकिनार किया है। इसके क्या कारण हो सकते हैं। स्त्री लेखन की आलोचना की अपनी राजनीति है। इन सभी विषयों पर निश्चित रूप से आज और कल गंभीर चर्चा होगी ही। यह सब गंभीर और विस्तृत अध्ययन के विषय हैं। इन्हीं के उत्तर खोजते हुए हमें वे जवाब मिलेंगे जिनकी हमें प्रतीक्षा है। सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए (1993) में दसवीं क्लास में पढने वाली यशोदा शर्मा मध्यवर्गीय परिवार की अत्यन्त महत्वाकांक्षी लड़की है जिसने अपने पिता को बताए बिना ही अपना नाम बदल लिया है। यह एक उपन्यास है, ऐतिहासिक दस्तावेज नहीं अत: चाहे कितना भी प्रश्नाकुल हों, फिर भी हम इस बात की चर्चा नहीं करते कि उस सिलबिल को कानूनी कार्यवाही का कैसे सब पता था। प्रश्न यह है कि लेखक ने वर्षा की घोर महत्वाकांक्षाओं को पूरी किए जाने की लंबी यात्रा का ख़ाका इस उपन्यास में खींचा है। ग्लैमर की दुनिया में शरीर के माध्यम से ही जाना संभव है। सुरेन्द्र वर्मा ने इस विषय पर अच्छे विस्तार से बात की है। ग्लैमर की दुनिया में आवाँ (2000) की नायिका जब परिस्थितिवश पहुँच जाती है, तब वहाँ जाने की विवशता और ग्लैमर की जो कीमत एक स्त्री को चुकानी पड़ती है उसमें से निकल कर किस तरह संघर्ष करते हुए अपने पाँवों पर खड़ी होती है, इसकी कथा चित्र मुद्गल में बड़ी संजीदगी से कही है। इन दोनों उपन्यासों में स्त्री तथा पुरुष के दृष्टिकोण का अंतर साफ दिखता है। सुरेन्द्र वर्मा ग्लैमर की दुनिया में गई स्त्री को बाहर से देख रहे हैं और चित्र मुद्गल उसे भीतर से अनुभव करती हैं। इसका अर्थ यह भी तो होता है कि आज के स्त्री विमर्श में वर्षा भी है और नमिता भी है।

एक जिस प्रश्न की ओर मैंने आपका ध्यान आकर्षित किया था वह यह कि स्त्री विमर्श की राजनीति ने किस प्रकार की लेखिकाओं को महत्व दिया है और किस प्रकार की लेखिकाओं को दरकिनार किया है। यह बात समझ में आती है कि जातिगत शोषण से जुड़े उपन्यासों पर उत्तर-आधुनिकता का भी प्रभाव है जिसके कारण समूह-विशेष की पहचान महत्वपूर्ण हो जाती है। इसका इतना अधिक महत्व हिन्दी आलोचना ने रेखांकित किया कि इसी समकालीन दौर में लिखने वाली अनेक अन्य महत्वपूर्ण लेखिकाएं पीछे छूट गयीं अथवा स्त्री विमर्श की चर्चा के दायरे में उन्हें संदेहास्पद माना गया। मेरा ऐसा मानना है कि भारतीय फ्रेम में रह कर भी, जिन्होंने बगावती मॉडल नहीं अपनाया और एक समाज को स्वस्थ बनाए रखने में अपनी रचनात्मकता खर्च कर दी ऐसे रचनाकार स्त्री विमर्श की आलोचनात्मक राजनीति में बाहरी माने गए। इस संदर्भ में नासिरा शर्मा और सूर्यबाला का विशेष रूप से उल्लेख करना आवश्यक है। इन दोनों रचनाकारों का कथा साहित्य मर्मभेदी और प्रभावी है। वे परिवार जीवन की उन कड़ियों को जोड़ती हैं जिनके

खंडित होने से समाज में बिखराव आ गया है। नासिरा शर्मा ने तो एक से एक बेहतर कहानियाँ एवं उपन्यास लिखे हैं। समकालीन रचनाकारों में नासिरा मेरी सर्वाधिक प्रिय लेखिका हैं। और साथ ही सूर्यबाला एवं राजी सेठ। माँ-बेटी के संबंधों की प्रगाढ़ता और भौतिक रूप में जो नाल जन्म के साथ काट दी जाती है वह अदृश्य रूप में हमेशा ही माँ-बेटी के बीच बनी रहती है। राजी सेठ की कहानी खाली लिफाफा और सूर्यबाला की कहानी समापन इसका बहुत अच्छा उदाहरण हैं। माँ-बेटी के संबंधों की प्रगाढ़ता का अनुभव, कोई अपवाद हो अगर तो, सभी को है ही। इन रचनाकारों ने परिवार की टूटन को बचाने की कोशिश की है। यानी सिस्टम को टूटने नहीं दिया है। अत: ये कहानियाँ नारीवादी आलोचना की परिधि में नहीं आतीं। यहाँ मुझे एक बात कहनी है। अगर साहित्य केवल एकेडेमिक्स है, तब तो इन आलोचकीय निर्णयों से हमें कुछ लेना-देना नहीं है। पर अगर हम यहाँ किसी सामाजिक बदलाव के आरंभ को संभव बनाने की उम्मीद से आए हैं तो, हमें यह तय करना होगा कि अपने भीतर की संवेदना को अधिक सघन बनाएं या समझौते कर के महत्वाकांक्षाएं पूरी करने की दौड़ लगाएं। यह हर व्यक्ति का अपना चुनाव होता है। साहित्य अगर साहित्य है, उसका जिए जाते जीवन से प्रगाढ़ नाता है तो, हमें यह तय करना होगा कि हम किस तरह का साहित्य पढ़ें। शनि-शिंगणापुर तो छोटी जगह है, पर आज अहमदाबाद जैसे शहर में एम. ए. में पढ़ती लड़कियाँ प्रेम-प्रसंग का नाम सुन कर अभी इतनी सहज नहीं हो पातीं। कहने का अर्थ यह है कि हमारा समाज अभी वहाँ नहीं है जहाँ इन उपन्यासों का इंगित है और अगर वर्षा बनना ही है तो अधिक तैयारी के साथ वर्षा बनें कि इस तरह के समझौते न करने पड़ें।

नासिरा शर्मा के कथा साहित्य में स्त्री चित्रों का अभूतपूर्व एल्बम है। उनकी चित्र वीथिका में जो स्त्रियां रहती हैं, उनकी संवेदना से ऐसी लबरेज हैं कि जीवन उम्मीदों से भरा लगता है। नासिरा शर्मा विभिन्न तरह की जीवन परिस्थितियों में पड़ी स्त्री छबियों को उकेरती हैं। कुँइयाजान- एक औपन्यासिक महागाथा है। जब कुएं सूखते हैं तब गहरे में दबी कुइयाँ ही काम देती है; नदियाँ सूखती हैं, तो हरहरा भी जाती हैं, लौट कर अपनी जगहों पर आती भी हैं; और जब घर टूटते हैं तो स्त्रियों के भरोसे ही जुड़ते भी हैं। कितनी तरह की स्त्रियाँ इस एक महागाथा में गुंथी हुई हैं। उनका अजनबी जजीरा उपन्यास संवेदना के उच्चतम तार पर बजता है। सघन एवं तीव्र संवेदना के धरातल पर मैंने इस तरह का उपन्यास नहीं पढ़ा है।

साहित्य में स्वतंत्र- अभिव्यक्ति के नाम पर कितना खुलापन होना चाहिए इसका जो भी उत्तर हो वह समकालीन स्त्री विमर्श पर भी लागू होता है। इस संदर्भ में कुछ लेखिकाओं के ही नाम टार्गेट किए गए हैं। इन बातों की भी चर्चा हो सकती है पर यह चर्चा लेखन की स्वतंत्रता, पोर्नोग्राफी और शिष्ट साहित्य का अंतर्संबंध, बाजार, संस्कृति रक्षा बनाम मॉरल पुलीसिंग आदि की चर्चा में सरक जाएगा। यहाँ इस बात को भी तलाशना जरूरी हो जाता है कि वह किसी विचारधारा के विरुद्ध योजनाबद्ध लड़ाई तो नहीं है, संदर्भ से हटा कर वाक्य अपने मूल अर्थ को खो देते हैं, अत: एक सावधानी की यह भी आवश्यकता है कि हम स्त्री विमर्श पर लिखी रचनाएं और आलोचनाओं को भी विवेकपूर्ण दृष्टि से ही पढ़ें। इस संदर्भ में इतना कहना ही काफी है कि कुछ चीजें समय पर छोड़ देनी चाहिए, क्योंकि वही सर्वाधिक विवेकपूर्ण निर्णायक है।

अंत में मैं पुनः अगर आरंभ में की हुई अपनी बात पर आऊं, तो यूं कहूंगी कि समकालीन कथा साहित्य में जो स्त्री है वह व्यक्तिशः तो हम नहीं हैं क्योंकि हम न सारंग हैं, न रेशमा हैं, न प्रीति हैं, न शाल्मली हैं या महरुख पर अगर हम स्त्री हैं, तो वह हम वही हैं। क्या कथा साहित्य में जो हम हैं और जितने विभिन्न तरीकों से हैं, क्या हम सचमुच वैसी हैं या वैसी बनना चाहती हैं। हमें अपना रोल मॉडल चुनना है। असल में बहुत कुछ है जो कहा जा सकता है। समकालीन दौर में सर्वाधिक तो स्त्री विमर्श है, फिर दलित विमर्श। दलित विमर्श में भी एक स्त्री विमर्श है। इधर जिसकी चर्चा का आरंभ हुआ है और जिसको आरंभ करने का श्रेय के. वनजा को जाता है, वह इको फेमिनिज्म स्त्री पारिस्थितिकी भी एक तरह का स्त्री विमर्श है। प्रकृति पर होते अनाचार से जुड़ी कृतियाँ जिनमें संजीव की रह गयी दिशाएं उस पार, धार, और महुआ मांझी का मरंग गोडा नीलकंठ हुआ तथा नौटियाल का मेरा जामक वापस दो को शामिल कर सकते हैं, यह भी एक प्रकार का स्त्री विमर्श ही है। विस्थापन चूंकि एक सब-कैटेगरी बन गयी है अतः उसका भी अपना एक स्त्री विमर्श है। इन सब पर चर्चा अपेक्षित है और मुझे विश्वास है कि आने वाले दो दिनों में आप इन सब विषयों पर सार्थक चर्चा करेंगे। मैंने केवल अपनी चिंताएं व्यक्त की हैं और अपनी समझ से जो ठीक लगा, आपके समक्ष विनम्र भाव से रखा है।

आपने मुझे सुना, मैं आपकी आभारी हूँ।

संदर्भ सूची :

1. गोपाल राय. हिन्दी उपन्यास का इतिहास. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2002.
2. नामवर सिंह. आधुनिक हिन्दी उपन्यास. दिल्ली. राजकमल प्रकाशन, 2010
3. नीलम कुलश्रेष्ठ. हैवेनली हैल. दिल्ली: शिल्पायन प्रकाशन, 2007.
4. महादेवी वर्मा. श्रृंखला की कडियाँ. लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, 1999
5. माधुरी छेडा उमा शुक्ल. आधुनिक कथा साहित्य में नारी - स्वरूप और प्रतिमा. बंबई: अरविंद प्रकाशन, 1994.
6. मृणाल पांडे. ओ उब्बीरी. दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन, 2003.
7. सुमन राजे. हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास. नई दिल्ली. ज्ञानपीठ प्रकाशन, 2006
8. सूर्यबाला. गृहप्रवेश. नई दिल्ली. ग्रंथ अकादमी, 1959

रंजना अरगड़े, प्रो. एवं आचार्य–हिन्दी विभाग, गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदाबाद

✧ ✧ ✧

अस्मत नीलाम घोड़ों के दाम

सुधा गोयल

राजकुमारी माधवी राजाज्ञा पढ़कर जड़वत् हो गई। यह कैसी राजाज्ञा है? क्या पिताजी महाराज ने यह निर्णय स्वविवेक से लिया है? क्या पिता अथवा राज्य के लिए एक बेटी की अस्मिता का मूल्य महज आठ सौ श्याम अश्व हैं? क्या पिताजी का राजकोष खाली हो गया है या फिर पिता महाराज की बाँहों में वह ताकत नहीं रही कि अन्य राजाओं से युद्ध में श्याम अश्व जीतकर ऋषिकुमार गालव को दे सकें?

पौराणिक कहानी

चलते-चलते सुबह से शाम हो गई। सूरज पहाड़ियों के पीछे छिपने की तैयारी कर रहा है। भूख, प्यास और थकान से बेहाल राजकुमारी माधवी एक वृक्ष के नीचे छाया में लेटी है और छः सौ श्याम अश्व पास ही वृक्षों से बंधे हरी दूब में मुंह मार रहे हैं। उचित पड़ाव के लिए ऋषि कुमार गालव स्थान की तलाश में गये हैं और माधवी को अश्वों की निगरानी के लिए छोड़ गए हैं।

ऋषि कुमार गालव गुरु दक्षिणा के लिए आठ सौ श्याम अश्व जुड़ाने के निमित्त माधवी को माध्यम बनाए हुए हैं। छः सौ अश्व जुटा लिए हैं। दो सौ श्याम अश्व और जुटाने हैं। क्या गुरुदेव दो सौ अश्वों के बदले माधवी से पुत्र पर्याप्त कर उसे ऋण मुक्त कर सकेंगे? गालव की चिंता का यही विषय है। माधवी क्या सोचती है, क्या चाहती है- यह गालव के लिए विचारणीय नहीं है। तभी विगत तीन वर्षों से मूक पशु की तरह माधवी की नकेल थामे राजदरबारों की हाट में माधवी की अस्मत का सौदा करता आ रहा है।

थकान से चूर राजकुमारी माधवी पीले पत्तों की चरमराती शय्या पर पलक मूंदे अपनी स्थिति का अवलोकन कर रही है। तब और अब....?

राजकुमारी माधवी पिता ययाति की आँखों का तारा, जरा-सा कष्ट होने पर सेवक-सेविकाओं का समूह राजवैद्य के साथ चिकित्सा के लिए तत्पर। मुंह से बात निकलते ही हुकुम की तामील होती।

आज सब कुछ कितना स्वप्नवत् है। आज तृण शय्या पर लेटी, निर्जनों की धूल फांकती, मलिन बदन, फटे वस्त्र, नंगे पांव, कंदमूल पर गुजारा करती, भूख-प्यास से बेहाल, क्या यही राजकुमारी माधवी है? सोचते हुए माधवी की आँखों से कुछ बूंदें लुढ़क कर पत्तों में समा गई।

माधवी ने अपना हाथ आँखों पर रख लिया। लेकिन इससे क्या? अंतर्मन की यादें पृष्ठ दर पृष्ठ पलटने लगीं-

उस दिन महाराज ययाति राजदरबार के लिए जा चुके थे और राजकुमारी माधवी अपनी सखियों के साथ चौसर खेल रही थी। मन कुछ उखड़ा-उखड़ा हो रहा था। राजकुमारी माधवी जो भी पांसा फेंकती वहीं उल्टा पड़ता। वह बार-बार हार रही थी।

तभी एक संदेश वाहक राजमुद्रिका से अंकित राजकीय पत्र लेकर आया और उसे राजकुमारी माधवी को देकर बोला- ''राजकुमारी, महाराज की आज्ञा है कि आप इस पत्र को पढ़ते ही प्रस्थान की तैयारी करें।'' संदेश वाहक चला गया।

तत्काल मुझे कहाँ और क्यों जाना है? यह राजाज्ञा मेरे निमित्त क्यों है? राज्य का मेरे द्वारा क्या अनिष्ट हुआ है? निमिष भर में कितने ही प्रश्न मानस पटल पर उभर आए। राजकुमारी माधवी ने वह शासकीय पत्र खोला। लिखा था-

''राजकुमारी माधवी! ऋषि कुमार गालव को मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र को गुरु दक्षिणा में देने के लिए आठ सौ श्याम अश्व चाहिए। तुम ऋषिकुमार गालव के इस प्रयोजन की पूर्ति के निमित्त नियुक्त की जाती हो। जिन-जिन राजाओं के पास श्याम अश्व हैं वे तुमसे एक पुत्र प्राप्त कर दो सौ श्याम अश्व ऋषिकुमार गालव को दे देंगे।

यह राजाज्ञा है। राजदरबार से कोई भी प्रार्थी खाली हाथ नहीं लौटाया जाता। आठ सौ श्याम अश्वों के निमित्त तुम्हें ऋषिकुमार गालव को सौंपता हूँ। उद्देश्य की पूर्ति के बाद तुम वापस खाण्डवप्रस्थ आ जाओगी।

नीचे पिता ययाति महाराज के हस्ताक्षर तथा राजमुद्रिका अंकित थी।

राजाज्ञा की अवमानना करना तथा पिताश्री की दानशीलता को कलंकित करना माधवी के लिए असंभव था। खांडवप्रस्थ के राजा ययाति अपनी दानशीलता के लिए दूर-दूर तक विख्यात थे।

राजकुमारी माधवी राजाज्ञा पढ़कर जड़वत् हो गई। यह कैसी राजाज्ञा है? क्या पिताजी महाराज ने यह निर्णय स्वविवेक से लिया है? क्या पिता अथवा राज्य के लिए एक बेटी की अस्मिता का मूल्य महज आठ सौ श्याम अश्व हैं? क्या पिताजी का राजकोष खाली हो गया है या फिर पिता महाराज की बाँहों में वह ताकत नहीं रही कि अन्य राजाओं से युद्ध में श्याम अश्व जीतकर ऋषिकुमार गालव को दे सकें?

और ऋषि कुमार गालव? धिक्कार है तुझे। गुरु दक्षिणा के आठ सौ श्याम अश्वों के लिए एक नारी की बलि देने जा रहा है। शिक्षा का ये कैसा घिनौना रूप?

शिक्षित व्यक्ति व राज्य औरत को एक वस्तु मानकर उपयोग करता है। क्या एक राजपुत्री का रुप लावण्य राजाओं के विलास का साधन बनेगा? सौंदर्य का ये अभिशप्त रुप? राजकुमारी माधवी एकबारगी कांप उठी।

पिता महाराज की इस आज्ञा को इतिहास क्या कहकर याद करेगा? राजकुमारी माधवी कितने राजाओं की अंक शायिनि बनेगी। यह कैसा अत्याचार? धरती फट क्यों नहीं जाती? उसे अपने आप से घृणा हो आई। राजकुमारी माधवी अब कभी राजमहिषी नहीं बन पाएगी। कोई राजकुमार उसका संसार नहीं बसा पाएगा। इस समय क्या करें वह। क्या आत्मघात कर ले अथवा भाग जाए। हाँ, आत्मघात करना ही ठीक रहेगा। मन ही मन निर्णय कर माधवी ने अंक में छिपी कटार निकाल सीने में भोंकनी चाही, तभी प्रतिहारी ने दौड़कर राजकुमारी के साथ से कटार छीन ली। राजमहल में शोर मच गया। राजमाता दौड़कर आईं। अचेत पड़ी पुत्री और राजमुद्रिका अंकित पत्थर को देखकर सोच में पड़ गई।

राजाज्ञा यूँ कि भरे दरबार में दी गई थी, अत: खबर कुछ ही घंटों में पूरे राज्य में फैल गई। राजकुमारी माधवी का यह अनोखा प्रवास देखने के लिए नागरिक राजपथ के दोनों ओर जमा होने लगे।

पुरुषों के लिए जहाँ यह कौतुक का विषय था, वहीं महिलाएँ राजकुमारी माधवी की दुर्दशा से रोमांचित हो आँसू पोंछ रही थीं। भयभीत थीं कि जिस राज्य में राजकुमारी की अस्मिता का सौदा किया जा सकता है उस राज्य की कोई भी नारी सुरक्षित नहीं है। क्या पता राजाज्ञा कब किसकी बेटी की अस्मिता का सौदा कर दे। सब आपस में चर्चा तो कर रहे थे लेकिन राजा के सामने खुल कर कुछ कहने की सामर्थ्य किसी में न थी।

रथ तैयार है– क्या जनसेवक सूचना देकर चला गया। तभी राजा ययाति ने अन्त: प्रकोष्ठ में प्रवेश किया। वे प्रफुल्ल थे और अपने हाथों अपनी पुत्री माधवी को ऋषिकुमार गालव को लेकर अपनी उस लज्जा से मुक्त होना चाहते थे जो याचक गालव द्वारा आठ सौ श्याम अश्वों की याचना पर हुई थी। क्योंकि महाराज ययाति के पास एक भी श्याम अश्व नहीं था। आमोद-प्रमोद में मग्न रहने के कारण उनकी भुजाओं में इतना बल भी नहीं था कि अन्य राजाओं से युद्ध करके उनके श्याम अश्व छीन लाते। वरयाम अश्वों के लिए राजकोष भी कहाँ तक लुटाते। वह तो यौवन की प्यास बुझाने में बीता जा रहा था। यह यौवन भी पुत्र से उधार लिया था।

''क्या बात है बेटी माधवी? तुम अभी तक तैयार नहीं हुईं। इस प्रकार क्यों लेटी हो? क्या तुम्हें राजाज्ञा नहीं मिली?

''महाराज, इस राजाज्ञा की जगह पुत्री के लिए जहर का प्याला भेजा होता तो उत्तम होता।''

''हम यहाँ बहस करने नहीं राजकुमारी माधवी को लेने आए हैं। राजकार्य महारानी की सहमति से नहीं चलते। माधवी को राजाज्ञा का पालन करना ही होगा। यह खांडवप्रस्थ की प्रतिष्ठा तथा राजकुल की मर्यादा का सवाल है। राजा ययाति के द्वार से कभी कोई याचक खाली हाथ नहीं

गया।''

''तो महाराज मुझे भी दान कर देते'' – महारानी फुफकारीं।

''अवश्य करते। यदि आवश्यकता पड़ेगी तो इसमें भी नहीं हिचकेंगे। लेकिन कौन कार्य किसके द्वारा सिद्ध किया जा सकता है यह देखना राजा का कार्य है। ऋषिकुमार गालव खाली हाथ नहीं जाएगा।''

राजा आदेश देकर चले गए। तत्काल ही राजकुमारी को तैयार कर बाहर प्रकोष्ठ में पहुँचा दिया गया।

''ऋषिकुमार गालव, राजकुमारी माधवी के माध्यम से अपना मनोरथ पूर्ण करें''– महाराज ने संस्तुति दी।

राजकुमारी रथारुढ़ हो ऋषिकुमार के साथ चल पड़ी। असंख्य नागरिकों ने राजपथ के दोनों ओर पंक्तिबद्ध हो अपनी मौन सहानुभूति सजल नेत्रों से राजकुमारी माधवी को अर्पित की।

ऋषिकुमार गालव का प्रथम प्रस्थान अयोध्या की ओर रहा। अयोध्या के राजा हर्यश्व नि:संतान थे और उस समय वे पुत्र प्राप्ति के लिए यज्ञानुष्ठान कर रहे थे। राजा हर्यश्व की अश्वशाला में दो सौ श्याम अश्व थे। यह बात ऋषिकुमार को मालूम थी। सौदागर गालव राजकुमारी माधवी की भाग्य डोर थामे अयोध्या के दरबार में उपस्थित हो गया।

ऋषिकुमार गालव ने राजा हर्यश्व से सौदा किया। पुत्र के बदले दो सौ श्याम अश्व और पुत्र प्राप्ति का माध्यम खांडवप्रस्थ की राजकुमारी माधवी। राजा हर्यश्व को भला क्या आपत्ति हो सकती थी। यज्ञानुष्ठान रोक दिए गए। अनुबंध हुआ और ऋषिकुमार गालव राजा हर्यश्व के अंत:पुर में राजकुमारी को छोड़ कर अन्यत्र चला गया। पहली बार राजकुमारी माधवी राजा हर्यश्व की अंकशायिनी बनी। अपनी नियति पर माधवी खून के आँसू पीकर रह गई।

राजकुमारी राजा हर्यश्व के पास किस प्रकार यह रही है इससे न उसके पिता को मतलब था न ऋषिकुमार को। पूरे मार्ग में उसने राजकुमारी की ओर नजर उठाकर भी नहीं देखा। हाट में बेचे जाने वाले पशु की तरह हांक कर वह राजकुमारी को अयोध्या नगरी में ले आया था। ऋषिकुमार को परिणाम की प्राप्ति तक राजकीय अतिथि वाला में आतिथ्य मिलता रहा। राजकुमारी माधवी राजा हर्यश्व की कामवासना की शिकार होती रही।

कुछ समय बाद राजकुमारी ने एक पुत्र को जन्म दिया। खबर सुनकर ऋषिकुमार गालव आकर उपस्थित हो गया। पूरी राजधानी में दीपमाला का उत्सव मनाया जा रहा था। महाराज हर्यश्व खुशी से रासरंग में तल्लीन थे। उधार सद्ध:प्रसूता एक माँ अपने दुधमुंहे बच्चे को दो सौ अश्वों के नाम लिखकर वापस लौट रही थी। माँ की ममता तड़पती रही। किराए की कोख का सिलसिला शायद यही से शुरू हुआ।

ऋषिकुमार के पास उन सब राजाओं की खबर थी जो पुत्र प्राप्ति के इच्छुक थे और जिनकी अश्वशाला में श्याम अश्व थे। यात्रा का दूसरा चरण काशी में पूरा हुआ। काशी नरेश दिवोदास ने राजकुमारी के रुप लावण्य की प्रशंसा पहले से सुन रखी थी। वह मन ही मन उसे पाने

की योजना बना रहा था। तभी राजकुमारी माधवी उसकी अंक शायिनी बनने के लिए द्वार पर आ गई। इससे अच्छा संयोग और क्या हो सकता था।

राजकुमारी माधवी की तुलना में दो सौ श्याम अश्व क्या मायने रखते।

राजकुमारी अब काशीराज के अन्त:पुर में पहुंचा दी गई। पुन: उसके रुप लावण्य को लूटा जाने लगा। राजकुमारी एक देह मात्र बनकर रह गई। माधवी अपनी नियति के बारे में सोचती तो सोचती रह जाती। एक राजकुमारी पुरुष की हवस का शिकार, बलात्कार झेलती, पिता की आज्ञा पूरी करती एक अवश नारी।

माधवी पुन: गर्भवती हुई। काशी नरेश को पुत्र मिला। सूचना मिलते ही ऋषिकुमार राज दरबार में उपस्थित हो गया। करार के अनुसार दो सौ श्याम अश्व लेकर पुन: खाली बर्तन की तरह गालव द्वारा लुढ़काई जाती हुई राजकुमारी भोजनगर के राजा उशीनर के यहाँ पहुँचा दी गई। माधवी तीसरे राजपुरुष का खिलौना बनी। गालव के उद्देश्य का एक भाग यहाँ पूरा हुआ। फिर एक पुत्र का भाग्य संसार में आने से पहले दो सौ श्याम अश्वों के नाम लिख गया।

एक नारी की कोख तीसरी बार बिकी। तीन पुत्रों के बदले छ: सौ श्याम अश्व गालव के पास हो गये। लेकिन समस्या का हल अभी दूर था। गुरु विश्वामित्र को आठ सौ श्याम अश्व चाहिए थे। जबकि पृथ्वी पर ही कुल छ: सौ अश्व थे। एक पुत्र दो सौ अश्वों के बराबर है। यह गणित ऋषिकुमार भली-भांति समझ चुका था। क्यों न इस बार माधवी को ही गुरु विश्वामित्र को भेंट कर दिया जाए और वे भी एक पुत्र प्राप्त कर दो सौ अश्वों का प्रतिदान दें। गालव को विचार जंचा।

गालव छ: सौ श्याम अश्वों के साथ गुरु के आश्रम में जा रहा है। ''राजकुमारी माधवी थोड़ा और कष्ट करें। यहाँ से एक कोस दूर नदी के किनारे काफी चारागाह हैं। वहीं चलकर विश्राम करें। सूर्योदय के साथ ही प्रस्थान करेंगे तो सूरज चढ़ते-चढ़ते गुरु के आश्रम तक जरुर पहुँच जाएंगे।''

ऋषिकुमार गालव का संवाद सुनकर माधवी की तंद्रा टूटी। धीरे से आँखों से हाथ हटाया। एक नजर गालव की ओर देखते हुए मन-ही-मन में सोचा-क्यों न इस गालव का वध कर अपनी नियति से छुटकारा पा लूं। मेरा दुर्भाग्य यही व्यक्ति हैं। लेकिन मन के भाव दबाकर माधवी उठ गई और गालव का अनुकरण करने लगी। ऐसी भावनाएं जाने कितनी बार उठीं, परन्तु हर बार पिता ययाति का चेहरा सामने आ गया।

ऋषि विश्वामित्र का तपोवन, तपोव्रत धारी अध्ययन रत पीत वसन धारी शिष्य, होम की सुगन्धित धूम्र, चारों तरफ फैली हरियाली, तपोवन के समीप कल-कल बहता निर्मल जल, जल में तैरती बत्तखें, बड़ा ही मनोरम व शांति पूर्ण स्थल-सब एक ही नजर में देख गई माधवी। लेकिन इस शांति को भंग करते छ: सौ अश्वों की पगध्वनि तथा पगध्वनि से उठती धूल से धूसरित होता तपोवन, जैसे तपोवन को विजित करने कोई योद्धा आया हो।

राजकुमारी माधवी और अश्वों के साथ गालव ऋषिवर के पास पहुँचा।

''गुरुवर, इस पृथ्वी पर मात्र छः सौ ही श्याम अश्व हैं। गुरु दक्षिणा के ये अश्व मैंने राजकुमारी माधवी के माध्यम से पर्याप्त किए हैं।''

''अश्व की प्राप्ति में राजकुमारी माधवी को माध्यम बनना पड़ा, मैं समझा नहीं वत्स।''

''सुनें गुरु वर, नि:संतान राजाओं ने माधवी के माध्यम से पुत्र पर्याप्त किए और पुत्र के मूल्य स्वरुप मैंने छः सौ अश्व। आप भी गुरु वर माधवी से पुत्र प्राप्त कर तथा दो सौ अश्वों के बराबर उसका मूल्य मानकर मेरी गुरु दक्षिणा स्वीकार करें।''

विश्वामित्र ने माधवी को देखा। रुपसी को देखकर उनकी आँखों में चमक आ गई। वे मुस्करा उठे। ''वत्स, यदि तुम इस रुपसी को लेकर पहले ही मेरे पास आ गये होते तो तुम्हें इतना भटकना नहीं पड़ता। यह रुपसी आठ सौ श्याम अश्वों से कहीं अधिक मूल्यवान है। तुम ऋणमुक्त हुए वत्स। जाओ।''

गुरु विश्वामित्र ने हाथ अभय की मुद्रा में उठा दिए। गालव ने भक्ति भाव से प्रणाम किया और चला गया।

माधवी को विश्वामित्र की प्रिया बनकर रहते दो वर्ष निकल गये। एक पुत्र भी है। लेकिन अतीत का स्मरण कर आहें भर उठती है। गुरु के उस घिनौने रुप से घृणा है। गुरु के सम्मुख वह महज एक वस्तु है, लेकिन वह वचनबद्ध है।

तभी एक दिन गालव को आश्रम में प्रवेश करते देख चौंक पड़ी।

''देवी, मेरे उद्देश्य की पूर्ति हुई। आपको आपके पिता के पास पहुँचा दूं''- ऋषिकुमार ने कहा।

''हाँ ऋषिकुमार, तुम्हारा उद्देश्य पूरा हुआ और मैं भी पिताज्ञा वह राजाज्ञा से मुक्त हुई। निरुद्देश्य जीवन व्यर्थ होता है। तुम्हारा जीवन भी अब निरुद्देश्य हो गया है। नारी अस्मत के सौदागर के जीवन का क्या मूल्य?

और माधवी ने पूरी ताकत से अपने वस्त्रों में छिपाई कटार गालव की छाती में भोंक दी। जब तक आश्रमवासी दौड़कर माधवी को पकड़ते उसी कटार से माधवी ने अपनी जीवन लीला भी समाप्त कर ली.....

सुधा गोयल, 290—ए, कृष्णा नगर, डॉ. दत्ता लेन, बुलंद शहर—203001
मो. : 9917869962, ई—मेल : sudhagoyal0404@gmail.com

✧ ✧ ✧

स्त्री जीवन का आख्यान रचती कविता : स्त्री और समुद्र

डॉ. सत्यप्रिय पांडेय

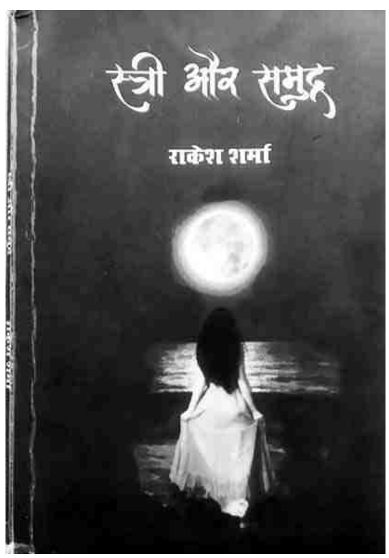

पुस्तक का नाम : स्त्री और समुद्र (काव्य–संग्रह)
रचनाकार : राकेश शर्मा
प्रकाशक : नीरज बुक सेंटर, आई.पी. एक्सटेंशन, दिल्ली–110092

वर्ष 2018 में प्रकाशित 'स्त्री और समुद्र' राकेश शर्मा जी का काव्य संग्रह है। संग्रह की कविताएँ अपने समय और समाज की न केवल गंभीर पड़ताल करती नजर आती हैं बल्कि पाठक को पुनर्विचार के लिए प्रेरित भी करती हैं। जैसा कि संग्रह का शीर्षक ही है 'स्त्री और समुद्र'; लिहाजा संग्रह की प्रतिनिधि कविताएँ स्त्री को केंद्र में रखकर लिखी गयी हैं और स्त्री जीवन का गंभीर आख्यान प्रस्तुत करती हैं। कविताओं के आख्यान शिल्प ग्रहण करने के सन्दर्भ में कवि ने पुस्तक की भूमिका में लिखा है कि– 'आलोचनात्मक आलेख लिखते और व्याख्यान देते रहने के कारण निबंधात्मक शैली मानस में घर करती चली गई। कविता लिखने का मन होता है तो यह पृष्ठभूमि कविताओं में अनायास प्रवेश कर जाती है।' बहरहाल ये कविताएँ स्त्री जीवन का बड़ा ही मार्मिक उद्‌घाटन करती दिखाई पड़ती हैं। उसकी विवशता, उसके अकेलेपन और उसकी शक्ति का वर्णन करती कविताएँ स्त्री की छवि को उसकी सम्पूर्णता में उकेर देती हैं। मसलन 'अकेली स्त्री' कविता की यह पंक्ति देखें– पता नहीं धबीते कितने युग पर, स्त्री के लिए नहीं गुजरा समय/वहाँ हमेशा/आशंकाओं से भरा हुआ रहा है केवल वर्तमान।' कवि का मानना है कि स्त्री के जीवन में मानों कलियुग स्थायी रूप से ठहर गया हो– 'और सच तो यही है / कि स्त्री के जीवन में / केवल ठहरा है कलियुग / स्थायी भाव की तरह / हमेशा–हमेशा के लिए।' स्त्री जीवन की व्यथा - कथा को उघाड़ती संग्रह की कविताएँ कुछ बड़े सवाल खड़े करती हैं। भारतीय समाज में पुत्री के जन्म लेने पर उत्सव नहीं मनाया जाता है जबकि पुत्र जन्म के अवसर पर सोहर गीत गवाये जाते हैं। क्यों यह समाज पुत्री के जन्म पर उत्सव नहीं मनाता, वह इतनी उपेक्षित क्यों रही है? इसी सवाल को कवि तुलसीदास के हवाले से पूछता हुआ लिखता है कि– ठुमक चलत रामचंद्र / बाजे पैजनियाँ / तो ठीक है / पर तुलसीदास / यह बतलाओ / सीता के ठुमकने से बजी पैंजनियाँ / आप को सुनाई क्यों नहीं पड़ीं।' यही प्रश्न कवि सूरदास से भी पूछता है कि आपको राधा की पैजनी क्यों नहीं

सुनाई पड़ी? इस कविता की प्रश्नांकित मुद्रा से नागार्जुन की उस कविता की स्मृति ताजा हो उठती है जिसमें वे कहते हैं- कालिदास सच सच बतलाना / अज रोया था या तुम रोए थे। संग्रह की प्रतिनिधि कविता 'स्त्री और समुद्र' में कवि ने पुरुष को समुद्र तथा स्त्री को नदी कहा है। उसका मानना है कि जैसे समुद्र नदियों को अपने भीतर समेटकर उसके अस्तित्त्व को विलीन कर देता वैसे ही पुरुष स्त्री की पहचान को पुरुषत्व के भीतर समेट लेता है, उसे पहचान विहीन कर देता है, वैसे ही जैसे समुद्र नदी को, कविता की पंक्ति देखें- तुम करते हो गर्जना / तुमसे मिलने वाली हर नदी / स्त्रीत्व भाव से / आती है तुम्हारे आगोश में / अपना सर्वस्व / अर्पित कर तुम्हें / फिर नहीं लौटी है दुबारा / जैसे पुरुष के भुजपाशों में आबद्ध स्त्री / नहीं लौट पाती दुबारा कुआँरी नदी की भांति।' यही नहीं, संग्रह की कविताएँ स्त्री विमर्श की सीमाओं को भी रेखांकित करती हैं और उसकी कलई भी खोल देती हैं। विमर्श को कवि ने मछली को फँसाने वाले जाल की तरह कहा है, जिससे सावधान रहने की जरूरत है, पंक्ति देखें- यह एक बंसी भी है / जिसके काँटे में लगा है / स्त्री विमर्श का केंचुआ/यह काँटा फँसता है- कंठ में / और बाजार में तुम्हारी देह होती है नीलाम।' संग्रह की विशेषता इस अर्थ में भी है कि इसकी कविताओं में मिथकों का बहुत ही सार्थक एवं सजग उपयोग हुआ है, कविता की पंक्ति देखें- समानता के ये सारे नारे / लाक्षागृह का षड्यंत्र / और धर्मराजों के खेल का नया अवतार है।' संग्रह की कविताएँ अपने समय और समाज की हलचलों, उसकी आहटों और उसके परिवर्तनों पर गंभीर विमर्श प्रस्तुत करती हैं मसलन आज चारों तरफ अर्थ की प्रबलता ही दिखाई पड़ती है। सत्ता भी अर्थ के चंगुल में कैद है। धर्मवीर भारती ने भी इस संकट को पहचानते हुए अपने अंधायुग में लिखा था कि- सत्ता उनकी होगी जिनकी पूँजी होगी / केवल उन्हें महत्व मिलेगा / जिनके चेहरे नकली होंगे।' इसी विडंबना को दिखाते हुए इस संग्रह के कवि राकेश शर्मा लिखते हैं कि आज बाजार में खरीदार की स्थिति चक्रव्यूह में घिरे अभिमन्यु की तरह है जिसे घेरकर मारा जा रहा है और वह केवल उपभोक्ता मात्र रह गया है। कभी ऐसा भी दौर था कि किसी शायर ने बाजार को चुनौती देते हुए कहा था कि- 'दुनिया में हूँ दुनिया का तलबगार नहीं हूँ, बाजार से गुजरा हूँ खरीदार नहीं हूँ।' लेकिन आज के मनुष्य की विवशता को रेखांकित करते हुए कवि लिखता है कि - इसके चक्रव्यूह में फँसा आज का आदमी / अभिमन्यु की तरह / घेरकर मारा जा रहा है / रोज-रोज / अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष / अब सब हैं / इसकी चाकरी में।' इस तरह से यह कविता वर्तमान दौर के बाजारवाद और उसकी उद्दाम शक्ति को निरावृत कर देती है साथ ही यह भी कि अब इसके चंगुल से बच पाना असंभव है। संग्रह की कुछ कविताएँ कविता की रचना, उसकी भाषा शक्ति और कवि की शक्ति, उसकी सर्जना पर बड़ा ही गंभीर विमर्श प्रस्तुत करती हैं मसलन 'कवि और कुम्हार' कविता कवि की सर्जना शक्ति को उद्घाटित करती है। वह कुम्हार की तरह रचता है। जैसे कुम्हार का दीपक अपने प्रकाश से आलोक विखेरता है वैसे ही कवि अपनी रचना से विचार का आलोक विखेरता है- जबकि कवि का कुम्हार / गढ़ता है विचार / लगा कर अवां / पकाता है बर्तन कुम्हार / बनकर स्वयं अवां। संग्रह की कविताएँ परिधि को केंद्र में लाने की माँग करती हैं। तथाकथित सभ्य समाज ने जिन्हें बहिष्कृत कर दिया है चाहे वह वेश्याएँ हों, किन्नर हों इन्हें मनुष्यवत समझा जाय, इन्हें सम्मान दिया जाय। आधुनिकता, सपनों की मंडी, संभ्रान्त लोग, विकास जैसी कविताएँ आज के नगरीकरण, विकासवाद और मनुष्यता के छद्म आवरण को बखूबी उजागर कर देती हैं और सावधान करती हैं कि इनके झाँसे में पड़ना बड़ी भारी भूल होगी, इससे सावधान रहने की जरूरत है साथ ही उजड़ते हुए गाँवों की व्यथा को भी कवि ने 'स्मृतिशेष गाँव' कविता में रेखांकित कर दिया जिसे शहरीकरण के नाम पर नष्ट कर दिया गया। वह उजड़ा गाँव कवि से सवाल करता है कि- पूछता है प्रश्न / हम से / लाश मेरी / पर पाँव रख / चढ़े विकास के सोपान कितने / मार कर / अस्तित्व मेरा / पढ़ लिए / मनुजता के / पाठ कितने।' इस तरह से प्रस्तुत संग्रह की कविताएँ अपने समय और समाज का गंभीर विमर्श प्रस्तुत करती नजर आती हैं और साथ ही पाठक को सोचने और विचारने के लिए विवश भी करती हैं, इस रूप में संग्रह की सार्थकता विचारणीय है।

डॉ. सत्यप्रिय पांडेय, लोकसाहित्य विमर्शकार, 13/258, भूतल, वसुंधरा, गाजियाबाद, उ. प्र.
मो. : 8750483224

23 अगस्त 1945 को केउर, जिला जहानाबाद, बिहार में जन्में राष्ट्रीय ख्याति के गीतकार नचिकेता ने गीत विद्या को अपने तेज और तेवर से नई दिशा देने का काम किया है। गीत विद्या में सृजन और समीक्षा दोनों ही स्तरों पर इनकी अद्वितीय प्रतिभा से कोई भी प्रभावित हुए बगैर नहीं रह सकता। गीत के प्रति नचिकेता का समर्पण उदाहरण योग्य है।

इनकी दर्जनाधिक मौलिक कृतियों में आदमकद खबरें, सुलगते पसीने, पसीने के रिश्ते, सिक्खेंगे इतिहास, बाईस्कोप का गीत, सोये पलाश दह केंगे, नचिकेता के भजन, रंग मैले नहीं होगे, कोई क्षमा नहीं, मकर चाँदनी का उजास, तासा बज रहा है, पर्दा अभी उठेगा, रंग न खोने दें, जेठ में मधुमास, रेत में खोई नदी, तुम मुझमें हो, तथा अईना दरका हुआ आदि प्रमुख है।

'गीत वसुधा' नचिकेता के संपादन में प्रकाशित एक उल्लेखनीय संकलन है। इसमें गीतों के अलावा 65 पृष्ठों में नचिकेता का संपादकीय पठनीय-संग्रहणीय है।

'गीत रचना की नयी जमीन' इनकी आलोचनात्मक कृति है।

प्रसिद्ध गीतकार नचिकेता से रामयतन प्रसाद की लम्बी बातचीत

रामयतन प्रसाद

रामयतन- नचिकेता जी, आपने गीत-नवगीत एवं गजल सबको साधा है, इसलिए मैं बातचीत का आरंभ इस प्रश्न से कर रहा हूँ कि गीत क्या है?

नचिकेता- रामयतन जी यदि पारिभाषिक तौर पर कहूँ तो मानव-जीवन की सबसे घनी भूत अनुभूतियों के सम्पूर्ण निचोड़ की सर्वाधिक सहज, स्वाभाविक, सघन लोकप्रिय और संगीतात्मक अभिव्यक्ति ही गीत है। यह मानवीय संवेदना का अर्थ-संपृक्त अंत: संगीत है। गीत की रचना साहित्य-साधना की चरम अवस्था में होती है क्योंकि गीत में अर्थ संहति के साथ-साथ लय छंद, तुक और और संगीत की द्वंद्वात्मक अन्विति होती है।

रामयतन- तो क्या यह नितांत निजी आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति है?

नचिकेता- बिल्कुल नहीं, गीत में अंतर्निहित आत्मपरकता का अंत: स्वर सामूहिक सामाजिक और मानवीय होता है तथा गीत के केंद्र में अवस्थित 'मैं भी' हम का ही प्रतिनिधित्व करता है, क्योंकि गीत में सामाजिक अनुभव भी वैयक्तिक अनुभव के सांचे में ढलकर व्यक्त होता है। एक अच्छा गीत जितना अधिक रागात्मक, संगीतात्मक और आत्मपरक होता है, अपनी आंतरिक संरचना और प्रभाव की दृष्टि से वह उतना अधिक काव्यात्मक, सामाजिक और वस्तुपरक होता है।

रामयतन :- तात्पर्य यह कि गीत तत्वत: सामाजिक होता है?

नचिकेता :- जी हाँ इसमें समग्रता का बोध होता है और इसके विशिष्ट रूपाकार में असीम व्यंजना होती है। इसमें वस्तु से चेतना का और व्यक्ति से समाज का ऐतिहासिक संबंध व्यक्त होता है तथा इसकी विचारधारा इसकी मूल्य-चेतना में अंतनिर्हित होती है। इन्हीं कारणों से गीत की व्याप्ति अतिबौद्धिक मानव-समुदाय और निरा साहित्यिक परिदृश्य की अपेक्षा व्यापक जन-मन के ज्यादा करीब होता है। अन्र्स्ट फिशर का कथन ध्यातव्य है कि 'किसी कलाकार की आत्मपरकता का कारण यह नहीं होता कि उसका अनुभव उसके काल या वर्ग के अन्य लोगों के अनुभव में मूलत: भिन्न है, बल्कि उसके अनुभव का काल या वर्ग के अन्य लोगों के अनुभव से अधिक तीव्र, अधिक सचेत, अधिक संकेन्द्रित होना ही उसकी आत्मपरकता का कारण है।

रामयतन :- गीत की रचना-प्रविधि की जरूरी शर्तें क्या हैं?

नचिकेता :- गीत की रचना वस्तुत: मोंताज शिल्प में होती हैं जिसमें एक ही अनुभूति या भाव को एक विशेष सिक्वेंस के अलग-अलग परिपेक्ष्य में रखकर उसका अर्थ-विस्तार किया जाता है यानि गीत की रचना अर्थ की दृष्टि से कई स्वायत और संपूर्ण ईकाइयों (बंदो) में होती है और ये इकाइयाँ एक निश्चित रूपाकार और लय-छंद से एक विशेष सिक्वेंस में निबद्ध होती है। गीत के रूपाकार की रचना सांगीतिक तत्वों के आधार पर ही होती है।

रामयतन :- गीत के प्रमुख अंग क्या है?

नचिकेता :- गीत के तीन प्रमुख अंग होते हैं-टेक, अंतरा और बंद। गीत की पहली पंक्ति या मुखड़े की स्थिति संगीत के स्थाई राग की भाँति होती है जो गीत की संरचना (लय और छंद) को अनुशासित करती है, उन्हें उच्छृंखल होने से बचाती है, इसे टेक कहते हैं। संरचना के धरातल पर गीत की एक ही अनुभूति या भाव को जिन अलग-अलग परिस्थितियों में रखकर उसका अर्थ-विस्फोट किया जाता है, वह अर्थ निष्पति की दृष्टि से एक पूर्ण इकाई होता है जिसे बंद कहा जाता है, और हर बंद के अंत में टेक की या टेक के समान वनज और अंत्यानुप्रास वाली पंक्तियों की आवृति होती है।

रामयतन :- क्या एक ही बंद में पूरी अनुभूति की अभिव्यक्ति संभव है?

नचिकेता :- कुछ गीत में एक ही बंद में पूरी अनुभूति की अभिव्यक्ति समग्र रूप से पूरी हो जाती है, परन्तु अधिकांश गीतों में जिसकी भाव श्रृंखला थोड़ी लंबी होती है, उनमें बंदो की संख्या एक

से अधिक होती है

रामयतन :- अंतरा को थोड़ा और स्पष्ट करें।

नचिकेता :- गीत रचना में दो टेकों के बीच की तमाम पंक्तियों को अंतरा कहते हैं तथा एक अंतरा और टेक के संयोग से बंद की रचना होती है।

रामयतन :- एक आदर्श गीत रचना में कितने बंद होने चाहिए?

नचिकेता :- आदर्श गीत रचना में दो, तीन या चार बंद होते हैं। गायन प्रक्रिया में दो या तीन बंदो वाले गीत अधिक कारगर और पुरअसर साबित होते हैं।

रामयतन :- गीत से संगीत कितना जुड़ा हुआ हैं?

नचिकेता :- गीत और संगीत में अन्योन्याश्रय संबंध होता है। पारंपरिक परिभाषा के अनुसार ''गीत, वाद्यं च नृत्यंच त्रयं संगीतमुच्यतों'' संगीत के हिसाब से टेक, अंतरा और बंद गीत के तीन प्रमुख अवयव हैं। गीत में प्रयुक्त है ये अवयव वस्तुतः संगीत की ही इकाई (शब्द) हैं, जो गीत और संगीत के परस्पर अंतरावलंबन के तहत गीत की संरचना के भी अनिवार्य तत्व बने हुए हैं। संगीत का माध्यम नाद है और नाद से ही उसकी सृष्टि होती है तथा राग उसका प्रतिफल है। संगीत में श्रुतियों का आधारभूत महत्व है, क्योंकि श्रुति से ही स्वर, स्वरों से ग्राम, ग्राम से मूर्च्छना, मूर्च्छना से जाति और जाति से रागों की उत्पत्ति होती है तथा राग संगीत की आत्मा होते हैं।

रामयतन :- आजकल की कविता में गेयता की उपेक्षा के बारे में आप क्या कहना चाहेंगे?

नचिकेता :- आजकल कविता के लिए लय, छंद और टेक की आवश्यकता नहीं रह गयी है, इन्हें कविता की भावाभिव्यक्ति के मार्ग में रूकावट मान लिया गया है और दावा किया जाता है कि मानव-मुक्ति की तरह कविता को लय-छंदो के बंधन से मुक्त होना चाहिए। जबकि हिंदी कविता में मुक्त छंद के पहले हिमायती निराला ने कवियों को आगाह किया था कि मुक्त छंद की कविता वही लिख सकता है जिसने छंदो पर सिद्धि पा ली है। छंद हमारी सांस्कृतिक धरोहर हैं, ये गीत पर पड़ने वाले यथार्थ के बोझ और दबाब को हल्का करते हैं, उसे ठोस होने से बचाते हैं एवं उसकी रैखिक गति को चक्रीयता प्रदान करते हैं। वर्ड्सवर्थ की दृष्टि से छंद की प्रवृति होती है भाषा को एक हद तक इसके यथार्थ के बोझ से रिक्त करने एवं इस तरह समूची रचना के असार अस्तित्व की एक तरह की अर्थ चेतना मंडित करने की। क्रिस्टोफर कॉडवेल मानते हैं कि छंद कविता के अवधान को उदीप करता है... पर किसी भी तरह के अवधान को नहीं बल्कि एक खास तरह के अवधान को स्वयं शब्दों के रागात्मक साहचर्यों के अवधान को ही उदीप करता है।

रामयतन :- अच्छा, इस गीत विधा के वर्गीकरण का क्या आधार है या हो सकता है?

नचिकेता :- विषय-वस्तु के आधार पर गीत के तीन भागों में बाँटा जा सकता है। गीत रचना के आरंभिक भाग में भाव या अनुभूति का परिचय होता है और अंतिम भाग में रचनात्मक उद्धेश्य या निष्कर्ष की अभिव्यक्ति होती है एवं मध्य में अवस्थित बंदों में उदीप्त भाव स्थिति का विवरण होता है, इसलिए बीच के बंदो की संख्या भाव-श्रृंखला की लम्बाई पर निर्भर होती है। गीत के इस

प्रथम अंश में प्रेरक परिस्थिति, विचार, स्मृति, प्राकृतिक दृश्य के संकेत आदि के द्वारा कवि एक कुतूहल-सा जगा देता है। गीत के दूसरे अंश में उदीप भाव विकसित होता है, जबकि बोधवृति और तर्क की सहायता से भाव की तीव्रता को आवश्यकतानुसार अत्यधिक समृद्धि दी जाती है। अंतिम अंश में या चरम सीमा पर पहुँचकर जीत का भाव किसी स्थिर विचार, मानसिक दृष्टिकोण अथवा संकल्प के रूप मे परिवर्तित होकर मन की सामान्य स्थिति में विलीन हो जाता है।

रामयतन :- गीत का लोक-जीवन से कितना लगाव रहा है?

नचिकेता :- गीत का तो अंतरंग ही लोक-जीवन, लोक-संगीत लोक-शक्ति है। गीत तो हर हाल में व्यापक जन-समुदाय या लोक-जीवन से अपना घनिष्ठ रिश्ता कायम करता है, वहीं रचता-बसता और रमता है और उन्हीं की स्मृतियों में रच-बस कर अपना रचनात्मक उद्धेश्य पूरा करता है। आज जब समकालीन कविता के पास गाँव किसान, मजदूर और लोक-जीवन के लिए स्पेश बिलकुल नहीं है, तब भी गीत अपनी अंत: प्रकृति और लय, छंद एवं तुक से जुड़ा होने के कारण अपनी जड़ो यानि देशज संस्कृति और लोक-मानस से काफी हद तक संबद्ध है।

रामयतन :- अच्छा ये बताएं कि अमीर खुसरो ने जिस गीत-परंपरा की शुरूआत की वह आज किस स्थिति में है?

नचिकेता :- अमीर खुसरो स्वभावत: गीतकार नहीं थे, हाँ, उन्होंने कुछ गीत लिखे जरूर हैं जिनमें लोकाश्रित सामाजिक चेतना की संवेदनशील अभिव्यक्ति हुई है। लेकिन गीत की विकास-यात्रा का कोई पड़ाव अमीर खुसरो नहीं रहे हैं। इसलिए हिंदी गीत की विकास-परंपरा का आरंभ अमीर-खुसरो से नहीं, वरन् विद्यापति से माना जाना लाजमी होगा।

रामयतन :- इस संबंध में नामवर सिंह ने भी तो स्वीकारा है कि यदि विद्यापति को हिंदी का पहला कवि माना जाय तो हिंदी कविता का उदय ही गीत से हुआ है जिसका विकास आगे चलकर संतों और भक्तों की वाणी में हुआ।

नचिकेता :- बिल्कुल, यह तो सर्वविदित है कि जैसे-जैसे किसी समाज की सामाजिक चेतना और सामाजिक यथार्थ में बदलाव आता है वैसे-वैसे साहित्यिक अभिव्यक्ति के तरीकों में भी परिवर्तन आता जाता है। साहित्यिक परिवर्तन रूप और वस्तु दोनों धरातल पर होते हैं। सामाजिक चेतना अपनी अभिव्यक्ति के लिए युगानुरूप लय, छंद, भाषा और रूप का चुनाव करती है।

रामयतन :- तो क्या हिंदी गीत के विकास की जो प्रक्रिया आरंभ हुई विद्यापति से क्या वही अब तक जारी है?

नचिकेता :- नहीं, हिंदी गीत के विकास का दूसरा उन्मेष बीसवीं शताब्दी के रोमांटिक उत्थान के साथ राष्ट्रीय मुक्ति-संघर्ष के दौरान राष्ट्र गीतों के रूप में हुआ। भक्ति-गीतों से भिन्न इस रोमैंटिक गीतधारा में एक नये व्यक्तिवाद का उदय हुआ, जहाँ समाज के बहिष्कार के द्वारा अपनी सामाजिकता प्रमाणित की गयी। रोमैंटिक युग और छायावादी दौर के गीतों में अपनी असामाजिक प्रतीत होने वाली भाव-चेतना के माध्यम से अपनी सामाजिक चेतना को अधिक गहराई से अभिव्यक्ति दी गयी। उनकी असामाजिकता में ही उनकी सच्ची सामाजिकता अंतर्निहित थी।

उत्तरछायावाद के दौर में छायावादी व्यक्तिवाद नितांत वैयक्तिक और आत्मपरक हो गया जिसकी परिणति के रूप में संपूर्ण गीत को ही नितांत निजी आत्माभिव्यक्ति का माध्यम मानकर बिल्कुल सीमित कर दिया गया।

रामयतन :- हम गीत के साथ नवगीत की बात करें तो क्या गीत का ही विकसित स्वरूप नवगीत है? यदि ऐसा नहीं तो संरचना की दृष्टि से इनमें क्या अंतर है?

नचिकेता :- नवगीत, वस्तुत: गीत का ही समय सापेक्ष, युगसापेक्ष और समाज सापेक्ष विकसित रूप या रचना-प्रवृत्ति है। जिन रचनाओं में गीतात्मक संवेदना को गीत के रूपाकार भाषा-शिल्प और संगीतात्मक गेयता के अंतर्गत रचना होती है, वे सभी रचनाएँ गीत ही कही जायेंगी। गीत के सभी प्रकार, चाहे वे नवगीत हों, जनगीत हों, समूहगीत हों, या लोकगीत हों, सब प्रथमत: गीत ही होते हैं और भिन्नता उनकी काल सापेक्ष वैचारिक और प्रभावी अंतर्वस्तुओं में निहित होती है। आधुनिकतावादी-अस्तित्वादी जीवन-दृष्टि को अभिव्यक्त करनेवाले गीत-नवगीत कहलाते हैं। इन गीतों में मध्यवर्गीय जन-जीवन में व्याप्त निराशा, कुंठा, संत्रास, ऊब, घुटन, अजनबीपन, महानगरीय यांत्रिकता, संबंध विघटन, अस्तित्व-संकट, मृत्युबोध आदि नकारात्मक मूल्यों को वास्तविक जीवन मूल्य और उसे अपनी अनिवार्य नियति मानकर यथास्थितिवाद, मध्यवर्गीय ढुलमुलपन और गहन निराशाबोध का अमानवीय संसार रचा जाता है। प्रयोगवाद नव्यता और कलावादी रूप-रचना नवगीत-रचना की प्राथमिक और कलात्मक शर्त मानी जाती है।

रामयतन :- तो फिर गीति और गीत में क्या फर्क है?

नचिकेता :- हिंदी में गीत के लिए मोटे तौर पर गीत, गीति, और प्रगीत जैसे तीन शब्दों का प्रयोग किया जाता है तथा तीनों को एक दूसरे का पर्याय मान लिया जाता है, लेकिन ऐसा है नहीं। वैदिक काल में गीत को गीत, गातु, गिर, गिरा, गान आदि नामों से जाना जाता था-'गीर्भि वरूण सीमहि श्रृग्वेद 'गीतुषुसामाख्या' (जैमिनी सूत्र) 'गीतं जानानिमे समे' (अमरकेश)। हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार गीति पश्चिम से आया हुआ विधान या लिरिक का भावानुवाद है और अँग्रेजी में लिरिक लीरा (बाँसुरीनुमा एक वाद्ययंत्र) की सहायता से गायी जाने वाली गेय कविता बने कहते हैं, इसे हिंदी में प्रगीत भी कहा जाता है।

रामयतन :- गीत का मूल स्वभाव क्या है?

नचिकेता :- गीति, वास्तव में नितांत आत्मपरक, व्यक्तिनिष्ठ, रागात्मक अत्यधिक भावप्रवण और कल्पनाशील गीत के लिए व्यवहार में आने वाला प्रत्यय है। साहित्यकोश के अनुसार अबाध कल्पना असीम भावुकता, विशुद्ध भावात्मकता, कर्म-कोलाहल की चिंता, मुक्त विचारधारा अथवा निष्कर्षोपलब्धि के भाव से मुक्त भावधारा गीति के प्रकृत विषय हैं।

रामयतन :- तो मैं समझता हूँ कि इसके विपरीत गीत में अपने समय और समाज के अंतर्विरोधों, समस्याओं और संघर्षों को सार्थक अभिव्यक्ति मिलती है।

नचिकेता :- बिल्कुल सही गीत में अंतर्निहित आत्मपरकता में गहन मानवीयता की आवाज सुना जाता है। गीति सामवेद में वर्णित आम्यगीत, अरण्यगीत, ऊह गीत और ऊहा गीत में केवल ऊहा

गीत को ही गीति का लगभग समकक्ष माना जा सकता है। जाहिर है कि गीत और गीति एक-दूसरे का पर्याय नहीं है।

रामयतन :- फिर अमरकोश में भी तो गीत के लक्षण बताए गये हैं।

नचिकेता :- सही याद दिलाया आपने 'सुस्वरं सरसं, चैव सरागं मधुराक्षरम/सालंकारं प्रमाणं च षडविधं गीतलक्षणम्' में गीत रचना के जो छः लक्षण बताये गये हैं, वे संपूर्ण गीतरचना के लक्षण नहीं हैं, वरन् सिर्फ गीति के लक्षण हैं।

रामयतन :- कहा जाता है कि गीत में गेयता का गुण होने के कारण उसमें निहित विचार गौण हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि संगीतात्मक लय की धारा में विचार बह जाते हैं। क्या आप इस बारे में कुछ कहना चाहेंगे?

नचिकेता :- रामयतन जी, गीत और गीति को एक-दूसरे का पर्याय मान लेने से ऐसा विभ्रम उत्पन्न होगा ही। सिर्फ गेयता के कारण कोई रचना विचार विमुख हरगिज नहीं हो सकती। अगर संगीतात्मक गेयता के कारण किसी साहित्यिक रचना से विचारतत्व गौण या लुप्त हो जाते हैं तो यह भी तो है कि अपनी संगीतात्मक गेयता की वजह से ही हजारों वर्षों तक जनता की स्मृतियों में सुरक्षित रहने वाले वेद, उपनिषद्, अरण्यक, कई महाकाव्य, कथात्मक लोकगीत आदि विचारहीन रचना साबित हो जायेंगे। इसी प्रकार भक्तिकाल के सभी कवियों-सूर, तुलसी, कबीर, मीराबाई आदि की रचनाओं से गेय होने के कारण विचार गौण हो गये मान लिए जायेंगे।

रामयतन :- तात्पर्य यह कि

नचिकेता :- गेयता को मैं विचाराभिव्यक्ति के मार्ग में बाधा नहीं मानता।

रामयतन :- कतिपय गीतकार नयी कविता या फिर समकालीन कविता को गीत विरोधी मानते हैं। क्या ऐसा है?

नचिकेता :- गीत और कविता एक-दूसरे के परस्पर विरोधी हरगिज नहीं हैं, बल्कि एक-दूसरे के पूरक हैं। भारतीय साहित्य के इतिहास पर अगर गौर करें तो स्पष्ट पता चल जायेगा कि आरंभ से लेकर प्रगतिशील दौर तक गीत और कविता एक-दूसरे के विरोधी नहीं थे, अपितु गीत और आज की कविता को जिस अर्थ में लिया जाता है उसके समन्वित रूप को ही कविता माना जाता था।

रामयतन :- शायद नई कविता के दौर में गीत को नकारा गया।

नचिकेता :- जी हाँ, नयी कविता के दौर में ही आधुनिकतावादी लघुमानवों, अज्ञेय और उनके तमाम चेले-चाटियों के द्वारा गीत को कविता मानने से इन्कार कर दिया गया क्योंकि गीत का वास व्यापक जन-मन में था और अपनी बौद्धिक दुरूहता तथा गद्यात्मक संरचना की वजह से नई कविता व्यापक जन-मन की विस्तृत दुनिया से लगातार विस्थापित होती जा रही थी। अपनी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा के लिए इन लघुमानवों को गीत का विरोध करना अस्वाभाविक नहीं था।

रामयतन :- गीत के संबंध में एक विचार यह भी है कि इस विद्या के जरिये जीवन के सिर्फ कोमल भावों को ही सहेजना संभव होता है। समय विद्रूपताओं से इसकी कोमल संरचना के कोमल तंतुओं के टूटने का डर बना रहता है। कहने का मतलब यह कि गीतकार सिर्फ काल्पनिक अनुभूति से ग्रस्त होता है।

नचिकेता :- इस संदर्भ में पहली बात तो मैं यही कहना चाहूँगा कि अनुभूतियाँ कभी काल्पनिक और स्थायी या स्थिर हो ही नहीं सकती, क्योंकि अनुभूति एक रचनात्मक क्रिया होती है। अपने जीवन और परिस्थितियों के बदलने के क्रम में हमारी अनुभूतियाँ भी बदलती चलती हैं। उनमें नवीनता आती-जाती है।

रामयतन :- लेकिन बातचीत के क्रम में अपने काल्पनिक भाव-चेतना की बात है।

नचिकेता :- हाँ, लेकिन एक बार फिर दुहरा दूँ कि काल्पनिक भाव चेतना, नकली आत्मानुभूति, नितांत कोमल मनोभाव और व्यक्तिनिष्ठ आत्मपरकता गीति-रचना के बुनियादी तत्व हैं, गीत के नहीं।

रामयतन :- गीत को महज मनोरंजन करनेवाली एवं विनोदप्रिय काव्यविद्या के दायरे में रखना उचित है?

नचिकेता :- गीत को महज मनोरंजन करनेवाली या विनोद प्रियता का अलंबरदार कभी नहीं कहा जा सकता। गीत का उदय ही आदिम वर्गविहीन समाज-व्यवस्था में सामूहिक श्रम-प्रक्रिया के दौरान सामूहिक संवेग को कोख से सामूहिक श्रम-शक्ति को संघटित और गतिशील करने के निमित समूह गीत के रूप में हुआ है। उस काल में गीत-रचना का एक मात्र अभीष्ट श्रम-प्रक्रिया में श्रम-शक्ति के ह्रास से उत्पन्न तनाव या थकान का परिहार करने और सामूहिक श्रम-शक्ति को संगठित करके श्रम करने की नयी ऊर्जा पैदा करने तथा श्रम शक्ति को अधिक क्रियाशील करने में संनिहित था।

रामयतन :- कहीं मैंने पढ़ा है 'गीतं काव्येन हन्यते' तो क्या यह गीत विधा के महत्व पर प्रहार नहीं है?

नचिकेता :- दरअसल भारतीय काव्य-शास्त्र की रचना प्रबंध काव्यों और नाटकों को ध्यान में रखकर की गयी है। उस काल में प्रगीत या गीत धर्मी कविताएँ न तो सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त समझी जाती थीं, न उनसे इसकी अपेक्षा की जाती थी क्योंकि सामान्य समझ के अनुसार वे अंततः नितांत वैयक्तिक और आत्मपरक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति मात्र थीं। अपनी इसी जड़ी भूत सौंदर्याभिरूचि की गिरफ्त में होने के कारण संस्कृत के अधिकांश आचार्यों ने 'गीतं काव्येन हन्यते' जैसी भ्रांति फैला दी है। अच्छे गीत और अच्छी कविता में परस्पर अंतरावलंबन होता है। गीत के संसर्ग में आकर कविता में परस्पर अंतरावलंबन होता है। गीत के संसर्ग में आकर कविता अधिक प्रभावोत्पादक और संवेदनशील हो जाती है तो कविता के सम्पर्क में आकर गीत अत्याधिक अर्थपूर्ण और वस्तुपरक हो जाता है।

रामयतन :- हमारी संस्कृति और परम्परा से गीत के जुड़ाव को आप किस गहराई तक स्वीकार करते हैं?

नचिकेता :- गीत की जड़े जितनी अधिक हमारी संस्कृति और परंपरा में गड़ी हुई है उतनी साहित्य की किसी अन्य विधा की नहीं। केवल संस्कृति और परंपरा में ही क्यों गीत तो जन-सामान्य के संपूर्ण जीवन, आचार, व्यवहार, रीति-रिवाज, उत्पादन कार्य, धर्म-कर्म आदि सभी कर्मों और व्यापारों से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। असल में भारतीय ने अपने सैकड़ो, हजारों साल गीत के सहारे काटे है, उसका अधिकांश जीवन-व्यापार गीत के शब्दों, छंदो, संगीतात्मक, रागात्मक और उसकी लय के साथ संपादित होता रहा है, उसकी पीढ़ी-दर-पीढ़ी गीत गाते-गुनगुनाते, सुनते-सुनाते बीतती रही है। क्योंकि गीत और संगीत उत्पादन के औजारों के साथ ही पैदा हुए हैं।

रामयतन :- बाजारवाद ने गीत संरचना और उसकी सामाजिक उपयोगिता को किस तरह प्रभावित किया है? इस विधा के भविष्य को लेकर आप कितना आश्वस्त हैं?

नचिकेता :- बाजारवाद और तज्जनित उपभोक्तावाद का दबाव जब समाज पर अधिक बढ़ने लगता है तब समाज के सारे काव्यात्मक संबंध ध्वस्त हो जाते हैं और हमारे घर-परिवार के नितांत आत्मीय रिश्तेनातों की मिठास भी तिरोहित होने लगती है। परिणामतः समाज में अमानवीयता और संवेदनहीनता बढ़ जाती है। संवेदना और मानवीयता भी जिस में बदलने लगती है, जिनकी खरीद-फरोख्त की जा सके।

रामयतन :- तात्पर्य यह की बाजारवाद साहित्य को भी वस्तु की तरह इस्तेमाल करता है।

नचिकेता :- बिल्कुल। बाजारवाद में साहित्य रचना न होकर उत्पादन बन जाता है। रचना का प्रभाव और स्तर बेमानी हो जाता है तथा आकर्षक रूपाकार और चमकदार भाषा-शिल्प उसके प्रमुख गुण हो जाते हैं। एक बात और जिसकी तरफ अर्न्स्ट फिशर ने बहुत पहले इशारा किया है कि वह कला जो जनता की जरूरतों की अपेक्षा करती है और केवल चुनिंदा लोगों के द्वारा समझे जाने को गौरव की बात मानती है, मनोरंजन-उद्योग को यह मौका देती है कि वह धड़ाधड़ घटिया चीजों का उत्पादन करता रहे। जिस अनुपात में लेखक और कलाकार समाज से ज्यादा-से-ज्यादा विमुख होते जाते हैं, उसी अनुपात में बर्बरता पूर्वक घटिया चीजों का कूड़ा-करकट जनता पर उड़ेला जाने लगता है। शेली ने कविता की वकालत करते हुए कहा है कि कविता की आवश्यकता उन कालों में सबसे अधिक होती है, जब स्वार्थपूर्ण और हिसाबी सिद्धांत की अति के तहत बाह्य जीवन के पदार्थों का संचयन, मानव प्रकृति के आंतरिक नियमों के अनुरूप, उन पदार्थों को आत्मसात करने की तुलना में ज्यादा बढ़ जाता है।

रामयतन :- राष्ट्रीय स्तर पर गीत विधा के लिए नीरज, भवानी प्र० मिश्र, धर्मवीर भारती, केदारनाथ सिंह, राजेंद्र प्र० सिंह तथा नचिकेता आदि की चर्चा होती है। अन्य समर्थ गीतकारों के बारे में आपसे जानना चाहता हूँ।

नचिकेता :- राष्ट्रीय स्तर पर जिन लोगों की चर्चा होती है, वे लोग कोई जरूरी नहीं कि गीत

विधा के शिखर गीतकार हों ही। नीरज जी निस्संदेह उत्तर छायावादी दौर के प्रमुख गीतकार रहे हैं और मध्यवर्गीय रोमांस के गीत लिखने और कवि सम्मेलनों में भरपूर शोहरत हासिल करने की बदौलत काफी चर्चित भी रहे हैं। भवानी प्र० मिश्र, धर्मवीर भारती, केदारनाथ सिंह आदि ने कुछ अच्छे गीत लिखे अवश्य हैं, परंतु स्वभावतः ये लोग गीतकार नहीं हैं, ये लोग मुक्त छंद की कविता के कवि रहे हैं।

रामयतन :- राजेन्द्र प्रसाद सिंह भी नहीं?

नचिकेता :- राजेंद्र प्रसाद सिंह अवश्य नवगीत के प्रवर्तक गीतकार रहे हैं, किंतु उनकी रचनाएं समकालीन गीत के लिहाज से उतनी महत्वपूर्ण नहीं रही हैं। इसलिए शंभुनाथ सिंह, रामदरस मिश्र, वीरेन्द्र मिश्र, ओम प्रभाकर, नईम, देवेन्द्र कुमार, माहेश्वर तिवारी, उमाकांत मालवीय रवींद्र भ्रमर, शलभ श्रीराम सिंह, देवेन्द्र शर्मा इंद्र, विद्यानंद, राजीव भ्रमर, शलभ श्रीराम सिंह, देवेन्द्र शर्मा इंद्र, विद्यानंद, राजीव कुमार, गुलाब सिंह, यश मालवीय आदि को श्रेष्ठ नवगीतकार और रमेश रंजक, नचिकेता, शांति सुमन, अश्वघोष, रामकुमार कृषक, महेन्द्रनेह, ब्रजमोहन, देवेन्द्र कुमार शर्मा आदि को उत्कृष्ट जनगीतकार माना जा सकता है।

रामयतन :- गीत और गजल को लेकर आप निरंतर सक्रिय रहे हैं। इन दिनों क्या कुछ कर रहे हैं?

नचिकेता :- यह सही है रामयतन जी कि मैं मूलरूप से गीतकार हूँ और वर्ष 1970 से नवगीत लिखने के अलावा नवगीत के विकास प्रचार और प्रसार के लिए तन, मन और धन से पूरी तरह जुड़ा हूँ। समय-समय पर गीत विरोधियों के द्वारा जो अनर्गल और अतार्किक आरोप-प्रत्यारोप लगाये जाते हैं उनका बिलकुल निर्भीक और बेबाक ढंग से अपनी सीमा और शक्तिभर तल्ख और सटीक उत्तर देने का प्रयास करता हूँ।

रामयतन :- आपने 'अंतराल' नाम से एक पात्रिका का संपादन-प्रकाशन भी तो किया था।

नचिकेता :- हाँ, वर्ष 1971 में मैंने नवगीत से आद्यंत प्रतिबद्ध पत्रिका 'अंतराल' का संपादन-प्रकाशन किया था, जिसने नवगीत पर गंभीर विचार-विमर्श की शुरूआत की थी और इसी पत्रिका ने हिंदी, 'जनगीत' नाम की नयी गीत-धारा की पहचान और व्याख्या भी की। 2013 में मैंने अवधेश नारायण मिश्र और यशोधरा राठौर के सहयोग से वर्ष 1960 से 2012 तक के 215 प्रमुख गीतकारों के परिचय सहित उनकी पाँच-पाँच प्रतिनिधि गीतों का एंथोलॉजीनुमा समकेत संकलन संपादित-प्रकाशित किया। वर्ष 2014 में आठ गजलकारों की पन्द्रह-पन्द्रह गजलों का एक समवेत संकलन पैंतालीस पृष्ठों के प्रदीर्घ सम्पादकीय आलेख के साथ 'अष्टछाप' के नाम से संपादित किया है। और भी अनेक योजनाएं हैं जो शीघ्र ही सामने आयेंगी।

रामयतन :- इस हेतु अग्रिम बधाई।

रामयतन प्रसाद, मकसूदपुर, पो. : फतुहा, जिला : पटना–803201
मो. : 7261039059

✧ ✧ ✧

राष्ट्रीय चेतना में साहित्यकारों का योगदान

शंकर लाल माहेश्वरी

प्राचीन काल में राजा महाराजाओं को सुशासन संचालन हेतु और बिगड़े राजकुमारों को आदर्शवान बनाने हेतु मित्र लाभ, हितोपदेश, नीति कथाएँ, जातक कथाएँ, पंचतन्त्र की कहानियाँ, चाणक्य नीति, नीति शतक तथा विदुर नीति आदि ग्रंथो का तत्कालीन साहित्य साधकों ने समाजगत आवश्कताओं को ध्यान रखते हुए साहित्य का सृजन किया गया था। जिससे सोई जनता में जागरण उत्पन्न हुआ और एक सामयिक परिवर्तन की लहर दृष्टिगत हुई। सद्साहित्य द्वारा विचारवान व्यक्तियों का जन्म होता है जो रूढ़ियों के विरूद्ध मानसिकता दिखाते हुए समाज में व्याप्त न्यूनताओं को उखाड़ फेंकने में सक्षम होता है।

"इक्कीसवीं सदी का जीवन वैश्वीकरण, साइबर क्राइम, मुक्त बाजार प्रणाली, बाजारवाद, उपभोक्ता प्रवृत्ति, साम्प्रदायिक संकीर्णता, राजनैतिक विकृतियों, भ्रष्टाचार, अनाचार, उग्रवाद, आतंकवाद, असुरक्षा, मानवीय मूल्यों का अवमूल्यन, राष्ट्रीय चरित्र का अभाव, धार्मिक और आध्यात्मिक भावनाओं में गिरावट, अनैतिकता को बढ़ावा, मूल्यहीन शिक्षा का दुष्प्रभाव, सांस्कृतिक विद्रूपता, पर्यावरण प्रदूषण, भौतिकवाद, आदि मरीची भावों के बीच विकसित हो रहा है।''

-लक्ष्मीनारायण रंगा

समाज की ऐसी विकृतियों की अवस्था में इस प्रकार के साहित्य सृजन की आवश्यकता है जो नई चेतना जगा सके। मानव मन में संवेदनाओं का समावेश कर पथराए मानव मन को पिघला कर युगानुकूल मानव की संरचना कर सके। आज मनुष्य मात्र को आत्म चिंतन की आवश्यकता है। वर्तमान परिपेक्ष्य में जो साहित्य लोकतन्त्र के अधिकारों और कर्तव्यों की महत्ता का प्रतिपादन कर मानवीय व नैतिक गुणों के उत्थान हेतु मानव मस्तिष्क को झकझोर दे, उसे नया कुछ करने की प्रेरणा प्रदान करे। साम्प्रदायिक सद्भाव की दिशा में आगे कदम बढ़ा सके। भटके हुए युवाओं को नई राह दिखा सके। पाश्चात्य विचारों से मुक्ति प्रदान कर भारत माँ के प्राचीन गौरव को लौटा सके। संचार साधनों का उत्तरदायित्व गहराई से समझ कर राष्ट्रीय एकता, साम्प्रदायिक सद्भाव, अपराधीकरण पर नियंत्रण तथा लोकहितकारी योजनाओं से संलग्न होकर राष्ट्र

व समाज को नई दिशा दे सके। साहित्य साधक अपने रचनात्मक कौशल का परिचय देते हुए ऐसे ज्योति स्तम्भ का कार्य निरूपण करें जो व्यक्ति को अंधकार से प्रकाश की ओर अग्रसर होने में संबल प्रदान कर सके।

साहित्यकार को ऐसे समर्थ और ऊर्जावान रचना शिल्पी के रूप में प्रस्तुत होना चाहिए जो देश की दशा दिशा का गंभीर आकलन कर उसे प्रगति पथ पर अग्रसर होने के लिए दिशा बोध प्रदान कर सके। समाज और राष्ट्र को एक नवीनतम आयाम देने का समय आ गया है। साहित्यकार अपने शिल्प द्वारा समर्पित भाव से समाज को सुसंगठित और संस्कारित करने में अपनी भूमिका का निर्वहन करें। आज वैचारिक क्रान्ति की आवश्यकता है। जब जब भी समाज में मूर्छा उत्पन्न हुई, नकारात्मक सोच का प्राधान्य हुआ, बदलती परिस्थितियों में देशवासी बदलाव नहीं ला सका, समय के साथ कदम नहीं मिला सका तो साहित्यकार की सीख बड़ी सार्थक सिद्ध हुई है।

प्राचीन काल में राजा महाराजाओं को सुशासन संचालन हेतु और बिगड़े राजकुमारों को आदर्शवान बनाने हेतु मित्र लाभ, हितोपदेश, नीति कथाएं, जातक कथाएं, पंचतन्त्र की कहानियाँ, चाणक्य नीति, नीति शतक तथा विदुर नीति आदि ग्रंथो का तत्कालीन साहित्य साधकों ने समाजगत आवश्कताओं को ध्यान रखते हुए साहित्य का सृजन किया गया था। जिससे सोई जनता में जागरण उत्पन्न हुआ और एक सामयिक परिवर्तन की लहर दृष्टिगत हुई। सद्साहित्य द्वारा विचारवान व्यक्तियों का जन्म होता है जो रूढ़ियों के विरूद्ध मानसिकता दिखाते हुए समाज में व्याप्त न्यूनताओं को उखाड़ फेंकने में सक्षम होता है।

यदि आज के उदीयमान साहित्यकारों ने अपने प्रेरक साहित्य सृजन की दिशा में कदम नहीं बढ़ाये तो सामाजिक समरसता, राष्ट्रप्रेम, श्रमनिष्ठा, पारिवारिक सामन्जस्य, वैचारिक परिवर्तन और सुसंस्कारों के सृजन से कोसों दूर रह जायेंगे। यदि सही समय पर सही मार्गदर्शन व दिशाबोध रचना शिल्पियों द्वारा नहीं मिला तो बहुत पिछड़ जायेंगे और पीछे रह कर दौड़कर भी मंजिल प्राप्त नहीं कर पायेंगे अत: साहित्यकारों को त्वरित गति से समय के साथ सही दिशा में अपनी रफ्तार तेज करनी चाहिए।

''विचारवान व्यक्ति वह होता है जिसने मस्तिष्क को इस तरह विकसित कर लिया है कि वह जो चाहता है उसे हासिल कर सकता है''

-नेपोलियन

ईर्ष्या, द्वेष, छल, कपट, दुष्कर्म, बेईमानी, भ्रष्टाचार, जीवन मूल्यों में गिरावट व्यक्ति के भटकाव के कारण है। उसे सही मार्ग का अनुसरण करने के लिए वह साहित्य उपलब्ध नहीं हुआ जिसके पारायण से वह स्वयं को सद्मार्ग पर अग्रसर कर सके। आज तोता मैना और लैला मजनूं की कहानियाँ सार्थक नहीं है अब जीवन में आमूय-चूल परिवर्तन लाने वाला चौटिला साहित्य चाहिए। सद्साहित्य के पठन द्वारा मानव मन की कलुषित भावनाओं का दमन हो सकता है तथा उत्पीड़न व अनाचारों से मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

''जिस प्रकार प्रेम आलसी और निकम्मे मनुष्यों को सुधार देता हैं उसी प्रकार सद् साहित्य जीवन में महान परिवर्तन कर देता हैं। चरित्रगत दुर्बलताओं को इस प्रकार दूर कर देता है

मानो किसी दैवी शक्ति ने जीवन में प्रवेश किया हो। व्यक्ति मन के अंदर की फूहड़ता और अव्यवस्थाओं तथा कुटिलताओं को हराकर सुव्यवस्था और सद्‌भावना को स्थापित कर देता है जिससे अकर्मण्य मनुष्य भी कर्मठ बन जाता है और भटका हुआ प्राणी सन्मार्ग पर अग्रसर होने लगता है।''

-रास बिहारी

शब्द शिल्पी द्वारा सृजित साहित्य विश्व की मूल्यवान धरोहर होती है। साहित्य शब्द का तात्पर्य सत्य का अनुसरण करता हुआ जन-जन के कल्याण के लिए साहित्य सृजन करे। साहित्य के द्वारा ही रचनाकार अपना संदेश जनजन तक पहुंचाने का प्रयास करता है। शांत मस्तिष्क करुणामय हृदय का आमुख हैं और उसका परिणाम सत्कर्म है। मनुष्य को सत्य एवं आचरण में धर्मजीवी होना चाहिए। अध्यात्म-अमृत का पान कर मानव लोकोपकारी बनता है। वह सत्यम् शिवम् और सुन्दरम् का पोषक होता है। उसमें जन कल्याण की भावनाओं का उद्‌गम होता है। व्यक्ति सभ्य एवं सुसंस्कृत बनता है। करुणा, दया, मैत्री, उदारता, त्याग, सहिष्णुता, सहयोग, श्रम और कल्याण की भावना से परिपूर्ण होकर समाज सेवा में संलग्न हो जाता है। अत: ऐसे साहित्य को विकसित किया जाए जो मनुष्य की भावनाओं को आलोड़ित कर सके। आज कथनी और करनी में एकरूपता नहीं होने से सिद्धान्त और आचारण में बड़ी खाई उत्पन्न हो गई है। हम ज्ञानी बन गये, जानकारियाँ बढ़ गई किन्तु सद्‌गुणों का विकास नहीं हो पाया। विश्व बंधुत्व की भावना तिरोहित हो गई। अत: राष्ट्रीय मूल्यों के प्रति सजगता पैदा करना साहित्यकार का दायित्व है।

मानव मात्र में सत्य के प्रति निष्ठा और असत्य के प्रति तिरस्कार के भाव में जागृत हो सके, सर्वे भवन्तु सुखिन: के सूत्र का अनुसरण कर सकें। अतिथि देवो भव: की भावना बदलती हो सके, भौतिकवादी सोच से छुटकारा मिले, संस्कार, सद्‌भाव, आचार, व्यवहार, सहृदयता, सहयोग और सहानुभूति आदि गुणों का अभाव हो गया है। आज का जन प्रतिनिधि भटक गया है। दम्भ और अहंकार से परिपूर्ण है। उसका वाणी संयम नष्ट हो गया है। राष्ट्र के प्रति समर्पण भाव समाप्त हो गया है। नेतृत्व की क्षमता नहीं है। वह स्वार्थी और शोषक बन गया है। आज सूचना तन्त्र भी निर्बल हो गया है। प्रशासन पंगु हो गया है। भ्रष्टाचार शिष्टाचार बन गया है तथा साम्प्रदायिकता देश के लिए अभिशाप बन गई है। जब समाज और राष्ट्र अपने मार्ग से भटकने लगता है तो साहित्यकार की ललकार ही उसे गलत मार्ग को छोड़ सही मार्ग का अनुसरण करने में सहयोगी होती है। एक ऐसा भी समय था जब तत्कालीन राजस्थान के राजा महाराजाओं में प्राण फूँकने वाले उन चारण कवियों को नहीं भुलाया जा सकता जिन्होंने अपनी ओजस्वी भाषाा व तेजोमय वाणी से उन्हें राजमहलों से बाहर निकाल रणभूमि में तलवार थमाने का कार्य किया। यह चारण साहित्य का ज्वलंत उदाहरण है। चारण कवियों ने आश्रय दाताओं की कीर्ति, युद्ध कला, गर्वोक्तियां तथा वीरता पूर्ण कार्य कलापों का चित्रण किया हैं। वह चारण साहित्य उस समय की ज्वलंत समस्याओं के समाहार हेतु उपयोगी सिद्ध हुआ। वह पूरा कार्यकाल डॉ. रामकुमार वर्मा और डॉ. पियर्सन ने आदिकाल को ''चारण काल'' के नाम से संबंधित किया है। चन्दरदाई का नाम आज भी जन-जन के मन को आंदोलित करता है। वर्तमान काल में मुंशी प्रेमचन्द्र, मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह दिनकर, प्रेमधन, प्रताप नारायण मिश्र, राधाकृष्ण दास आदि के साहित्य ने भी पाठक को उत्प्रेरित किया है।

शिवाजी महाराज के समय में साहित्य सेवा की दृष्टि से कवि भूषण का विशेष योगदान रहा है।

उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द के उपन्यास वस्तुत: गाँधीवादी युग की झलक प्रस्तुत करते हैं उनका कोई भी पात्र संघर्ष से विचलित नहीं होता और उनमें वे समाज की विकृतियों पर प्रहार करते रहे हैं। उनका साहित्य डूबते हुए को संबल प्रदान करने वाला है। कबीर, जायसी, सूर, तुलसी आदि संत कवियों ने अपनी जीवन शैली और साधना से हताश हिन्दू समाज को आलंबन प्रदान किया था। साहित्य समाज की प्रगति की आधारशिला प्रस्तुत करता है। साहित्य मानव जीवन को परिष्कृत कर उसे सही दिशा में गतिमान करता है। सशक्त और सजग साहित्य समाज का पथ प्रदर्शक होता है। देश और समाज के निर्माण में साहित्यकार का बहुविध तथा असीमित सहयोग होता है। वे परंपरा के वटवृक्ष का सहारा लेकर प्रगति के फूल बिखेरते हुए समाज व राष्ट्र का मार्ग प्रशस्त करता है। साहित्य सूर्य किरणों की भाँति समाज में चेतना का संचार करता है। ज्ञान के अंधकार को दूर कर समाज को आलोकित करता है। साहित्य ही राष्ट्र की सांस्कृतिक गरिमा को अक्षुण्य बनाये रखता है। साहित्यकार का दायित्व हैं कि वह ऐसे साहित्य का सजृन करे जिससे नागरिक अपने अधिकार व कर्तव्य तथा न्यायिक व्यवस्था से परिचित होकर जागरूक बन सके।

जब देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठापित हुआ उस समय जनता अत्याचारों से त्रस्त थी। देव मंदिरों को गिराना, महापुरुषों को अपमानित करना और साम्प्रदायिकता फैलाना आदि कुकृत्यों से जन जीवन दुखी था। उस समय हमारे संत कवियों ने साहित्य सृजना से समाज को एक नई दिशा प्रदान की थी। संत कबीर ने तो खंडित समाज को एक सूत्र में बाँधने का अथक परिश्रम किया तथा भावात्मक एकता स्थापित करने में सफल रहे। आधुनिक काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के प्रादुर्भाव के आधुनिक भाव धारा का विकास हुआ। सामयिक साहित्य में सामाजिक कुरीतियों का उद्घाटन, अंग्रेजो के विरूद्ध जनमत निर्माण तथा राष्ट्रभक्ति, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, शिक्षा का प्रचार-प्रसार आदि के साथ राष्ट्रीय भावनाओं को जागृत करने का महत्वपूर्ण कार्य किया और अपने साहित्य धर्म का निर्वाह किया।

आज सूचना क्रान्ति का युग है। दूरदर्शन व इंटरनेट के माध्यम से सामयिक व श्रेष्ठ कथा कहानियों से परिपूर्ण आलेखों से जन शिक्षण प्राप्त हो सकता है। अत: कथाकारों को देश हित में ऐसी चित्र कथाएँ तैयार करनी चाहिए जो उपयोगी व प्रेरक हों। विशेषत: शिक्षण संस्थाओं में जहाँ नई पीढ़ी की पौधा तैयार हो रही है वहाँ यदि प्रेरणादायी और जीवन मूल्यों की उत्प्रेरक पुस्तकों का उपयोग हो तो भावी नागरिक का बौद्धिक स्तर विकसित होगा। देश का विकास भी तभी संभव है जब प्रत्येक नागरिक सुशिक्षित हो सके। ''न पढ़ने वालों से वे श्रेष्ठ है जो पढ़ते है। पढ़ने वालों से वे श्रेष्ठ हो जो पढ़े हुए का स्मरण रखते है। स्मरण रखने वालों से वे श्रेष्ठ हैं जो पढ़े हुए का अभिप्राय समझते है और उनसे भी वे श्रेष्ठ हैं जो पढ़े हुए के अनुसार आचरण करते हैं।''

- मनु स्मृति

एक साहित्यकार के द्वारा ऐसी कृति का निर्माण हो जिससे पठित सामग्री का अनुसरण कर आचरण सुधार के लिए उत्प्रेरित हो जाए। साहित्य की विविध विधाओं में निबन्ध, कविता, नाटक, एकांकी, बोध कथा, संवाद, रेखाचित्र, व्यंग्य लेख, उपन्यास तथा क्षणिकाएं विशेष रूप से

प्रचारित है। अतः समसामयिक परिस्थितियों के अनुरूप ही विषय वस्तु का समावेश विभिन्न विद्याओं में प्रस्तुत किया जाए। कवि सम्मेलनों का भी सामाजिकों के लिए विशेष महत्व है अतः कवि अपनी प्रेरणादायी कविताओं के माध्यम से जागरण उत्पन्न कर सके, ऐसा उन्हें सुनिश्चित करना चाहिए।

वर्तमान परिपेक्ष में आतंकवाद, नक्सलवाद, माओवाद, सीमाओं का अतिक्रमण, पर्यावारण प्रदूषण, मानवाधिकारों का क्षरण, दुष्कर्म, अनाचार, घरेलू हिंसा, सांस्कृतिक प्रदूषण, जनसंख्या विस्तार, भ्रष्टाचार, रिश्वत खोरी, हत्या, लूटपाट आदि ज्वलंत समस्याएँ समाज में व्याप्त है। इसके साथ ही सामाजिक रूढ़ियाँ भी जन जीवन को प्रभावित कर रही है। जिनमें दहेजप्रथा, मृत्युभोज, बालविवाह, शादी समारोह में दिखावा आदि कुप्रथाओं से जन जीवन त्रस्त है। अतः इन सब पर नियन्त्रण भी आवश्यक है। ''साहित्यकार को सकारात्मक सोच के साथ अपने लक्ष्य प्राप्ति के लिए प्रबल इच्छा शक्ति, अथक परिश्रम, पारदर्शिता तथा सकारात्मक सोच के साथ अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन करना चाहिए तभी समाज का हित होगा। क्योंकि ''शब्द के संवाद से शिव, ब्रह्मा और इन्द्र की शक्ति प्राप्त हो सकती है व्यक्ति का पिछला जीवन चाहे जैसा भी रहा हो शब्द संवाद द्वारा वह वांछित दिशा में उन्मुख हो सकता है।''

– गुरु नानक

यदि साहित्यकार सजगता पूर्वक निष्पक्ष भाव से समसामयिक अव्यवस्थाओं और विसंगतियों का पर्याप्त आकलन कर अपनी लेखनी उठाने का संकल्प संजोयेगा, तो अवश्य सफलता मिलेगी।

''संसार में सभी भले कार्य संकल्प से पूरे होते हैं जिसमें संकल्प की शक्ति नहीं वह संसार में सुकार्य नहीं कर सकता इसीलिए वैदिक ऋषियों ने भी यही याचना की थी कि हमारा हृदय में कल्याणकारी संकल्प हो जिससे हम निरन्तर आत्म कल्याण के साथ लोक कल्याण कर सकें।''

– आचार्य गणेशदास

''रचनाकार की सफलता जिस ताले में बन्द है वह दो चाबियों से खुलता है। एक सकारात्मक सोच और दूसरा दृढ़ इच्छा शक्ति। यदि कोई भी ताला बिना चाबी के खोला गया, तो आगे उपयोगी नहीं होगा। अतः साहित्यकार को सजगता पूर्वक राष्ट्रीय चेतना के लिए समर्पण भाव से योगदान देना चाहिए।

शंकर लाल माहेश्वरी, पूर्व जिला शिक्षा अधिकारी, पोस्ट : आगूँचा, जिला : भीलवाड़ा (राजस्थान)
मो. : 9413781610

आलेख

गोदान : संक्रमणकालीन समाज का रेखांकन

सोमनाथ शर्मा

गोदान एक कालजयी कृति है क्योंकि मानवीय जीवन के संदर्भ में जिन परिस्थितियों, समस्याओं और मंजरों का चित्रण गोदान में किया गया है या नवांकुर फूटते दिखाए हैं वे वर्तमान काल में वटवृक्ष बन चुके हैं। समस्याएँ अब और भयावह, विकराल और नग्न रूप में सामने आ खड़ी हुई हैं। कालजयी साहित्यकार की दृष्टि बड़ी सूक्ष्म और प्रखर होती है, उसकी क्षमता अपार होती है और यही उसकी उपलब्धि है। जो साधारण व्यक्ति देख, सुन और महसूस नहीं कर पाता, वह उन्हें देख, सुन और महसूस कर लेता है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं, ''अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार-विचार, भाषा-भाव, रहन-सहन, आशा-आकांक्षा, सुख-दुख, सूझ-बूझ जानना चाहते हैं, तो प्रेमचंद से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता। झोंपड़ी से महलों, खोमचेवालों से लेकर बैंकों, गाँव से लेकर धारा सभाओं तक आपको इतने कौशल और प्रामाणिक भाव से कोई नहीं ले जा सकता।'' यह कथन मुंशी प्रेमचंद के साहित्यिक अवदान को बहुत अच्छी तरह रेखांकित करता है।

मुंशी प्रेमचंद ने अपने कालजयी उपन्यास गोदान में तत्कालीन समाज, धर्म, अर्थ और राजनीति में व्याप्त विद्रूपताओं को अपनी स्वाभाविक, स्वतः स्फूर्त जन मन की भाषा से उघाड़कर रख दिया है। प्रेमचंद ने संक्रमणकालीन भारतीय समाज, कृषक जीवन के नग्न यथार्थ, सामंतवादी और पूँजीवादी व्यवस्था के शिकार किसान और मजदूर वर्ग, ऋण की समस्या आदि का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है। इसके अलावा दलित विमर्श, नारी विमर्श आदि पहलू भी देखने को मिलते हैं।

गोदान, जिसकी रचना मुंशी प्रेमचंद द्वारा सन् 1936 में की गई, एक ऐसा उपन्यास जो अपने युग के नग्न यथार्थ को ही प्रतिबिम्बित नहीं करता बल्कि वर्तमान समय के सम्पूर्ण परिदृश्य को भी रूपायित करता है। सन् 1936 तक आते-आते प्रेमचंद का

गाँधीवाद से कुछ-कुछ मोहभंग हो चला था और वह प्रगतिशील चेतना के संवाहक बन जाते हैं, जिसके दर्शन हमें गोदान में होते हैं। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी कहते हैं, ''गोदान में जैसे प्रेमचंद ने गाँधी और मार्क्स को फेंटकर रख दिया है।'' 1936 में ही लखनऊ में आयोजित ''प्रगतिशील लेखक संघ'' के प्रथम अधिवेशन के अध्यक्षीय भाषण में प्रेमचंद कहते हैं, ''साहित्यकार का काम मन बहलाना या मनोरंजन करना नहीं है। यह काम तो चारण-भाटों, मसखरों व मदारियों का है...... साहित्य मेरी समझ में वह है जिसमें राष्ट्रीयता और मानवतावादी चिंतन हो, क्योंकि अब अधिक सोना मृत्यु का लक्षण है।'' स्पष्टत: गोदान का गहन अध्ययन कर ये देखा जा सकता है कि प्रेमचंद ने अपने उक्त वक्तव्य के अक्षर-अक्षर को गोदान में अमलीजामा पहनाया है।

गोदान एक कालजयी कृति है क्योंकि मानवीय जीवन के संदर्भ में जिन परिस्थितियों, समस्याओं और मंजरों का चित्रण गोदान में किया गया है या नवांकुर फूटते दिखाए हैं वे वर्तमान काल में वटवृक्ष बन चुके हैं। समस्याएँ अब और भयावह, विकराल और नग्न रूप में सामने आ खड़ी हुई हैं। कालजयी साहित्यकार की दृष्टि बड़ी सूक्ष्म और प्रखर होती है, उसकी क्षमता अपार होती है और यही उसकी उपलब्धि है। जो साधारण व्यक्ति देख, सुन और महसूस नहीं कर पाता, वह उन्हें देख, सुन और महसूस कर लेता है। वास्तव में गोदान अपने समय के समाज का न केवल प्रतिबिम्ब है, बल्कि आने वाले युग की प्रसव पीड़ा भी। गोदान संक्रमण पर खड़े समाज की त्रासदी है क्योंकि मानवीय मूल्य स्वार्थ की भेंट चढ़ सिसक रहे हैं, आदर्श का मुलम्मा किंचित थपेड़ों से ही छूटने लगा है।

यहाँ हमारा ध्येय गोदान में दिखाई भारतीय समाज व्यवस्था के संक्रमण, परिवर्तन और चरमराहट को रेखांकित करना है, जो वर्तमान में और भी वीभत्स रूप में प्रत्यक्ष हो उठी है। संक्रमणकालीन समाज के अंतर में ही पीढ़ीगत संघर्ष, पारिवारिक विघटन, विवाह जैसी संस्था का चरमराना, लिव इन रिलेशनशिप, स्वार्थ पूर्ति के निमित्त जातिगत सम्पर्कों में ढिलाई, मानवीय आस्था और विश्वास का खंड-खंड होना, स्वार्थी मनोवृत्ति इत्यादि प्रवृत्तियाँ पैठी हुई हैं।

गोदान में पीढ़ीगत संघर्ष और पारिवारिक विघटन दो जगह तो स्पष्ट और मुखर रूप से दिखाई देता है, कथानायक किसान होरी और उसके बेटे गोबर के मध्य तथा जमींदार रायसाहब अमरपाल सिंह और उनके पुत्र रुद्रपाल के मध्य। बाद में पं. दातादीन के पुत्र मातादीन में भी परिस्थिति और हृदय परिवर्तन से अपने धर्म और वर्ण के प्रति प्रबल हो उठता है।

होरी और उसके बेटे में ये संघर्ष मुखर रूप से दो जगह दिखाया गया है, एक तो कथानक के आरंभ में ही जब होरी रायसाहब की खुशामद करके लौटता है तब और दूसरा जब गोबर शहर से वापस आता है तब।

होरी अवध प्रांत के सेमरी में रहने वाला एक पारम्परिक आस्थावान, भाग्यवादी, धर्मभीरु, निर्धन किसान है जो कैसे भी करके अपनी मर्यादा को सुरक्षित रखना चाहता है और किसान की मर्यादा है, उसकी जमीन, खेतीबाड़ी और पशु। वो सीधा-सादा, सरल हृदय महाजनों के कुचक्रों से सदा ऋण के जाल में फँसा रहने वाला निरीह कृषक है। जीवन भर की जी-तोड़ मेहनत और खून

पसीना एक करके भी वह अपनी चिरअभिलाषा एक गाय को प्राप्त नहीं कर पाता। वो पाँव तले दबी अपनी गर्दन को सहलाने में ही कुशल समझता है। पाँच बीघे के किसान की आखिर औकात ही क्या है ! परंतु, उसका बेटा गोबर बड़ा ही अक्खड़, विद्रोही और खरा है। जब होरी रायसाहब की जी हुजूरी करके लौटता है तो गोबर उसे डाँटते हुए कहता है, ''तुम रोज रोज मालिकों की खुशामद करने क्यों जाते हो? बाकी न चुके तो प्यादा आकर गालियाँ सुनाता है, बेगार देनी पड़ती है, नजर नजराना सब तो हमसे भराया जाता है, फिर किसी की क्यों सलामी करो।'' गोबर अन्याय, शोषण और अत्याचार को बिल्कुल भी नहीं सह सकता। उल्टे वो होरी को अपनी विपन्नता का खुद ही जिम्मेदार मानता है।

होरी जब रायसाहब के दुख, सहृदयता, जमीन-जायदाद, भोग-विलास और शानोशौकत से अनासक्ति और उनके हजार चिंताओं में घुले और पिसे रहने की वकालत करता है तो गोबर व्यंग्य करते हुए कहता है, ''तो फिर अपने इलाके हमें क्यों नहीं दे देते। हम अपने खेत, बैल, हल, कुदाल सब उन्हें देने को तैयार हैं।'' गोबर की नजर में यह निरी मोटमरदी और धूर्तता के सिवाय कुछ नहीं। वो आगे कहता है, ''जिसे दुख होता है, वह दर्जनों मोटरें नहीं रखता, महलों में नहीं रहता, हलवा पूरी नहीं खाता और न नाच रंग में लिप्त रहता है। मजे से राज का सुख भोग रहे हैं, ऊपर से दुखी हैं!''

होरी जहाँ शांत, सरल, शीतल, विवश, सहज, विश्वासी और परम्पराओं में आस्थावान पीढ़ी का प्रतिनिधि है वहीं गोबर प्रखर, प्रचंड, विद्रोही और बदलाव का पक्षधर। गोबर के मन में अशांति है, अन्याय और शोषण का जबर्दस्त प्रतिकार भाव है। होरी जहाँ सम्पत्ति और ऐश्वर्य को पूर्व जन्मों के कर्म और तपस्या का प्रतिफल मानता है, वहीं गोबर इसे महाजनों और जमींदारों के स्वार्थ, बेहयाई और षड्यंत्रों का परिणाम।

कथानक में आगे जवानी के जोश में कामातुर गोबर भोला की विधवा बेटी झुनिया के शिकारी यौवन से प्रेम निमंत्रण पाकर, साथ जीने मरने की कसमें खाकर उसके गर्भ ठहराकर, माँ बाप के मुँह पर कालिख लगा लज्जा के मारे शहर की राह लेता है। वहाँ मिर्जा खुर्शीद के यहाँ उसे रहने का ठिकाना मिलता है और रोजी भी। बाद में वह खोमचा लगाने लगता है और कुछ ही दिनों में अच्छे रुपये पैसे इकठ्ठा कर गाँव पहुँचता है। उधर गाँव में होरी का बुरा हाल था। बैल भोला खोल ले गया, पंच पटेलों के डांड और ब्याज से त्रस्त होरी दातादीन की मजूरी करने लगा था। गोबर पहले से ही तेज तर्रार था शहरी आवोहबा, रंग-ढंग से वाकिफ हो हाथ में पैसे की गर्मी दबाए जब गाँव पहुँचा तो होरी की वही विपन्नता, कर्ज और महाजनों का चंगुल देख उसे खूब लताड़ा और एक-एक की खबर लेने, अदालत में घसीटने और जेल भिजवाने को आमादा हो गया। वह सब महाजनों को खरी-खरी सुनाता है और होली के स्वांग नाट्य में दिल के गुबार निकालता है। उसके साथ ही गाँव के सताये और त्रस्त हृदय कल्पना में प्रतिशोध पाकर प्रसन्नचित्त हो जाते हैं। पं. दातादीन के दो सौ रुपये के बदले जब गोबर ने उन्हें सत्तर रूपये लेकर संतुष्ट होने या अदालत जाने की चुनौती दे डाली तो होरी का धर्मभीरु मन काँप उठा। सोचने लगा, ''ब्राह्मण के रुपये! उसकी एक पाई भी दब गई, तो हड्डी तोड़ कर निकलेगी।''पर गोबर ने होरी को खूब रगेदा और कहा,''

तुम्हीं लोगो ने तो इन सबों का मिजाज बिगाड़ दिया है। होरी जिस नीति, धर्म और परम्परा की दुहाई दे रहा था। गोबर की नजर में वह सब इंसान को बहकाने और उसका रक्त चूसने के शब्द भर हैं।

उकताकर वह होरी से कह देता है, ''मैं तो अपने हाथों अपने पाँव में कुल्हाड़ी नहीं मारूँगा। तुमने खाया है तुम भरो। मैं क्यों अपनी जान दूँ?'' अंततः गोबर झुनिया को लेकर शहर चला जाता है।

पीढ़ियों का दूसरा संघर्ष रायसाहब और उनके पुत्र रुद्रपाल सिंह के मध्य दिखाया गया है। रायसाहब एक बड़े जमींदार, धन सम्पन्न और क्षेत्र के रसूखदार आदमी हैं जो अपनी बाहरी तड़क-भड़क और शानोशौकत पर किसी भी कीमत पर बट्टा लगते नहीं देख सकते। ये उनकी मजबूरी भी है। सत्याग्रह में यश कमा चुके हैं और कौंसिल की मेंबरी छोड़कर जेल भी जा चुके हैं। हाकिम-हुक्कामों और यार दोस्तों से मेलजोल बनाये रखते हैं ताकि किसी लफड़े में न फँसे। वो जानते हैं कि उनके वर्ग की हस्ती मिटने वाली है, ये शानोशौकत ज्यादा दिन नहीं रहेगी और गरीब किसानों की हाय उन्हें एक दिन ले डूबेगी परंतु वो उसके स्वागत के लिए तैयार भी हैं। परंतु ये सब कहने की ही बातें हैं सच्चाई ये है कि उन्हें सम्पत्ति की स्वर्ण बेड़ियों का ही सुख है, चाहे वे निर्धन किसान का रक्त चूसकर बनी हों। निरी मोटमरदी और धूर्तता के सिवाय कुछ नहीं है।

अपनी झूठी शान के चक्कर में उन पर लाखों का कर्ज हो चुका है, पर ये शान बनाये रखना उनकी मजबूरी है। उन्हें पता है कि चुनावों में उनकी हार निश्चित है पर बैठ नहीं सकते, जेब खाली है पर चूँकि सूर्यप्रताप सिंह ने चंदे में पाँच हजार दिए हैं तो वे भी देंगे। ससुराल की जायदाद पर भी उनकी गिद्ध दृष्टि है, उस पर कब्जा जमाने के लिए मुकदमा दायर कर जीत भी जाते हैं। अपनी पुत्री मीनाक्षी का विवाह एक विधुर और दुर्व्यसनों के भंडार कुँवर दिग्विजय सिंह कर देते हैं। राजा सूर्यप्रताप सिंह से इलेक्शन जीतकर उन्हें होम मेम्बरी, राजा की पदवी भी मिल जाती है तो अपने झूठे अभिमान और स्वार्थ की भेंट अपने पुत्र रुद्रपाल को चढ़ाने के लिए भी तत्पर हो उठते हैं।

राजा सूर्यप्रताप सिंह जब अपनी कन्या का विवाह प्रस्ताव रायसाहब के पुत्र रुद्रपाल के लिए भेजते हैं तो इस कल्पनातीत खुशी से रायसाहब झूम उठते हैं।

रुद्रपाल पढ़ा-लिखा, आदर्शवादी, निर्भीक, स्वाभिमानी और स्वावलंबी युवक था जिसे अपने पिता की धन और मान लिप्सा बुरी लगती थी। उसने इस प्रस्ताव से साफ इंकार कर दिया। वो मालती की छोटी बहिन सरोज से पहले ही विवाह कर चुका है। रायसाहब के मर्म पर चोट पहुँचती है। सम्पूर्ण वैभव, शान, नाम, रसूख धूमिल हो तड़पड़ाने लगते हैं। अंततः समझौतों से भरा मंजा हुआ अनुभव कच्चे आदर्शवाद, जिद और उद्दण्डता के समक्ष नतमस्तक हो जाता है।

पीढ़ीगत तीसरा संघर्ष जो परिस्थिति जन्य हृदय परिवर्तन का परिणाम है और एकतरफा भी, वह है मातादीन का। धर्मभ्रष्ट मातादीन का अग्निकुण्ड के समक्ष गोमूत्र और गोबर से हुआ प्रायश्चित उसमें मानवता का अपार प्रकाश भर देता है, वह निखर उठता है। धर्म और उच्चवर्णीय समाज के चमकीले स्तम्भों की झूठी चमक और आडम्बर की परख उसे हो जाती है। उसका हृदय

जातिगत बंधनों, नियम, धर्मों की दुहाइयों को अनसुनी कर निर्मम यथार्थ से साक्षात्कार कर लेता है। अपने पुत्र के प्रति वात्सल्य और निरीह सिलिया के प्रति प्रेम की हिलोरें उमड़ पड़ती है और इन उत्ताल हृदय तरंगों में समाज और धर्म के समस्त दुर्ग ढह जाते हैं। मातादीन के पिता और गाँव के नामी पंडित और महाजन पं. दातादीन कुछ नहीं कर पाते। उनके सारे नियम, धर्म, पाण्डित्य, शास्त्रज्ञान और मर्यादाएँ धूल चाटने लगती हैं।

गोदान में पारिवारिक विघटन की छाया होरी, भोला, दातादीन, रायसाहब, खन्ना के परिवारों पर मँडराती है और अंततः होरी, भोला, दातादीन और रायसाहब का परिवार तो विघटित हो ही जाता है, खन्ना का परिवार टूटते बिखरते बचता है।

होरी और उसके दो भाई हीरा और सोभा पहले साथ ही रहते थे। हीरा ने अपनी जवानी और धनिया ने अपने अरमान संयुक्त गृहस्थियों को ढोने में निकाल दिये। बहुत तरह देने, स्व दुर्गति पर आँख मूँद हँसी खुशी जिम्मेदारियों को निभाने के बावजूद भी जब निवाह नहीं हुआ तो अलगौझा हो गया। सब नेकी बदी में बदल गई, किये कराये पर पानी फिर गया। सौहार्द्र और भ्रातृत्व की जगह ईर्ष्या, कुढन और डाह ने ले ली। होरी तो चाहता था कि तीनों भाई साथ ही रहें, वो कहता है, ''सोभा और हीरा अलग हो ही गये नहीं तो आज इस घर की और ही बात होती। तीन हल एक साथ चलते। अब अलग-अलग चलते हैं, सब समय का फेर है।'' वह इस अलगाव का कारण भाइयों की स्वार्थी संकुचित मनोवृत्ति, अदूरदर्शिता, हरामखोरी, प्रमाद और कर्ज-ब्याज के पाश में फँसी गर्दन से उत्पन्न विपन्नता को मानता है। रही सही कहर तिरिया चरित्र ने पूरी कर दी। वो धनिया को निर्दोष मानता है, ''बेचारी जब से घर में आई, कभी तो आराम से नहीं बैठी। डोली से उतरते ही सारा काम सिर पर उठा लिया।..... वह इतनी सीधी, निश्छल और गमखोर न होती तो आज सोभा और हीरा मूँछों पर ताव देते फिरते हैं, कहीं भीख माँगते होते।'' होरी के अमृत जैसे हृदय को अंत में भाइयों की ईर्ष्या का प्रसाद विष के रूप में मिलता है जो होरी की अनन्य साध गाय का करुणांत कर देता है।

बाद में रही सही कसर गोबर ने पूरी कर दी। भोला महतो की विधवा चंचल बेटी झुनिया के गर्भ ठहराकर शहर भाग जाता है। बाद में जब कमाकर लौटता है तो बाप की सरलता, सहृदयता का गला घोंटते कर्ज से तंग आकर शहरी चकाचौंध और पैसे की गर्मी से बदली स्वार्थी वृत्ति की रौ में झुनिया और बच्चे को लेकर चला जाता है। वो कहता है, ''तुम चाहते हो कि मैं सारा कर्जा चुकाऊँ, लगान दूँ, लड़कियों का ब्याह करूँ। जैसे मेरी जिंदगी तुम्हारा देना भरने के लिए ही है। मेरे भी तो बाल बच्चे हैं?''

सन्नाटा छा जाता है, एक क्षण में समस्त मृदुस्वप्नों की रेशमी माला में बड़े जतन और दैवीय आशीर्वाद से पिरोये एक-एक अरमान भरे मोती टूटकर बिखर जाते हैं।

उधर भोला महतो जो दूध मक्खन का व्यवसाय करता है की पत्नी गत वर्ष लू लगने से चल बसी है। घर में दो बेटे हैं कामता और जंगी जिनका विवाह हो चुका है। बेटी झुनिया विधवा होकर यहीं आश्रित है। दोनों बेटे नितांत बेहया, आलसी, निकम्मे और चोर हैं और बहुएँ बड़ी

शैतान। भोला के हृदय की उत्कट स्त्री-लालसा को होरी का आश्वासन संजीवनी देता है और भोला सुखस्वप्न संजोए शीतल मृदुल बसंत की बाट जोहने लगता है।

चंचल झुनिया गोबर के गर्भ से लज्जित बाप के पास वापस आने की हिम्मत नहीं जुटा पाती और कलंकिनी बन भोला की इज्जत मटियामेट कर देती है।

भोला एक विधवा अहीरिन नौहरी को ब्याह लाया तो घर में वर्चस्व की लड़ाई छिड़ गई। छोटा बेटा जंगी तो पहले ही अपनी स्त्री को लेकर लखनऊ चला गया था। कामता की बहू ही घर की स्वामिनी थी। पर अब स्वामिनी बन बैठी उसकी सौतेली सास। आए दिन की तकरार और झगड़े से अलगौझे की नौबत आ गई। कामता ने लात मार भोला को बाहर किया। भोला नौहरी को लेकर नोखेराम की शरण में जा पहुँचा। साथ में एक चटपटी, रंगीली स्त्री को देखकर नोखेराम नें आश्रय दे दिया और छोटा मोटा काम भी। बाद में नोखेराम के वैभव के प्रभाव से चौंधियाई नौहरी अपनी चंचल प्रवृत्ति से बेकाबू हो गई। भोला कहीं का नहीं रहा।

पं. दातादीन के बेटे मातादीन नें सिलिया चमारिन को रख लिया था। एक दिन सिलिया के बाप हरखू, माँ कलिया और अन्य चमारों ने मिलकर जबर्दस्ती मातादीन के मुँह में हड्डी घुसाकर उसका धर्मभ्रष्ट कर दिया। काशी में पंडितों ने गौ मूत्र, गोबर आदि से अग्निकुण्ड के समक्ष मातादीन का प्रायश्चित कर उसे पुनः ब्राह्मणत्व प्रदान कर दिया। पर मातादीन का अंतर्मन लाचार सिलिया के किए गये शोषण पर आँसू बहा रहा था। इन निर्मल और पवित्र आँसुओं के प्रवाह में सारे नियम, धर्म बह गये। मातादीन अपने धर्म, समाज और पिता से नाता तोड़ सिलिया के चरणों में जा गिरा।

रायसाहब इलाके के बड़े जमींदार और रईस थे। हाकिम-हुक्कामों, रसूखदार यार दोस्तों से मेलमिलाप, खातिरदारी, राजनीति आदि में लिप्त थे। अपनी झूठी शानोशौकत रसूख और रुत्बे के लिए अपनी बेटी मीनाक्षी का विवाह लंपट, अय्याशी और दुर्व्यसनों के भंडार विधुर कुँवर दिग्विजय सिंह से कर देते हैं। कुँवर अपनी अय्याशी से बाज नहीं आता तो मीनाक्षी भी रणचंडी बन जाती है और बिना रायसाहब को बताये अपने हक के लिए कुँवर दिग्विजय सिंह की आधी जायदाद पाने के लिए मुकदमा दायर कर देती है।

चुनाव जीतकर कौंसिल की होम मेम्बरी मिलने, ससुराल की जायदाद का मुकदमा जीतने और राजा की पदवी से गद्गद रायसाहब राजा सूर्यप्रताप सिंह से उनकी कन्या का विवाह प्रस्ताव अपने पुत्र रुद्रपाल सिंह के लिए पाकर अकल्पनीय सुख स्वप्नों में खो जाते हैं। परंतु अपने पिता और जमींदार वर्ग की रीति नीतियों का आलोचक निर्भीक, अक्खड़ और आदर्शवादी रुद्रपाल यह कहकर उनके प्रस्ताव और अरमानों की धज्जियाँ उड़ा देता है कि उसने तो मालती की बहिन सरोज से विवाह कर भी लिया। रुद्रपाल सरोज को लेकर इंग्लैंड चला जाता है और पिता की जायदाद पर दावा कर देता है। रायसाहब दोनों बच्चों की कारगुजारी से आहत, व्यथित और पारिवारिक विघटन से त्रस्त अपने कर्मों पर प्रायश्चित करने लगते हैं।

उधर गोविंदी और खन्ना का परिवार टूटते-टूटते बचता है। खन्ना बेहद कांइयां किस्म का चालाक, धूर्त, पैसे का लालची और विलासी प्रवृत्ति का व्यक्ति है, वहीं उसकी पत्नी गोविंदी भारतीय नारी का आदर्श है। वह सेवा, तप, त्याग, संयम और वात्सल्य की सजीव मूर्ति एक पतिव्रता नारी है। वह एक लखपति की पत्नी है, पर विलास को तुच्छ समझती है। खन्ना मालती पर आसक्त है। वह मालती की नशीली चितवन, मादक हँसी और रूपजाल में फँसा उसके हाथों का खिलौना बना हुआ है। गोविंदी खन्ना की अपने (गोविंदी) और अपने बच्चों के प्रति बेरुखी, कड़वाहट, झुँझलाहट और रोज-रोज की तू-तू मैं-मैं का कारण मालती को मानती है। एक दिन वह बच्चे को लेकर घर छोड़कर निकल पड़ती है। पार्क में डॉ. मेहता के समझाने-बुझाने, उसके शील, आदर्शवादी चरित्र की प्रशंसा करने तथा जिंदगी की समस्याओं, संघर्षों से न घबराकर कर्त्तव्य भाव से अडिग, अविचल रहने की हौसला अफजाई से गोविंदी को राहत मिलती है। अंततः डॉ. मेहता पर मालती को समझाकर खन्ना से दूर हटाने की जिम्मेदारी का भार सौंप वह निश्चिंत हो वापस घर लौटती है। इस तरह खन्ना और गोविंदी का परिवार टूटने से बच जाता है।

गोदान में संक्रमणकालीन समाज की एक बड़ी भयंकर और प्रबल समस्या को दिखाया गया है, जिस पर भारतीय समाज व्यवस्था सम्पूर्ण ढाँचा खड़ा हुआ है और वह है, विवाह जैसी संस्था का चरमराना। विवाह भारतीय समाज में जन्मजन्मांतर का पवित्र बंधन समझा जाता है और वर्णाश्रम, संस्कार, पुरुषार्थ, तीनों ऋणों से मुक्ति आदि व्यवस्थाओं का केन्द्रीय तत्व है। गोदान में विवाह के लिए पं. मातादीन-सिलिया चमारिन, भोला महतो-नौहरी अहीरिन जातिगत बंधनों की बेपरवाही दृष्टिगत होती है साथ ही मातादीन-सिलिया, गोबर-झुनिया और मेहता-मालती के प्रसंगों में वर्तमान की सबसे बड़ी समस्या लिव इन रिलेशनशिप दिखाई गई है।

गोदान में पं. मातादीन सिलिया चमारिन की कहानी लिव इन रिलेशनशिप का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। लिव इन रिलेशनशिप से तात्पर्य है युवक युवती का बिना विवाह किए स्वेच्छा से एक ही छत के नीचे साथ-साथ रहना। जिसमें एक-दूसरे को जानने-समझने से लेकर शारीरिक सम्बन्ध बनाने एवं जीवन की विविध बहुरंगी कल्पनाओं का दर्शन समाहित है।

पं. मातादीन सिलिया चमारिन पर आसक्त हो, उसे रख तो लेता है पर अगले ही क्षण धर्म और समाज की मर्यादाएँ और संभोग लिप्सा से शांत उसका स्वार्थी, कुत्सित मन उसे धिक्कारने लगता है। वह बोझ लगने लगती है। अब चाहता है कि कैसे भी सिलिया से उसका पिण्ड छूटे। निरीह, निश्छल और भोली सिलिया तिरस्कार के घूँट पीकर भी मातादीन के चरणों में ही पड़े रहना चाहती है। जब चमारों की टोली गुस्से में मातादीन के मुँह में हड्डी डाल उसे धर्मभ्रष्ट कर देती है तब प्रायश्चित की अग्नि से उसकी हृदयस्थ मृत मानवीय संवेदनाएँ जीवित हो जाती हैं तो वह धर्म और समाज की मर्यादाओ के बंधन तोड़ सिलिया पूर्णरूपेण अपना लेता है। अंततः सारे गाँव की स्वीकृति भी उसे प्राप्त हो जाती है। मातादीन जहाँ हिंदू धर्म की चातुर्वर्ण्य समाज व्यवस्था के उच्च वर्ण ब्राह्मण का प्रतिनिधि है और सिलिया निम्न, दलित वर्ण की चमारिन है। यहाँ गोदान में यह दिखाया गया है कि कैसे धीरे-धीरे धर्म और समाज का आधार विवाह के

सीमाचिन्ह पदाक्रांत हो रहे हैं।

किशोर गोबर, विधवा झुनिया की चटक-मटक रसीली बातों, उफनते यौवन और सुख स्वप्नों में डूबा विवाह पूर्व ही शारीरिक सम्बन्ध स्थापित कर गर्भ ठहरा देता है। इस निर्मर्याद दुराचरण पर समाज की चढ़ी त्योरियों के संभावित भय से गोबर शहर भाग जाता है और सिलिया गोबर के घर में त्रण पाती है। उधर भोला झुनिया के इस कुकृत्य पर माथा पीट कुल कलंकिनी झुनिया को शरण, त्रण और स्वीकृति देने वाले होरी से प्रतिशोधस्वरूप उसके बैलों को खोल लाता है। कुछ वर्षों बाद शहरी रंग-ढंग, आचार-विचार से पुष्ट और पैसे की गर्मी मे मदमाता गोबर निर्भीक सिंह की भाँति गाँव पहुँचता है। भगोड़ा, कायर गोबर अब शेर बन चुका है। उसे अपनी करनी का कोई पछतावा, कोई लज्जा नहीं और गाँव पहुँचने पर यार दोस्तों, परिवारजनों से प्राप्त स्वागत वचनों और सत्कार की मंगल ध्वनि उसे उसके कुकृत्य के हल्के भारी भान से भी मुक्त कर देती है। गाँव में उसका परिवार कर्ज के कोल्हू में बँधा दम तोड़ रहा है। क्षण भर के लिए माँ की ममता, बाप का दुलार और बहनों का स्नेह, खेत-खलिहान उसके हृदय को भिगोते हैं। उसी आर्द्रता में वह महाजन रूपी भेड़ियों की ओर झपटता है, पर शीघ्र ही इसे नियति मान कर्ज और फर्ज को ठोकर मार झुनिया और अपने बच्चे को ले वापस शहर आ जाता है। उसका विवाह अब भी नहीं हुआ है और विवाह की जरूरत भी किसे है? न उन दोनों को, न उनके माँ बाप को और न ही समाज को।

इधर शहर में मालती और मेहता के सम्बन्ध कयासों, रहस्य और रोमांच से परिपूर्ण हैं। डॉ. मेहता यूनिवर्सिटी में दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर हैं और एक प्रगतिशील, आदर्शवादी, बुद्धिमान, व्यवहारकुशल, साफगोई पसंद इंसान हैं। इंग्लैंड से डॉक्टरी की शिक्षा प्राप्त मालती बेहद खूबसूरत, समझदार, रोशनखयाल, प्रखर, तेज तर्रार, चंचल, पुरुषों को अपनी अँगुलियों पर नचाने वाली और गजब की हाजिरजवाब है। सारे शहर में उसका प्रभाव है। खन्ना जैसा काइंया और अनुभवी उसके रूपजाल, नशीली चितवन और मादक अदाओं में फँसा पनाह माँग रहा है। परंतु मालती फिदा है मेहता पर।

मेहता के विवाह के सम्बन्ध में विचार हैं, ''मैं समझता हूँ, मुक्त भोग आत्मा के विकास में बाधक नहीं होता। विवाह तो आत्मा को और जीवन को पिंजरे में बंद कर देता है।'' मेहता आगे कहते हैं, ''विवाह को मैं सामाजिक समझौता समझता हूँ और उसे तोड़ने का अधिकार न पुरुष को है, न स्त्री को। समझौता करने के पहले आप स्वाधीन हैं, समझौता हो जाने के बाद आपके हाथ कट जाते हैं।'' मेहता की नजर में रूपरंग, हाव-भाव और नाजो अंदाज का कोई मूल्य नहीं, उसके लिए आत्मा की तृप्ति ही सबसे महत्वपूर्ण है। मेहता की नजर में औरत सेवा, तप और त्याग की मूर्ति है जो अपने को बिल्कुल मिटाकर पति की आत्मा का अंश बन जाती हैं। मेहता शुरू में उक्त गुण मालती में नहीं पाते परंतु बाद में मालती की नि:स्वार्थ सेवा और कर्मण्यता को देखकर उसके समक्ष विवाह प्रस्ताव रखते हैं। पर मालती कहती है, ''मैं महीनों से इस प्रश्न पर विचार कर रही हूँ और अंत में मैंने यह तय किया है कि मित्र बनकर रहना स्त्री-पुरुष बनकर रहने से कहीं सुखकर

है। मालती विवाह को बेड़ियों का बंधन और पिंजड़ा मानती है जिसमें आत्मा के महान गुणों का सम्पूर्ण विकास संभव नहीं। अतत: मेहता मालती का विवाह तो नहीं हो पाता पर मित्रता से कुछ आगे के सम्बन्ध जरूर बने रहते हैं।

रायसाहब की रीति–नीति, मान लिप्सा, झूठी शानोशौकत से आहत और क्षुब्ध रुद्रपाल भी बिना बताये सरोज से कोर्ट मैरिज कर लेता है। अब उनमें पिता पुत्र का नाता न था, प्रतिद्वंद्वी हो गए थे। उसने रायसाहब पर हिसाब फहमी का दावा कर दिया और सरोज को लेकर इंग्लैंड चला गया।

इस प्रकार विवाह जैसी संस्था पर जातिवर्ण गत बंधनों की शिथिलता, लिव इन रिलेशनशिप, असंतुष्टि, विवाह पूर्व शारीरिक सम्बन्ध, माता–पिता की पूर्वानुमति या पूर्व स्वीकृति की अनपेक्षा तथा स्वादर्शों, स्वार्थों, परिस्थितियों पर आधृत ढुलमुल रवैया आदि नें निर्मम प्रहार किए हैं, जो एक संक्रमणकालीन समाज के परिचायक हैं। पीढ़ीगत संघर्ष, पारिवारिक विघटन और विवाह जैसी संस्था के चरमराने जैसे बदलावों के नकारात्मक पहलू वर्तमान में अधिक भयावहता के साथ दिखाई दे रहे हैं। स्वतंत्रता स्वच्छंदता में परिवर्तित हो गई है, पारिवारिक प्रेम, अनुशासन, मान मर्यादा, चरित्र जिन पर समाज का सम्पूर्ण आदर्श ढाँचा खड़ा था, भरभरा कर टूटने लगा है। समाज मौन स्वीकृति देने के सिवाय कुछ नहीं कर सकता।

संदर्भ:-

1. प्रेमचंद और उनका युग, रामविलास शर्मा
2. गोदान, प्रेमचंद, वायु एजुकेशन ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, 2019, पृष्ठ सं.21, 79, 201, 262, 303, 338, 461
3. आधुनिक गद्य के विविध रूप, रामदरश मिश्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2016, पृष्ठ सं. 87, 88,94
4. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, नामवर सिंह, लोकभारती प्रकाशन, चतुर्थ संस्करण, 1960
5. प्रेमचंद: एक विवेचन, इंद्रनाथ मदान, पृष्ठ सं.102

सोमनाथ शर्मा, व्याख्याता (हिन्दी), विनीता नर्सिंग होम के पास, भायलापुरा, हिण्डौन सिटी, जिला : करौली (राजस्थान) – 322230
मो. : 9982482958, ई–मेल : somnathsharma2958@gmail.com

✧ ✧ ✧

अग्निस्नान

निरूपमा राय

'दाहिने तरफ का चेहरा, हाथ और सीने के साथ-साथ दाहिनी कमर के पास भी चमड़ी झुलस गई है ईश्वर की कृपा मानिए आँखें बच गई... और श्वसन तंत्र को अधिक नुकसान नहीं हुआ है.. हम पूरी कोशिश कर रहे हैं समीर स्वस्थ हो जाएगा। पर अभी आप सभी को बहुत दिनों तक धैर्य रखना होगा।' डॉक्टर ने समझाया था तो फूट-फूट कर रोती अनुराधा के मन में फिर यह प्रश्न कौंधा था, आखिर क्यों..? और किसने..? कौन ऐसा व्यक्ति है जिसे समीर से इतनी दुश्मनी हो गई कि उसने उस पर इस तरह से वार किया? सीधा-सादा, दुनिया की सभी बुरी आदतों से निर्लिप्त, मेरा इतना प्यारा बेटा... आखिर किसने एसिड अटैक किया? अनुराधा सोचती जाती थी और उसके मन मस्तिष्क में जैसे बवंडर-सा चलता जाता था।

"ऐसा कैसे हो सकता है? अभी अभी तो मेरा बेटा हँसता मुस्कुराता ऑफिस से लिए निकला था फिर कैसे-कैसे अस्पताल पहुँच गया?" रो-रोकर अनुराधा का बुरा हाल था। कुछ देर पहले ही अस्पताल से फोन आया था कि, समीर के साथ एक दुर्घटना हो गई है जल्द से जल्द वह लोग अस्पताल पहुँचे पति और दोनों बेटियों के साथ वह भागती हुई सिटी हॉस्पिटल पहुँची। अनुराधा के पति बैंक मैनेजर थे और दोनों बेटियाँ दिल्ली में ही ससुराल में सुखी जीवन जी रही थीं। सुनते ही सब संज्ञाशून्य से अस्पताल की ओर दौड़ पड़े थे। पिछले एक महीने से अनुराधा के घर में आनंद उत्सव जैसा माहौल था। आखिरकार उनके इकलौते बेटे की शादी दो महीने बाद होने वाली थी। परसों ही धूम-धाम से समीर और सुरभि की सगाई हुई थी। समीर एक मल्टीनेशनल कंपनी में काम करता था और सुरभि एम.बी.ए. के अंतिम वर्ष की छात्रा थी। दोनों परिवारों ने तय किया था कि, सुरभि की परीक्षाएँ होते ही विवाह संपन्न हो जाएगा। समीर और सुरभि की जोड़ी बहुत सुंदर लग रही थी। अनुराधा का हृदय आनंद हिंडोले झूल रहा था कि ये अप्रत्याशित घटना घट गई थी।

उसे लग रहा था था कि समीर की कार का एक्सीडेंट हो गया है।

'कितनी बार कहा है कार धीरे चलाओ... पर वह मेरी बात सुनता ही कहाँ है?' अनुराधा कहती जा रही थी, रोती जा रही थी।

अस्पताल पहुँचते ही जिस हृदय विदारक सच से सब का सामना हुआ, उस सच ने पूरे परिवार को हिला कर रख दिया था।

'एसिड अटैक!' पर क्यों? किसने..? कई प्रश्न थे जिसका उत्तर किसी के पास नहीं था। इस बात से केवल समीर पर्दा उठा सकता था जो अभी गहन चिकित्सा केंद्र में जीवन और मृत्यु से जूझ रहा था। एसिड अटैक इन दो शब्दों ने सबको सन्न दिया था। अनुराधा की विह्वलता की सीमा नहीं थी। बीसीयों बार उसने समीर के कमरे की शीशे की छोटी सी खिड़की से झांक कर देखा था। आई. सी. यू. के घने सन्नाटे में बिस्तर पर जडवत पड़े समीर को देखकर उनका कलेजा मुँह को आ रहा था। लंबा चौड़ा गोरा चिट्टा समीर अनायास भाग्य की कठिन विडंबना से विकृत स्वरूप में आने पर विवश हो गया था।

'दाहिने तरफ का चेहरा, हाथ और सीने के साथ-साथ दाहिनी कमर के पास भी चमड़ी झुलस गई है ईश्वर की कृपा मानिए आँखें बच गई... और श्वसन तंत्र को अधिक नुकसान नहीं हुआ है.. हम पूरी कोशिश कर रहे हैं समीर स्वस्थ हो जाएगा। पर अभी आप सभी को बहुत दिनों तक धैर्य रखना होगा।' डॉक्टर ने समझाया था तो फूट-फूट कर रोती अनुराधा के मन में फिर यह प्रश्न कौंधा था, आखिर क्यों..? और किसने..? कौन ऐसा व्यक्ति है जिसे समीर से इतनी दुश्मनी हो गई कि उसने उस पर इस तरह से वार किया? सीधा-सादा, दुनिया की सभी बुरी आदतों से निर्लिप्त, मेरा इतना प्यारा बेटा... आखिर किसने एसिड अटैक किया? अनुराधा सोचती जाती थी और उसके मन मस्तिष्क में जैसे बवंडर-सा चलता जाता था। समीर के बारे में सुनकर सुरभि और उसका परिवार भी भागता हुआ अस्पताल पहुँचा था। सबके मन में सवाल था कि आखिर किसने एक हँसते खेलते परिवार को दुख के अगाध सागर में डूबा दिया था। पुलिस भी पूरे जोर-शोर से आरोपी की तलाश में लग गई थी। घटना को एक सप्ताह बीत गया था पर अब तक पुलिस के हाथ में कोई सुराग नहीं लगा था। समीर का दर्द से छटपटाना, जल बिन मछली की तरह तड़पना अनुराधा और उसके पूरे परिवार को खंड-खंड में तोड़ता था। पर, उससे भी ज्यादा खंड में तोड़ने वाली बात यह थी कि एक-दो दिन अस्पताल आने की औपचारिकता निभाकर सुरभि और उसके परिवार वाले दोबारा अस्पताल में नहीं आए थे। कभी कभार फोन करके हाल-चाल पूछ लिया करते थे। एक महीना बीतते-बीतते फोन आने भी कम हो गए थे। आखिर सुरभि और उसके परिवार वालों के मन में क्या था?

'हमें इस शादी के बारे में दोबारा सोचना चाहिए एक माँ होने के नाते मैं अपनी बेटी का जीवन सूली पर कैसे चढ़ा सकती हूँ...?

'हाँ सुनंदा! तुम ठीक कह रही हो मैं भी इस बारे में सोच रहा हूँ! आखिर सुरभि हमारी इकलौती बेटी है, हमने जो सोचकर विवाह तय किया था अब वैसी बात रही नहीं है पता नहीं समीर कब तक बिस्तर से उठ सकेगा... क्या वह सही रूप से अपना जीवन जी सकेगा? हमें इन सब बातों पर विचार करना होगा।'

दरवाजे की ओट में खड़ी सुरभि माता-पिता की बातें सुन रही थी। उसके अंतर्मन में बहुत कुछ चल रहा था। एक तरफ उसका मन माता-पिता की दुविधा को अच्छी तरह समझ रहा था तो

दूसरी तरफ समीर के प्रति उसे गहरी सहानुभूति थी। पर संपूर्ण जीवन किसी ऐसे व्यक्ति के हाथ में..जो..? आगे वह सोच नहीं पा रही थी। माता-पिता ने उसे सब कुछ भुला कर आगे आने वाली परीक्षाओं पर ध्यान केंद्रित करने के लिए कहा तो वह फिर से कॉलेज आने जाने लगी। वहाँ भी लोग कई तरह के सवाल पूछते जिनका उत्तर सुरभि के पास नहीं था। ऊपर से वह पुलिस के सवालों से भी तंग थी। कई बार पुलिस उससे उसके और समीर के रिश्ते, विगत में उसका कोई बॉयफ्रेंड या समीर की कोई गर्लफ्रेंड तो नहीं थी, इन सब सवालों पर कई बार पूछताछ कर चुकी थी, जो उसे खिन्न बनाता था। पर वह करती भी क्या, मनुष्य परिस्थिति का दास होता है, ठीक ही कहती थी दादी, वह सोचती। दोनों परिवार भीषण उहापोह में थे। समीर का इलाज बहुत अच्छी तरह से चल रहा था माता-पिता ने पैसा पानी की तरह बहा दिया था। तरह-तरह की दवाइयाँ, प्लास्टिक सर्जरी किसी चीज में कोई कमी नहीं रखी थी। एक महीने में तीन सर्जरी हो चुकी थी जिसने समीर को जीवन से विरक्त-सा बना डाला था और ऐसी स्थिति में सुरभि का उस के पास नहीं आना और ना बात करना उसे बेहद खल रहा था। जिस दिन समीर बात करने लायक हुआ पुलिस ने उससे भी गहन पूछताछ की पर वहाँ से भी कोई हल नहीं निकला। समीर ने भीगी आँखों से माँ को देखते हुए किसी तरह धीमी आवाज में कहा- 'मैंने किसका क्या बिगाड़ा था माँ! मैंने जीवन में आज तक किसी से ऊँची आवाज में बात भी नहीं की तुम तो जानती हो फिर मेरा दुश्मन कौन है जिसने मेरी यह दुर्दशा कर दी? चेहरा देखा है मेरा कैसा टेढा हो गया है मेरे जिस सुंदर हाथ पांव को तुम भगवान के हाथ पांव कहा करतीं थीं वह देखो जलकर कैसे काले हो गए.. तुम्हारे बेटे ने अग्नि स्नान किया है माँ! अग्निस्नान! 'समीर फूट-फूटकर रो पड़ा था, और अनुराधा का ह्रदय जैसे छलनी हो उठा था। ठीक ही तो कह रहा है समीर उसने सचमुच अग्नि स्नान किया है।

अचानक समीर को याद आया उसने पूछा, माँ! सुरभि मुझे देखने रोज आती थी ना?

'वह लोग क्या आएंगे... मुझे तो लगता है अब शादी भी नहीं होगी... इसलिए तू अपने कलेजे पर पत्थर पहले ही रख ले समीर!' बड़ी बहन ने गुस्से से कहा तो अनुराधा ने उसे रोकते हुए कहा,

'नहीं! नहीं! ऐसा नहीं है.. उन्होंने ऐसा अब तक कुछ नहीं कहा..।'

'नहीं कहा तो अब कह देंगे.. इसके लिए अपने मन को तैयार कर लो माँ.. वो लोग गलत नहीं है ऐसी परिस्थिति में हर आदमी अपने भविष्य की ओर जरूर देखता है। क्या करोगी समीर की किस्मत में जो था, उसे मिला। हम कर ही क्या सकते हैं। 'बहनों के भी आँसू रुक नहीं रहे थे। समीर के पिता का दर्द भी उनकी आँखों से बहता था और समीर की स्थिति तो अंगारों पर लोटते उस व्यक्ति की तरह हो गई थी जिसे चारों ओर ऊँची-ऊँची दीवारों से घेर दिया गया हो। निकलने का कोई मार्ग शेष ही नहीं रह गया हो। ऊपर से तरह-तरह की दवाइयाँ, शरीर की असहनीय जलन, बार-बार सर्जरी, घाव की ड्रेसिंग पर मन के अंदर जो घाव पक रहे थे उसकी ड्रेसिंग क्या संभव थी? भीतर ही भीतर वह जो रोज अग्निस्नान करता था उससे निकलने का उसे कोई उपाय ही नहीं दिख रहा था। पूरा जीवन शून्य-सा नजर आने लगा था। समय अपनी चाल चल रहा था धीरे-धीरे.. वैसे भी कठिन समय में वक्त जैसे थम-सा जाता है और फिर वही हुआ जिसका डर

पूरे परिवार को सता रहा था। एक दिन सुरभि के पिता ने फोन करके संवेदना जाहिर की और कहा कि हमें माफ कर देना हम अब शादी नहीं कर सकते क्योंकि सुरभि हमारी इकलौती बेटी है। हमें उम्मीद है कि आप हमें समझने की कोशिश करेंगे। समीर के पिता अवाक् रह गए थे कहने के लिए कोई शब्द ही कहाँ थे। धीरे-धीरे तीन महीने गुजर गए। समय पर दवाइयों के सेवन और विभिन्न महत्वपूर्ण सर्जरी के कारण समीर की स्थिति अब पहले से थोड़ी सी ठीक थी। वह बायें हाथ से चम्मच लेकर खाना भी खाने लगा था। दाहिना हाथ अब तक ठीक नहीं हुआ था।

जब कभी वो आईने में अपना चेहरा देखता तो मानो फिर से अग्निस्नान की उसी चिर परिचित जलन से नहा उठता। किसी भी व्यक्ति पर किया गया एसिड अटैक उस व्यक्ति के शरीर पर ही नहीं आत्मा पर भी घातक होता है। शरीर तो स्वस्थ होकर एक न एक दिन ठीक हो जाता है, पर आत्मा का घाव कभी नहीं भरता। यह अग्निस्नान उसके जीवन की सभी प्रेमिल, कोमल, मनोहारी संवेदनाओं को भी जलाकर खाक कर देता है।

समीर पर एसिड अटैक होने के बाद जब सुरभि के माता-पिता ने इस शादी से मना कर दिया और सुरभि को पढ़ाई में मन लगाने के लिए कहा तो वो रोज कॉलेज जाने लगी, जहाँ वह जाना नहीं चाहती थी क्योंकि वहाँ विशाल था, उसका सहपाठी.., जो मन ही मन सुरभि से प्यार करता था और जब उसने अपने प्यार का इजहार किया था, तो सुरभि ने स्पष्ट कह दिया था कि, वो दोनों केवल दोस्त हो सकते हैं उनके बीच दूसरा कोई रिश्ता नहीं हो सकता। क्योंकि विजातीय होने के कारण सुरभि के माता इस शादी से मना कर देंगे। और विशाल ने ऊपरी मन से ही सही सुरभि की बात मान ली थी।

आज समीर के हृदय में सुरभि के साथ बिताए कुछ अनमोल क्षणों की चर्चे भी चुभन पैदा कर रही थीं। समीर के दिन-रात बहुत ही कठिन अवस्था में बीत रहे थे कि अचानक उसके जीवन में खुशियों का प्रवेश हुआ। एक दिन दरवाजे पर दस्तक होने पर अनुराधा जी ने दरवाजा खोला तो अपने सामने सुरभि को देखकर वह हतप्रभ रह गयीं। सुरभि ने उनके पाँव छूते हुए कहा, 'मुझे माफ कर दीजिए.. मैं अब तक दूसरों की बातें सुनती आई थी? पर अब मैं वही करूंगी जो मेरा हृदय कहता है। मैं ऐसी स्थिति में समीर का साथ नहीं छोड़ सकती।'

घर में आनंद की तरंग दौड़ गई। समीर के पिता ने सुरभि को आशीर्वाद देते हुए कहा, 'तुम तो हमारे अंधेरे जीवन में चिराग की तरह आई हो बेटी। समीर को तुम्हारी बहुत जरूरत है।'

और समीर, जो जीवन जीने का मोह तक छोड़ बैठा था फिर से जीवन की उमंग से नहा उठा। समीर और सुरभि घंटों तक एक-दूसरे का हाथ थामे बैठे रहे। 'मैं सदा तुम्हारा साथ दूंगी कभी तुम्हें छोड़कर नहीं जाऊंगी तुम्हारे ठीक होते ही हम शादी करेंगे..!' सुरभि ने स्नेह से कहा तो मानो अग्निस्नान की पीड़ा को भोगते समीर की आत्मा पर मरहम-सा लग गया। हे ईश्वर! तू बहुत दयालु है। तूने मुझे जीवन जीने का एक मकसद दे दिया।'

सुरभि अब प्रतिदिन समीर से मिलने आया करती, उससे ढेर सारी बातें करती, दोनों मिलकर आगामी भविष्य के सपने बुनने लगे थे। सुरभि के माता-पिता भी बेटी की जिद के आगे झुक गए थे और बेटी की बात मान ली थी। एक बार फिर से दोनों परिवार एक हो गए थे। फिर से घर में खिलखिलाहटें गूंजने लगीं थीं पर क्या सुरभि का मन सच में बदल गया था.. या इस बदलाव के पीछे कोई कहानी छिपी थी?

समीर पर एसिड अटैक होने के बाद जब सुरभि के माता-पिता ने इस शादी से मना कर दिया और सुरभि को पढ़ाई में मन लगाने के लिए कहा तो वो रोज कॉलेज जाने लगी, जहाँ वह जाना नहीं चाहती थी क्योंकि वहाँ विशाल था, उसका सहपाठी.., जो मन ही मन सुरभि से प्यार करता था और जब उसने अपने प्यार का इजहार किया था, तो सुरभि ने स्पष्ट कह दिया था कि, वो दोनों केवल दोस्त हो सकते हैं उनके बीच दूसरा कोई रिश्ता नहीं हो सकता। क्योंकि विजातीय होने के कारण सुरभि के माता इस शादी से मना कर देंगे। और विशाल ने ऊपरी मन से ही सही सुरभि की बात मान ली थी। इसीलिए सुरभि ने एक अच्छी बेटी का फर्ज निभाते हुए समीर से शादी के लिए हाँ कर दिया था। पर विशाल से मिलते ही उसके आँसुओं का बाँध टूट पड़ा। फूट-फूटकर रोती सुरभि ने कहा, 'यह क्या हो गया विशाल शायद मैंने तुम्हारे प्यार की अवहेलना की यह उसी का फल है सच कहती हूँ, मैं समीर के अच्छे व्यवहार के कारण उसके साथ जुड़ने लगी थी। न जाने किस दुष्ट और पापी ने समीर जैसे सीधे-साधे व्यक्ति का जीवन दुश्वार कर दिया। माँ पापा की बात मानकर शादी के लिए हाँ कही थी, अब उन्हीं के कहने से मना कर दिया लेकिन मेरा मन अपराध बोध से भर उठा है।'

विशाल मौन था, पर सुरभि ने देखा उसका चेहरा खुशी से खिल उठा था। उसने सुरभि के कंधो पर हाथ रखते हुए कहा।

'मैं तब भी तुम्हें प्यार करता था और अब भी तुम्हें प्यार करता हूँ। क्या अब हम शादी कर सकते हैं?'

'वहाँ शादी टूट गई, तो इसका यह मतलब बिल्कुल मत निकालना कि मेरे पापा इस विजातीय विवाह की अनुमति देंगे। तुम यह क्यों नहीं मानते, कि हम दोनों एक अच्छे दोस्त हैं। मैं शुरू से तुम्हें कहती आ रही हूँ कि हमारे बीच दोस्ती के सिवा कुछ नहीं हो सकता। इसलिए मैं अपना दोस्त समझ कर तुमसे अपना दुख बाँट रही हूँ। मेरे माता-पिता मेरे लिए एक-दूसरे लड़के से बात चला रहे हैं पर मेरा मन मुझे समीर की ओर ही खींचता है एक दोस्त होने के नाते तुम मुझे सलाह दो मैं क्या करूँ? माँ पापा की बात ना मानकर समीर से शादी कर लूँ या उस दूसरे लड़के से?' सुरभि ने पूछा तो वह क्रोध से तन कर बोला।

'अजीब लड़की हो तुम अपनी मनमानी से बाज नहीं आओगी उसका भी वही हश्र होगा जो समीर का..!'

'मतलब!' सुरभि ने चौक कर कहा।

'मतलब मतलब तुम्हारे और मेरे बीच जो भी आएगा ईश्वर उसको दंड देंगे.. और क्या?'

विशाल हड़बड़ा गया था। सुरभि का मुंह आश्चर्य से खुला रह गया उसने पूछा-

'कहीं तुमने ही तो एसिड?'

'अरे! अरे!.. मैंने एक बात कही.. मैं तुमसे प्यार करता हूँ मेरा चिढ़ना वाजिब है.. पर इसका मतलब यह तो नहीं कि मैंने..?' विशाल ने बार-बार सुरभि को समझाना चाहा पर फिर भी मन में एक गाँठ लेकर वो वापस आ गई। जैसे-जैसे दिन गुजरते जा रहे थे सुरभि का मन उसे चौन नहीं लेने दे रहा था। उसकी अंतरात्मा कह रही थी कि विशाल जैसा एक तरफा प्यार करने वाला प्रेमी इस तरह की घटना को जरूर अंजाम दे सकता है। और पुलिस को भी तो अब तक कोई सुराग नहीं मिला था कि किस ने समीर के साथ इतना घृणित कार्य किया था। एक दिन सुरभि ने अपने माता-पिता को खुलकर सारी बात बताते हुए कहा, 'पापा! क्या मानवता के नाते नहीं लगता कि हमें एक बार पुलिस को यह जानकारी देनी चाहिए कि यह विशाल भी हो सकता है।'

'और अगर नहीं हुआ तो?'

'नहीं हुआ तो ठीक है, लेकिन अगर हुआ तो? इसलिए पुलिस को बता देना ही ठीक होगा दूध का दूध और पानी का पानी हो जाएगा।' सुरभि अपने विचार पर दृढ़ थी। उसके पिता ने कहा, 'ठीक है बेटा! मैं तेरा हर परिस्थिति में साथ दूंगा।'

पुलिस की पूछताछ जारी थी। ऐसे में एक दिन सुरभि ने अपने मन का शक पुलिस के सामने जाहिर कर दिया। पुलिस अपनी कार्यवाही में लग गई और सुरभि ने फिर से समीर के जीवन में प्रवेश कर लिया। अब दोनों परिवार हर्षित थे, विवाह की तैयारियाँ चल रही थी। डॉक्टर ने कह दिया था कि छः महीने के बाद समीर की स्थिति में काफी सुधार हो जाएगा तो आप यह विवाह कर सकते हैं। कई महत्वपूर्ण सर्जरी के बाद समीर का चेहरा अब काफी हद तक सुधर गया था। सुरभि का मन हमेशा एक अनजाने भय से धड़कता रहता। अगर विशाल ही दोषी निकला तो समाचार पत्रों और मीडिया के माध्यम से यह खबर सब जगह फैल जाएगी कि विशाल ने सुरभि के कारण समीर पर एसिड अटैक किया। ऐसे में सुरभि अपनी बेगुनाही का सबूत कैसे दे पाएगी समीर को कि, उसके और विशाल के बीच कुछ नहीं था? क्योंकि यह समाचार पत्र और मीडियावाले इन दोनों के बीच अदृश्य तथ्य को ढूंढ-ढूंढ कर झूठ सच मिलाकर संसार के सामने लाएंगे तब तो सुरभि किसी को मुंह दिखाने के काबिल नहीं रहेगी। दिन-रात वह भी मानो एक अग्निस्नान ही कर रही थी। रोज समाचार पत्र देखना, टीवी के एक-एक न्यूज पर निगाह रखना उसकी रोजमर्रा की आदतों में शामिल हो गया था। वहीं दूसरी ओर समीर हर बात से बेखबर सुरभि के साथ का आनंद ले रहा था। दोनों आगामी जीवन के सपने बुनते रहते। और फिर वही हुआ जिसका अंदेशा सुरभि और उसके परिवार को था। विशाल ने अपना जुर्म कबूल कर लिया कि उसने ही सुरभि के प्रति एकतरफा प्रेम के कारण समीर पर एसिड अटैक किया था। सरकार के द्वारा एसिड बेचने पर बैन होने पर भी विशाल ने एसिड जहाँ से ली थी उस दुकानदार का भी पता चल गया। पुलिस ने इस बात की अच्छी तरह व्यवस्था कर दी थी कि कोई भी मीडिया सुरभि को परेशान ना कर सके। फिर भी कुछ समाचार पत्रों के संवाददाताओं ने और कुछ मीडिया कर्मियों ने फोन कर करके सुरभि

को परेशान कर डाला था। सुरभि का मन बहुत बेचैन था उसे लग रहा था कि, उसके सास-ससुर या समीर इस बात को कभी नहीं मानेंगे कि उसका विशाल के साथ कोई संबंध नहीं था। पूरी रात वह बेचैनी से करवट बदलती रही। उसने समीर से फोन पर बात की तो उसे सब कुछ सामान्य लगा। उसने सोचा कि मम्मी-पापा ने तो जरूर समाचार पत्र देखा होगा शायद समीर को नहीं बताया होगा। जब सुरभि ने अनुराधा से बात की तो अनुराधा भी उसे सामान्य लगी। डरते-डरते दूसरी सुबह अपने माता-पिता के साथ सुरभि समीर के घर गई तो वहाँ का माहौल बहुत खुशनुमा था। अनुराधा ने दौड़कर सुरभि का स्वागत किया और कहा, 'बेटा! हम सब तुम्हारे आभारी हैं आज तुम्हारे ही कारण पूरी दुनिया और हम सब यह जान सके, कि समीर पर एसिड अटैक किसने किया था। तुमने पूरी हिम्मत के साथ सच का साथ दिया। हम जानते हैं इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं तुम्हारी जैसी बहू पाकर हम तो धन्य हो गए।'

सुरभि के मन का बोझ थोड़ा हल्का हुआ। उसने धीमे कदमों से समीर के कमरे में प्रवेश किया और कहा, 'मैं सच कहती हूँ मेरा विशाल के साथ कोई संबंध नहीं था पर मेरे कारण मुझे माफ कर दो समीर!'

'समीर ने स्नेह से उसका हाथ पकड़ते हुए कहा,' तुम तो मेरी जीवनसंगिनी बननेवाली हो। तुम माफी क्यों मांग रही हो? आभार तो मुझे प्रकट करना चाहिए कि तुमने इस विकट परिस्थिति में भी मेरा साथ नहीं छोड़ा। तुम्हें नहीं पता जितनी जलन मुझे एसिड अटैक से नहीं हुई थी उससे ज्यादा पीड़ा तो तुम्हारे इनकार करने पर महसूस हुई थी। मैं दिन-रात भीषण जलन में जलता रहता था। आज वास्तव में अग्निस्नान से मुक्त हुआ हूँ शरीर और आत्मा सब शीतल लग रहे हैं।'

भाव विह्वल सुरभि ने समीर के कंधे पर सर टिका दिया, आँखों से आँसू बह निकले। अधर मौन थे पर हृदय चीख-चीख कर कह रहा था।

'हाँ! हाँ! मैं भी सच कहती हूँ कुछ महीनों से मैं भी अग्निस्नान का दंश झेलती रही हूँ पाप-पुण्य, झूठ-सच सही-गलत के घेरे में फंस कर बहुत जली हूँ.....पर आज तुम्हारी बातों से मेरी वह जलन शांत हो गई! और हम दोनों अग्निस्नान से मुक्त हो गए..!'

दोनों ने भीगी आँखों से एक-दूसरे को देखा। दोनों की आँखें भविष्य का सपना बुन रही थीं और ड्राइंग रूम में बैठे सभी परिजनों का सम्मिलित ठहाका इस तथ्य की पुष्टि कर रहा था कि आने वाले स्वर्णिम दिनों का शुभारंभ हो चुका है।

डॉ. निरूपमा राय, असिस्टेंट प्रोफेसर संस्कृत विभाग, पूर्णियाँ, विश्वविद्यालय, पूर्णियाँ
उर्सूलाईन कॉन्वेंट रोड, रंगभूमि हाता–पूर्णियाँ, बिहार–854301, मो. : 8340463730

✧ ✧ ✧

आलेख

अपने अपने अजनबी : पुनरावलोकन

आदित्य अभिनव उर्फ
डॉ. चुम्मन प्रसाद

उपन्यास ने प्रारम्भ में ही वृद्धा श्रीमती सेल्मा एकेलोफ के बारे में उपन्यासकार मुख्य पात्र योके के माध्यम से कहता है- योके अनुमान लगाती है- बुढ़िया कंजूस और शक्की तबीयत की होगी और उसको सामान से भरा हुआ घर खाली छोड़कर जाना न रुचा होगा- जाड़ों में काम-काज तो कुछ होता नहीं, और बर्फ के नीचे उतनी ठण्ड भी नहीं होती जितनी बाहर खुली हवा में, और बूढ़ों को चिंता किस बात की- एक ही जगह बैठे-बैठे पगुराते रहते हैं! अतीत की स्मृतियाँ कुरेद कर जुगाली करते हैं और फिर निगल लेते हैं।

आधुनिक हिंदी साहित्य में ही नहीं, भारतीय साहित्य में भी अपनी अमिट छाप छोड़ने वाले रचनाकारों में अन्यतम हैं अज्ञेय। 'अपने अपने अजनबी' सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' का तीसरा हिंदी उपन्यास है। यह उपन्यास तीन अध्यायों में विभक्त है- योके और सेल्मा, सेल्मा और योके। इन अध्यायों का नामकरण पात्रों के नाम के आधार पर किया गया है। इस उपन्यास पर अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव देखने को मिलता है। इस उपन्यास में अन्य पात्र हैं- ऐकेलोफ, जगन्नाथन और पॉल सोरेन। 'मृत्यु से साक्षात्कार' को विषय बनाकर मानव के जीवन और उसकी नियति का इतने कम शब्दों में मार्मिक और भव्य विवेचन इस उपन्यास की गरिमा का मूल है।

'अपने अपने अजनबी' कुछ आलोचकों, विचारकों की दृष्टि में हिंदी के साथ पूरे भारतीय साहित्य में अपने ढंग का अद्वितीय उपन्यास है। उपन्यास में मृत्यु को सामने पाकर कैसे प्रियजन भी अजनबी हो जाते है और अजनबी एक-एक पहिचाने हुए, कैसे चरम स्थिति में मानव का सच्चा चरित्र उभर कर आता है- उसका प्रत्यय, उसका अदम्य साहस और उसका विमल अलौकिक प्रेम भी वैसे ही और उतने ही अप्रत्याशित ढंग से क्रियाशील हो उठते हैं, जैसे उसकी निम्नतर प्रवृत्तियाँ...।

'अपने अपने अजनबी' के पात्र विदेशी हैं और कहानी भी विदेश में घटित होती है, पर अपनी गहराई में उपन्यास पूर्व और

पश्चिम का भी एक साक्षात्कार है। मृत्यु के प्रति जिन दो विरोधी भावों की टकराहट इसमें हैं, वास्तव में उनके पीछे पूर्व और पश्चिम की जीवन दृष्टियाँ है: वे दो दृष्टियाँ ही यहाँ मिलती हैं और मानव जीवन के एक नए आयाम का उन्मेष करती हैं। पुस्तक के प्रारंभ में दी गई इस परिचयात्मक टिप्पणी से अवगत होने के बाद इस उपन्यास को पढ़ना और उसके भीतर यात्रा करना और भी आसान हो जाता है। कदाचित् पूर्व और पश्चिम में मृत्यु के प्रति दो विरोधी भावों के टकराहट की खोज और उनकी पीछे की जीवन-दृष्टियाँ उद्घाटित करना इस उपन्यास के नए आयाम का उन्मेष है।

'अपने अपने अजनबी' उपन्यास की शुरुआत योके और श्रीमती सेल्मा एकेलोफ के बीच वार्तालाप से होती है। प्रार्थना की मुद्रा से खड़ा होते हुए श्रीमती एकेलोफ कहती हैं 'क्यों, योके, तुम डर तो नहीं गयी?'

योके को प्रश्न अच्छा नहीं लगा। उसने कुछ रुखाई से कहा 'किससे ?'

श्रीमती एकेलोफ ने कहा 'हमलोग बर्फ के नीचे दब गए हैं। अब न जाने कितने दिन यों ही कैद रहना पड़ेगा। मैं तो पहले ही एक-आध जाड़ा यों ही काट चुकी हूँ; लेकिन तुम...।'

योके ने कहा 'मैं बर्फ से नहीं डरती। डरती होती तो यहाँ आती ही क्यों? इससे पहले आल्प्स में बर्फानी चट्टानों की चढ़ाइयाँ चढ़ती रही हूँ- एक बार हिमनदी से फिसल कर गिरी भी थी। हाथ-पैर टूट गये थे- बच ही गयी। फिर भी यहाँ भी तो बर्फ की सैर करने ही आई थी।' (पृष्ठ 08)

अकेलेपन, कट जाने की पीड़ा, मृत्युबोध, भय और संत्रास का बोध उपन्यास में आरम्भ से ही दृष्टिगत होता है। योके सोचती है 'क्या सचमुच आण्टी सेल्मा का यही अनुमान है कि वे दोनों अब बचेंगी नहीं- यहीं बर्फ से ढका हुआ काठ का बँगला उनकी कब्र बन जायेगा? बल्कि बन क्या जायेगा, कब्र तो बनी-बनायी तैयार है और उन्हीं को मरना बाकी है। कब्र तो समय से बन गयी है- उन्हें ही मरने में देर हो गई है।' (पृष्ठ 11)

उपन्यास ने प्रारम्भ में ही वृद्धा श्रीमती सेल्मा एकेलोफ के बारे में उपन्यासकार मुख्य पात्र योके के माध्यम से कहता है- योके अनुमान लगाती है- बुढ़िया कंजूस और शक्की तबीयत की होगी और उसको सामान से भरा हुआ घर खाली छोड़कर जाना न रुचा होगा- जाड़ों में काम-काज तो कुछ होता नहीं, और बर्फ के नीचे उतनी ठण्ड भी नहीं होती जितनी बाहर खुली हवा में, और बूढ़ों को चिंता किस बात की- एक ही जगह बैठे-बैठे पगुराते रहते हैं! अतीत की स्मृतियाँ कुरेद कर जुगाली करते हैं और फिर निगल लेते हैं। (पृष्ठ 12)

इस उपन्यास में प्रयोगधर्मी शब्दशिल्पी अज्ञेय ने उपन्यास के लिए नए शिल्प का प्रयोग किया है। उपन्यास डायरी के रूप में आगे बढ़ता है। 15 दिसम्बर को योके के मन में मृत्यु के उपरांत फरिश्ते के सामने मृतात्मा द्वारा दिए जाने वाले हिसाब-किताब का विचार उभरता है। वह यह निर्णय नहीं ले पाती कि इन दोनों में मृतात्मा कौन है और फरिश्ता कौन है? खैर, वह फरिश्ता आण्टी सेल्मा को मानती है।

16 दिसम्बर योके के मन में सृष्टि और मानव जीवन विकास की बात आती है। वह सोचती है कि सूर्य ही सृष्टि का केंद्र है। वह मन ही मन सोचती है 'पृथ्वी भी सूरज की ओर खिंचती भी है और सूरज से परे ठेलती भी रहती है। इसी तरह अंकुर भी जड़ों को नीचे की ओर फेंकता और बढ़ता है सूरज की ओर। हम जड़ें कहीं नहीं फेंकते, या कि सतह पर ही इधर-उधर फैलाते है, लेकिन जीते हैं सूरज के सहारे ही; अनजाने ही वह हमारे जीवन की हर क्रिया को, हर गति को अनुशासित कर रहा है। हम सब मूलतया सूर्योपासक हैं; और हमारे चिंतन में चाहे जो कुछ हो, हमारे जीवन में सूर्य ईश्वर का पर्याय है। सूर्य और ईश्वर, सूर्य और समय, इसलिए सूर्य और हमारा जीवन- जहाँ सूर्य नहीं है वहाँ समय भी नहीं है। (पृष्ठ 16)

बुढ़े व्यक्तियों के जीवन में उत्कंठा कैसे खत्म हो जाती है, इसका बड़ा ही सुंदर और मनोवैज्ञानिक चित्रण अज्ञेय यहाँ करते हैं- योके ने कहा 'सभी अपने भविष्य को बहुत अधिक दुर्ज्ञेय और जटिल मानते हैं। उसे जानना चाहने की उत्कंठा का ही यह दूसरा पहलू है- जितना ही जानना चाहते हैं उतना ही उसे दुरूह मानते हैं।'

बुढ़िया ने वैसे ही मुसकराते हुए कहा नहीं, मेरे साथ यह बात शायद नहीं है। उस दृष्टि से तो मेरा भविष्य बहुत ही आसान है। कुछ भी जानने को नहीं है उत्कण्ठा है। (पृष्ठ 24)

जीवन से मृत्यु का जुड़ना ही जीवन की परिपूर्णता है। जीवन की सांध्यबेला में जब मृत्यु अपने आने की आहट देने लगती है तब कुछ लोग इसकी दूर से आती आवाज को पहचानने लेते हैं। उनको मृत्यु का पूर्वाभास हो जाता है। बूढ़ी ऑण्टी सेल्मा को मृत्यु का पूर्वाभास हो चुका था। वह योके से पूछती है 'योके! तुम चाहती हो कि मैं मर जाऊँ?'

ताश के पत्ते योके के हाथ से गिर गए और उसने अचकचा कर पूछा 'क्या- यह कैसी बात है, सेल्मा!' उसे ऑण्टी कहना भी वह भूल गई।

सेल्मा ने कहा 'मैं बुरा नहीं मानती, योके, तुम्हारा वैसा चाहना ही स्वाभाविक है। मैं भी चाहती हूँ कि मर जाऊँ, पर मेरे चाहने की तो अब जरूरत नहीं है। मैं जानती हूँ कि बहुत दिन बाकी नहीं हैं।' योके ने सँभलते हुए कहा 'नहीं ऑण्टी, अभी ऐसी कौन सी बात है--- तुम तो अभी बहुत दिन।'

''तुम्हारा ऐसा कहना भी स्वाभाविक है- तुम्हें कहना ही चाहिए। लेकिन मैं जानती हूँ और आज मैं इतनी खुश हूँ कि तुम से कह ही दूँ, जिससे कि कल तक यह बात तुम्हारे लिए पुरानी हो जाये - - योके! मैं बीमार हूँ और मुझे मालूम है कि अगला वसंत मुझे नहीं देखना है।'' (पृष्ठ 26)

चारों तरफ से बर्फ से ढके काठ के बँगले में बंद योके के मन में मृत्यु का संत्रास व्याप्त है। वह सोचती है ऑण्टी सेल्मा के बारे में कि किस तरह सेल्मा के अंदर किसी तरह का विरोध नहीं है- न स्वयं के प्रति, न उसके (योके) प्रति, न मृत्यु के प्रति। वह आश्चर्यचकित है कि कोई व्यक्ति जिजीविषा से परे कैसे हो सकता है? यदि अनासक्ति की बात करें तो सब कुछ से अनासक्त हुआ जा सकता है लेकिन जीवन से अनासक्ति भला कैसे संभव है? यहाँ हमे

श्रीमद्भगवत् गीता का निष्काम कर्मयोग का ऐसा स्वरूप दिखाई पड़ता है जो परिस्थितिजन्य है। सेल्मा का सुख-दु:ख से नि:स्पृहता, मन से उद्वेग और विरोध का मिट जाना, जीवन-मृत्यु से अनासक्तता का भाव उसे स्थिरप्रज्ञ बना दिया है। श्रीमद्भगवत् गीता मे श्रीकृष्ण कहते हैं ---

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान।

आत्म्न्येवात्मना तुष्ट: स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते

अर्थात् हे अर्जुन! जिस काल में यह पुरुष मन में स्थित सम्पूर्ण कामनाओं को भली-भाँति त्याग देता है और आत्मा से आत्मा में ही संतुष्ट रहता है, उस काल में वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है। (श्रीमद्भगवत् गीता 02-55)

कहते है कि बच्चे और बूढ़े दोनों समान होते हैं। बुढ़ापे में आदमी बच्चों की तरह व्यवहार करने लगता है। बुढ़िया सेल्मा की मन:स्थिति बच्चे जैसी हो गई है। जिस प्रकार दु:खी-असंतुष्ट होने पर बच्चा अपने खिलौने को तोड़ने-फोड़ने लगता है उसी तरह से सेल्मा भी मृत्यु के संत्रास से भयभीत हो भण्डार घर में जाकर बच रहे सामानों पर अपना गुस्सा निकालती है। यहाँ तक कि किवाड़ (दरवाजे) पर भी लकड़ी से प्रहार करती है। यह और बात है कि लकड़ी उसके हाथ से छूट जाता है और उसके मुँह से गाली निकलता है 'निकम्मा मुरदा हाथ।'

यहाँ योके को लगता है कि सेल्मा भी मानुषी है जो अब तक स्थितप्रज्ञ की भाँति व्यवहार कर रही थी, वह भी हाड़-मांस की गुणदोषयुक्त मानवी है।

अभी तक आलोचकों की नजर में अज्ञेय की यह प्रसिद्ध उपन्यास अस्तित्ववादी दर्शन पर आधारित माना जाता रहा है लेकिन सूक्ष्म पर्यवेक्षण करने पर यह तथ्य स्थापित होता है कि अज्ञेय की दृष्टि में ईश्वर, जीवन और मृत्यु इन तीनों का अपना स्वरूप है जो कि मनस्थितियों के अनुरूप विकसित और तिरोहित होता है। सेल्मा का दु:ख-सुख से तटस्थ होकर अनासाक्त भाव से जीवन को जीना कहीं-न-कहीं ईश्वर-जीवन-मृत्यु तीनों को इस प्रकार एकाकार कर देता है कि अलग-अलग समझना सर्वथा असंगत प्रतीत होता है।

6 जनवरी के रात में योके ने पूछा 'ऑण्टी सेल्मा! मैं एक बात अक्सर सोचती हूँ- पूछना चाहती हूँ- वह क्या है जो तुम्हें सहारा देता है, जब कि मुझे डर लगता है?

थोड़ी देर बाद सेल्मा बोली 'क्या सचमुच ऐसा है? मुझे किसका सहारा है, मैं नहीं जानती हूँ। ईश्वर का है, यह भी किस मुँह से कह सकती हूँ? शायद मृत्यु का ही सहारा है। वह है, बिलकुल पास है, सामने खड़ी है --- लगता है कि हाथ बढ़ाकर उसे छू सकती हूँ और यह कहने में और इसमें क्या फर्क है कि हाथ बढ़ाकर उसका सहारा ले सकती हूँ? ईश्वर-ईश्वर का नाम ले लेना तो बड़ा आसान है, लेकिन बड़ा मुश्किल भी है और मौत और ईश्वर को हम अलग-अलग पहचान भी तो कभी-कभी ही सकते हैं। बल्कि शायद मन से ईश्वर को तब तक पहचान नहीं सकते जब तक कि मृत्यु में ही उसे न पहचान ले।

फिर वह आगे कहती है भ्रम भी क्या ईश्वर है? और ईश्वर की कौन-सी पहचान हमारे पास है जो भ्रम नहीं है? जब ईश्वर पहचान से परे है तो कोई भी पहचान भ्रम है। ईश्वर को हम

कैसे जान सकते है? जो हम जान सकते हैं वे कुछ गुण हैं --- और गुण हैं इस लिए ईश्वर के तो नहीं हैं। हम पहचानते हैं अनिवार्यता, हम पहचानते हैं अंतिम और चरम और सम्पूर्ण और अमोघ नकार--- जिस नकार के आगे और कोई सवाल नहीं है और न कोई जवाब ही - - - - - इसी लिए मौत ही तो ईश्वर का एक मात्र पहचाना जा सकने वाला रूप है। पूरे नकार का ज्ञान ही सच्चा ईश्वर-ज्ञान है, बाकी सब सतही बातें हैं और झूठ हैं। (पृष्ठ 46)

पूरे उपन्यास में मृत्यु का आभास पग-पग पर मिलता है। योके जब 7 जनवरी रात्रि के बाद सुबह जगती है और नाश्ता बनाकर स्वयं नाश्ता करने के उपरांत एक तश्त में कहवा रखकर बुढ़िया के कमरे में जाती है तो उसे आसन्न मृत्यु-गंध से कमरा भरा हुआ प्रतीत होता है।

जब दर्द अपनी सीमा को अतिक्रमित करता है दवा बन जाता है। मृत्युभय भी एक सीमा के बाद भय नहीं रह जाता। स्वचालित यंत्र की भाँति योके के हाथ जब बूढ़ी सेल्मा के गले की इर्द-गिर्द फिरने लगते हैं तो जरा भी हिले-डुले सेल्मा कहती है 'मेरा तो खुद कई बार मन हुआ कि तुमसे कहूँ, मेरा गला घोंट दो ---- कहने का साहस नहीं हुआ। लेकिन तुम रुक क्यों गयीं?' यहाँ मृत्युभय बिलकुल जा चुका है।

पूरे उपन्यास में सेल्मा की देह से छूटने वाली मृत्यु-गंध व्याप्त है तो दूसरी ओर योके द्वारा मौत और ईश्वर से प्रतिशोध में की गई आत्महत्या एक संत्रास की अनुगूँज से आक्रांत करती है। मृत्यु की संभाव्यता हमारी संवेदनाओं को कितनी गहराई देती है और संवेदनाओं से लैस होकर ही हम इस मृत्यु को कितनी नजदीकी से छू सकते है, सहला सकते है, यह इस उपन्यास के द्वारा निर्मित पारिस्थितिक साक्ष्यों का साध्य है।

पल-पल मृत्यु के समीप होती जा रही सेल्मा के प्रति योके के मन में भाव उमड़ते हैं मृत्यु के बाद प्रेत वही होता है जो अपने पर तरस खाते हुए मरता है --- नहीं तो प्रेत-योनि में कोई जा ही नहीं सकता। प्रेत होने के लिए अतृप्त वासना या आकांक्षा काफी नहीं हैं। ऐसे अतृप्त तो दुनिया में सभी मरते हैं, तो क्या सभी प्रेत हो जाते हैं? लेकिन जो अतृप्त आकांक्षा अपने ही पर तरस खाने की प्रवृति पैदा करती है, वही प्रेत होता है। लेकिन बुढ़िया की दया अपनी ओर मुड़ी हुई नहीं है और कभी-कभी मुझे लगता है कि वह प्याला-तश्तरी भी उठाती है या कि आग की ओर भी हाथ बढ़ाती है, तो मानो इन निर्जीव चीजों को भी दुलारती और असीसती है। आग को असीसती है- वह, जिसे आग को देख कर रिरियाना चाहिए क्योंकि अभी उस के भीतर की आग बुझ जायेगी और वह हो जायेगी क्या? राख -- राख से भी कम! उसे देखते-देखते मेरा मन होता है कि जोर से चीखूँ, कि जलती हुई लकड़ी उठा कर उसकी कलाइयों पर दे मारूँ जिससे उसका आग को असीसने का दुस्साहस करने वाला हाथ नीचे गिर जाये -- - एकाएक जिसके सदमे से उसकी हृदयगति बंद हो जाये। (पृष्ठ 34)

मरनासन्न सेल्मा का मृत्यु के प्रति निर्लिप्तता का भाव योके को भीतर ही भीतर मथ देता है। वह सोचती है कि कहीं-न-कहीं जरुर इस बुढ़िया के भीतर भी मृत्यु का संत्रास होगा ही और जब उसे सेल्मा के स्वर में चिड़चिड़ापन का आभास मिलता है तो उसके अंदर विजय का गर्व उमड़ आता है --- उसके स्वर में जो चिड़चिड़ापन था, ऊ! उससे मुझे कितनी तृप्ति मिली। तो

बुढ़िया का कवच भी नीरंध्र नहीं है, कहीं उसमें भी टूट है ---कहीं ना कहीं वह भी मृत्यु से डरेगी और रिरिया कर कहेगी कि नहीं, मैं मरना नहीं चाहती! एक प्रबल दुर्दमनीय उल्लास, एक विजय का गर्व मेरे भीतर उमड़ आया। (पृष्ठ 36) इस प्रकार का व्यक्तिवाद और उसके प्रभाव से उपजी हिंसात्मकता भी पाश्चात्य अस्तित्ववादी चिंतन-सरणि की देन है, जिसमें अज्ञेय की आस्था और आस्तिकता उलझती-सी प्रतीत होती है।

जहाँ तक इस उपन्यास के सम्बंध में सुधी पाठकों और समीक्षकों का मत है और स्वयं अज्ञेय ने भी अपना अभिमत दिया है कि यह एक विचार प्रधान उपन्यास है, लेकिन जैसा कि कथा के प्राण-तत्व की बात करें तो वह कहीं-न-कहीं संवेदना में होता है --- और इस उपन्यास के पृष्ठ 80 का यह अंश पाठक के संवेदना को चरम पर ले जाता है और उसे झकझोर कर रख देता है जब जल-प्रलय की विभीषिका में यान (एकेलोफ) अपना सब कुछ खत्म हो जाने बाद अपनी अंतिम पूँजी को देकर सेल्मा से भोजन सामग्री खरीदकर भोजन तैयार कर सेल्मा के दुकान में रात में आता है और बातचीत के दरम्यां कहता है 'अपनी अंतिम पूँजी देकर यह अंतिम भोजन खरीदा है। इसे अकेले नहीं खा सकूँगा।' (पृष्ठ 80)

परिस्थितियों में उलझी योके ने सेल्मा की मृत्यु होने पर सोचा था- ईश्वर भी शायद स्वेच्छाचारी नहीं है- उसे भी सृष्टि करनी ही है, क्योंकि उन्माद से बचने के लिए सृजन अनिवार्य है। वह सृष्टि नहीं करेगा तो पागल हो जाएगा... क्या यही रहस्य था, जिसका कुछ आभास सेल्मा को मिला था - कि वरण की स्वतंत्रता नहीं है, लेकिन रचना फिर भी संभव है और उसमें ही मुक्ति है? पुनः सृष्टि के लिए सेल्मा की मृत्यु का औचित्य सिद्ध करने वाली योक की तर्कशक्ति तब छिन्न-भिन्न होकर रह जाती है, जब वह स्वयं अपने शहर के युद्धग्रस्त होने पर आत्महत्या कर लेती है। इस प्रकार अज्ञेय कई बार पाश्चात्य जीवन दृष्टि के यथार्थ को हमारे सामने सरका कर उसमें अंतर्निहित खोखलों को निर्ममता के साथ उजागर करते हैं।

प्रयोगधर्मी अज्ञेय ने पाश्चात्य व्यक्तिवादी अस्तित्ववाद को भारतीय चिंतन के हाथों का सहारा देकर उपन्यास को एक खूबसूरत मुकाम दिया है --- योके ने सोचा था कि सेल्मा ही मृत्यु के ठंडे हिमपंजों में अंतिम साँसें लेती हुई सबको मौत की ओर लिए जा रही है, किंतु होता इसके उल्टा है। योके स्वयं भी बाद में आत्महत्या कर लेती है और बर्फ को भी कँपा देने वाले इस ठंडे परिवेश में जगन्नाथन् के गर्म हाथ ही सहारा देने को आते हैं। इस प्रकार इस उपन्यास में एक भारतीय जगन्नाथन् की भूमिका भारतीय विचारधारा का पाश्चात्य आस्तित्ववादी दर्शन पर सुंदर-सहज आरोपन है।

अज्ञेय अपने विचारप्रधान चिंतन से 'अपने अपने अजनबी' में एक आस्था का नन्हा पौधा रोपते हैं उसे अपने परिस्थितिजन्य तर्कों से गोंड़ सींच कर विशाल रूप देते हैं। रामस्वरूप चर्तुवेदी कहते हैं कि- 'अपने अपने अजनबी' में लेखक की आस्था का रूप निखरता और थिरता दिखाई देता है।... ईश्वर का प्रमाण उसकी रचना की विराटता है, जो आगे के मानवीय सर्जनात्मक संचरण को संभव बनाती है। लेखक की आस्था के इस नवीन आयाम के पीछे उसकी यूरोप यात्रा विशेषत: 'पिएर-क्वि-वीर' मठ में निवास और जापान की जेन पद्धति का भी सूक्ष्म प्रभाव देखा

जा सकता है। 'अपने अपने अजनबी' में ईसाई आस्था और सहिष्णुता का अस्तित्व रूप वर्णन के स्तर पर तो है ही, सर्जन के स्तर पर भी झलकता जान पड़ता है - एक प्रेरक शक्ति के रूप में लेखक की निजी आस्था को और गहरा करता हुआ।'1

इस प्रकार मृत्यु के सामीप्य के द्वारा जीवन को और बेहतर ढंग से समझने का उपक्रम है 'अपने अपने अजनबी' और इसमें भारतीय जीवन दृष्टि के (हिंदू, बौद्ध, जैन) के साथ ईसाई धर्म की सुगंध मिलकर मृत्यु-गंध को उदात्त बना देती है--- 'क्यों उसे तकलीफ होती देखकर मुझे संतोष होता है? लेकिन तकलीफ तो शायद उसे बराबर रहती है- क्योंकि उसे तकलीफ से टूटते हुए देखकर मुझे तसल्ली होती है? कितना कमीना है यह संतोष, जो दूसरों को हारते और टूटते हुए देख कर संतुष्ट होता है- क्या यह एक अत्यंत विकृत ढंग की जिजीविषा नहीं है?'' (पृ. 41) यहाँ पर भी अज्ञेय की सारी छटपटाहट दूसरों के लिए स्वयं के समर्पण की भारतीय दृष्टि में प्रतिफलित है-- 'इस बिना कफन की कब्र से क्या पहले की ही अवस्था अच्छी नहीं थी? बर्फ के नीचे दब कर मर जाना भी मर जाना है।

लेकिन वह दबकर मरना तो है। उस में कार्य कारण की संगति तो है। लेकिन यह बिना दबे, बिना बर्फ को छुए भी अहेतुकर मर जाना - मानो हमारे जीवन के अनुभव का अपमान करता है और हम मरने पर भी अनुभव का खंडन सहने को तैयार नहीं। शायद यह हमारे इस करुण विश्वास का- विश्वास के कामना का फल है कि अगर अनुभव है तो हम भी हैं, और अगर कोई अनुभव हमें हुआ है तो हमारे मर जाने पर भी वह नहीं मरता और एक धनात्मक उपलब्धि के रूप में बचा ही रह जाता है।' (पृष्ठ 55) इस प्रकार अहं विसर्जन की भारतीय अवधारणा का सुंदर उदाहरण यहाँ अज्ञेय ने उपस्थित किया है।

'समय नापने के कई तरीके हैं। एक घड़ी का है, जो शायद सबसे घटिया तरीका है, क्योंकि उसका अनुभव से कम से कम संबंध है। दूसरा तरीका दिन और रात का है, सूर्योदय और सूर्यास्त का, प्रकाश और अँधेरे का और इन से बँधी हुई अपनी भूख-प्यास, निद्रा-स्फूर्ति का है। यह यंत्र के समय को नहीं, अनुभव के समय को नापने का तरीका, इसलिए कुछ अधिक सच्चा और यथार्थ है। फिर एक तरीका है, घरघराते पानी में बहते हुए भँवरों को गिन कर और उनके ताल पर बहती हुई साँसों को गिन कर समय को नापने का तरीका। यह और भी गहरे अनुभव का तरीका है, क्योंकि यह समय के अनुभव को जीवन के अनुभव के निकटतर लाता है।' समय और समय-मुक्त, काल और कालनिरपेक्ष, अनित्य और सनातन की सीमा-रेखा और क्या है--- सिवा हमारी साँसों के और साँस की चेतना में होने वाले जीवन-बोध के।' (पृष्ठ 68) यहाँ पर अज्ञेय अनुभव की प्रामाणिकता के प्रति अपनी अडिग आस्था ही प्रकट करते हैं जो कि भारतीय पारंपरिक उपलब्धि है।

'काले, गोरे, और भूरे चेहरे, काले, लाल, पीले, भूरे, गेहुएँ, सुनहले और धुले बाल, रंग पुते और रूखे चेहरे। चुन्नटदार, इस्तरी किए हुए और सलवट-पड़े हुए कपड़े य चमकीले और कीच-सने चरमराते या फटफटाते या घिसटते हुए जूते। और चेहरों में, आँखों में, कपड़ों में, सिर से पैर तक हर अंग की क्रिया में निर्मम जीवैषणा का भाव मानो वह दुकान सौदे सुलुफ या रसद की

दुकान नहीं है बल्कि मानो जीवन की ही दुकान है।' (पृष्ठ 98) इस उद्धरण में जीवन का दुकान के रूप में अवमूल्यन कहीं-न-कहीं भौतिकतावादी जीवनदृष्टि पर कटाक्ष है। यहाँ अज्ञेय विशुद्ध भारतीय हैं जो पाश्चात्य भौतिकतावादी जीवन दर्शन को नकारते हैं।

मुझे ऐसा लगता है कि 'अपने अपने अजनबी' में अज्ञेय में बार-बार भारतीय पारंपरिक विचारों के समक्ष पाश्चात्य चिंतन की खिंचाई करते हैं, किंतु अपनी भाषा को संतों की तरह अटपटी रखते हुए। उपन्यास के इन पक्षों पर समीक्षकों का ध्यान न जाना चिंतनीय है।

अज्ञेय का यह उपन्यास भाषा-शैली और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से अनूठा है। अज्ञेय ने 'अपने अपने अजनबी' की भाषा को तत्सम बहुल शब्दों की अपेक्षा तद्भव बहुल और देशज शब्दों वाली बना कर अपनी पूर्व परिचित भाषा को अपने आभिजात्य के क्षितिज से उतार कर जन सामान्य के बीच पहुँचाया है। इसीलिए यह भाषा सपाटबयानी और खुलेपन का अनुसरण करती है। बोलचाल के सहज और ठेठ देशज शब्द इसमें उपस्थित है तो प्रचलित-अप्रचलित विदेशज शब्द भी। उदाहरण स्वरूप --- 'काले, गोरे, और भूरे चेहरे, काले, लाल, पीले, भूरे, गेहुएँ, सुनहले और धुले बाल, रंग पुते और रूखे चेहरे। चुन्नटदार, इस्तरी किए हुए और सलवट-पड़े हुए कपड़े : चमकीले और कीच सने चरमराते या फटफटाते या घिसटते हुए जूते।' एक ढंग से यह रचना लेखक को एक अभिनव सृजनात्मकता से समृद्ध बना देती है, क्योंकि वह सहजता से असहज की अभिव्यक्ति का रास्ता इस रचना के क्षेत्र में पा लेता है। विचार जितने अपरिचित और चौंकाने वाले हैं, भाषा उतनी ही परिचित और जानी-पहचानी लगती है। उन्होंने यहाँ उपन्यास में कहानी का रंग भरा है और उपन्यास के भीतर कविता भी घटित की है। उन्होंने अपनी इस रचना मे उपन्यास को पूरी तरह घटित न करके संभावनाओं के अनंत द्वार खोले हैं, अपने लिए और रचना का पाठ करने वालों के लिए। रचना में शुरू से अंत तक सन्नाटे के बीच का तनाव, उसके भीतर एक करुण संगीत की तरह बजता है, जो लगभग घटनाहीन किंतु पारिस्थितिक दबाव से भरे परिवेश में पाठक को तंद्रिल सांवेदनिक आस्वाद से भरता है और बार-बार उठने वाले विचारों की लहरों से झकझोरता है। इसलिए यह उपन्यास आकार में लघु होते हुए भी वृहताकार कलेवर का सृजन करता है।

संदर्भ -

1. अज्ञेय की आधुनिक रचना की समस्या - डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृष्ठ 95

आदित्य अभिनव उर्फ डॉ. चुम्मन प्रसाद, सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग भवंस मेहता महाविद्यालय भरवारी, कौशाम्बी, यू. पी.–212201, मो. : 7972465770, ई–मेल : chummanp2@gmail.com

✧ ✧ ✧

'नरेंद्र कोहली के उपन्यासों में स्वामी विवेकानंद का जीवन चरित्र' पुस्तक की समीक्षा

अमित कुमार मिश्रा

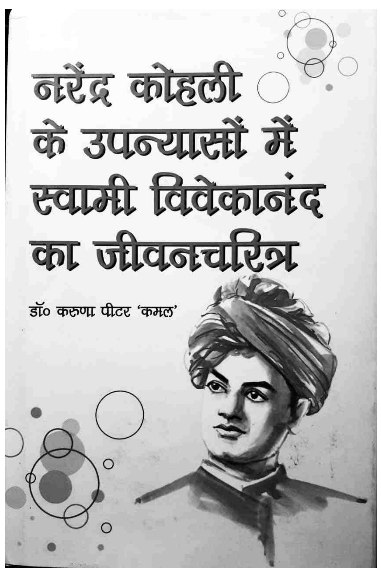

पुस्तक : नरेंद्र कोहली के उपन्यासों में स्वामी विवेकानंद का जीवन चरित्र
लेखिका : डॉ. करुणा पीटर 'कमल'
प्रकाशक : नोवेल्टी एंड कंपनी, अशोक राजपथ, पटना
मूल्य : 795/-

किसी कृति की समीक्षा एक चुनौती भरा कार्य भी है और आवश्यक भी। चुनौतियाँ वहाँ खड़ी होती हैं जहाँ रचना का समग्र मूल्यांकन किसी कारण वश जटिल हो जाता है। आवश्यक इसलिए है क्योंकि किसी भी कृति को जन-सुलभ बनाना समीक्षा के माध्यम से काफी हद तक सरल हो जाता है। पुस्तक को बिना पढ़े यह नहीं जाना जा सकता है कि उसमें क्या है, कितना उपयोगी है? समीक्षा व्यक्ति को पुस्तक के बारे में जानकारी प्रदान करती है जिससे वह जान सके कि यह पुस्तक उसके लिए कितनी जरूरी हो सकती है। दूसरी बात पुस्तक को समझने में पाठक को समीक्षित कृति से काफी हद तक सहूलियत मिल जाती है। समीक्षा की चुनौती के रूप में सदैव तटस्थ होकर मूल्यांकन करना प्रमुख रहा है। कहीं तो दूषित भाव से पुस्तक के नकारात्मक चीजों को ही कुरेदकर रख दिया जाता है तो कहीं रचनाकार और समीक्षक के आत्मीय लगाव के कारण रचना की अतिशयोक्तिपूर्ण बड़ाई कर दी जाती है।

फिलवक्त मैं जिस पुस्तक की चर्चा कर रहा हूँ वह डॉ. करुणा पीटर कमल द्वारा लिखी गई नरेंद्र कोहली के उपन्यासों में स्वामी विवेकानंद का जीवन चरित्र शीर्षक एक समीक्षात्मकृति है जो प्रवृत्तिगत शोधात्मक है। संभवत: इस विषय पर ही उन्होंने अपना शोध कार्य संपन्न किया है जो पुस्तकाकार प्रस्तुत है। इस पुस्तक की समीक्षा अन्य पुस्तकों की

समीक्षा से थोड़ी और जटिल हो जाती है कारण यह कि एक तो इसमें रचनाकार का अपना दृष्टिकोण है जिसे परखा जाना है दूसरी ओर हिंदी साहित्य के ख्यातिलब्ध कथाकार, साहित्यकार डॉ. नरेंद्र कोहली की कृतियों की समीक्षा है जिस पर सरहरी दृष्टि जाती है तीसरी ओर भारतीय जनमानस के हृदय पर राज करने वाले, युगो-युगो तक युवा कहे जाने वाले स्वामी विवेकानंद का चरित्र है। इन तीनों का सामंजस्य बिठाते हुए समीक्षा लिखना सहज नहीं रह जाता है।

इस कृति में मुख्य रूप से डॉ. नरेंद्र कोहली के उपन्यासों में विवेकानंद का जो जीवन चरित्र वर्णित है उस पर शोधपूर्ण समीक्षा प्रस्तुत किया गया है। उपन्यासों की विशेषताएं भी बतलाई गई हैं। हिंदी उपन्यास के विकास-क्रम में डॉ. नरेंद्र कोहली के महत्व को भी रेखांकित किया गया है और उपन्यास की भूमिका पर भी रचनात्मक दृष्टि से लिखा गया है जो इस पुस्तक की विशेषता है। इस कृति को या इस कृति के भीतर की चीजों को कृति के पहले पन्ने पर पुरोवाक् के इस कथन से काफी हद तक जाना जा सकता है कि, 'विवेकानंद के जीवन चरित्र को उपन्यास में उपन्यासकार ने किस कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है तथा इस क्रम में कोहली जी की कल्पनाशीलता कितनी सार्थक सिद्ध हुई है, इसका भी विश्लेषण लेखिका ने किया है।' (पुरोवाक्त- डॉ. कलानाथ मिश्र)

जीवनी और उपन्यास साहित्य के शिल्प में पर्याप्त भिन्नता है। जीवनी में जहाँ संबंधित व्यक्ति के जीवन के प्रमाणित तथ्यों का ही वर्णन होता है वही उपन्यास में काल्पनिकता के लिए पर्याप्त स्थान होता है। जीवनी में संबंधित व्यक्ति के जीवन की कोई कड़ी यदि नहीं मिल रही हो तो उसके लिए रचनाकार कड़ी को कठिन परिश्रम से तलाशता है और प्रमाणिक तथ्यों के आधार पर ही उसे चित्रित करता है लेकिन जीवनीपरक उपन्यास में टूटी हुई कड़ी को जोड़ने के लिए कल्पना का सहारा लेने की छूट होती है। लेकिन कल्पना का सहारा लेते हुए इस तथ्य का ध्यान रखना भी परम आवश्यक होता है कि कहीं संबंधित व्यक्ति के जीवन तत्व को क्षति नहीं पहुँचे। स्वामी विवेकानंद के जीवन पर आधारित नरेंद्र कोहली के उपन्यासों में इस विशेषता की ओर इशारा करते हुए डॉ. करुणा कमल ने लिखा है, 'लेखक ने स्वामी विवेकानंद के जीवन तत्वों को बिना क्षति पहुँचाए, अपने सृजनात्मकता और कल्पना-शक्ति के संयोग से आकर्षक, सरल और स्पष्ट संवाद सृजित किया है।' (2) यह किसी भी जीवनीपरक उपन्यास साहित्य के लिए परम आवश्यक है कि उपन्यास, संबंधित व्यक्ति के वास्तविक चरित्र को ध्वस्त करने का कार्य नहीं करे। हिंदी साहित्य में महापुरुषों और साहित्यकारों को केंद्र में रखकर अनेक उपन्यास लिखे गए हैं लेकिन कई उपन्यास ऐसे भी सामने आते हैं जिसमें संबंधित व्यक्ति का चरित्र जिस रूप में जन समुदाय के बीच व्याप्त है उसी रूप में वह उपन्यास में वर्णित नहीं हो पाता है। यह जीवनी परक उपन्यास की कमजोरी है। नरेंद्र कोहली ने स्वामी विवेकानंद के जीवन को न सिर्फ गहन अध्ययन के द्वारा बल्कि जन समुदाय की भावनाओं को भी समक्ष रखकर चित्रित करने का कार्य किया। 'लेखक ने नरेंद्र की करुणा, प्रेम, संघर्ष, त्याग, सेवा आदि भावों को प्रसंगानुरूप अविस्मरणीय बनाकर प्रस्तुत किया है।' (3)

नरेंद्र कोहली के लेखन की अपनी एक विशिष्टता रही है जिस पर डॉ. करुणा पीटर 'कमल' ने काफी सतर्क होकर काम किया है। उनका यह लिखना अत्यंत प्रासंगिक है कि 'आज

जहाँ बड़े उपन्यास की जगह छोटी कहानियाँ पाठकों को अधिक प्रभावित करती हैं, वहीं इसके विपरीत नरेंद्र कोहली 6-7 सौ पृष्ठों का उपन्यास लिखते हैं और आश्चर्य की बात यह है कि इनके वृहत उपन्यास पाठकों के बीच बहुत लोकप्रिय हैं।' (4)

वहीं आगे वे लिखती हैं कि 'माना जाता है कि आठ खंडों में लिखा गया महासमर उपन्यास विश्व का सबसे बड़ा उपन्यास कहे जानेवाला टालस्टाय के वार एंड पीस के बाद सबसे बड़ा उपन्यास है।' (5) निश्चित रूप से आज के भागदौड़ भरी जिंदगी में चीजें छोटी होती जा रही हैं। लोग बड़ी रचनाओं के स्थान पर छोटी-छोटी चीजों को पढ़ना ज्यादा उचित समझने लगे हैं। इसी का प्रभाव है कि प्रबंध काव्य लिखा जाना लगभग समाप्त ही हो चुका है। छोटे-छोटे मुक्तक और उन्मुक्त कविताएँ लिखी जा रही हैं। कथा साहित्य में भी इसका प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखता है। उपन्यास के जगह पर कहानियों का प्रचलन बढ़ा, कहानियों का स्थान लघुकथाओं ने लिया, रचना का फलक समय की मांग के अनुरूप छोटा होता चला गया। ऐसे में नरेंद्र कोहली का इतना वृहद स्वरूप वाला उपन्यास लिखना और पाठकों के द्वारा उसे सहर्ष स्वीकृति मिलना उनके रचनात्मक कौशल का जीवंत प्रमाण है।

समीक्षित पुस्तक कुल आठ अध्यायों में विभक्त है। पहला अध्याय 'उपन्यासकार नरेंद्र कोहली' के शीर्षक से है जिसमें नरेंद्र कोहली के उपन्यासों पर प्रकाश डाला गया है। 'नरेंद्र कोहली के औपन्यासिक कृतियों का परिचय' शीर्षक दूसरे अध्याय में उनके औपन्यासिक कृतियों का संक्षिप्त विश्लेषण मौजूद है। 'उपन्यास और जीवनी : स्वरूप विश्लेषण' में उपन्यास साहित्य और जीवनी साहित्य की बारीकियों पर चर्चा की गई है। नरेंद्र कोहली के ज्यादातर उपन्यास भारतीय जनमानस में व्यापक रूप से व्याप्त महापुरुषों के जीवन पर आधारित हैं। यहाँ इस तथ्य का विश्लेषण आवश्यक हो जाता है कि कृति में उन महापुरुषों की जीवनी है या वह औपन्यासिक कृति है। जीवनी और औपन्यासिक कृति में मूलभूत जो अंतर होता है उसका विश्लेषण इस पुस्तक के तीसरे अध्याय में किया गया है। 'विवेकानंद के जीवन पर आधारित नरेंद्र कोहली के उपन्यास' नामक चौथे अध्याय में उन उपन्यासों की चर्चा की गई है जिसका सृजन डॉ. नरेंद्र कोहली ने विवेकानंद के जीवन को केंद्र में रखकर किया है। पाँचवा अध्याय है 'तोड़ो कारा तोड़ो में विवेकानंद का जीवन एवं औपन्यासिक कल्पना।' तोड़ो कारा तोड़ो विवेकानंद के जीवनवृत्त पर आधारित नरेंद्र कोहली का एक प्रमुख उपन्यास है। बल्कि तीन कड़ियों में लिखे गए उपन्यास की यह पहली कड़ी है। इस उपन्यास में विवेकानंद का जीवन किस हद तक रेखांकित है और उसे गति देने के लिए उपन्यासकार ने अपने औपन्यासिक कल्पनाशीलता का कितना प्रयोग किया है इस तथ्य का विश्लेषण वर्णन इस पुस्तक में किया गया है।

'न भूतो न भविष्यति में विवेकानंद का जीवन चरित्र' शीर्षक छठा अध्याय उस कड़ी को आगे बढ़ाते हुए याद करता है कि विवेकानंद के जीवन की अगली कड़ी का वर्णन उपन्यासकार ने ऐतिहासिक वर्णन और काल्पनिक क्षमता के आधार पर कैसे बेजोड़ बनाया है। 'पूत अनोखो जायो' विवेकानंद को केंद्र में रखकर लिखा गया डॉ. नरेंद्र कोहली का तीसरा उपन्यास है। सातवें अध्याय में इस उपन्यास में वर्णित विवेकानंद के जीवन प्रसंगों को डॉ. नरेंद्र कोहली के रचनात्मक

विशेषताओं के साथ वर्णित किया गया है। 'प्रभाव' शीर्षक आठवां अध्याय इस पुस्तक का उपसंहार या सारांश कहा जा सकता है जिसमें सभी तथ्यों को मूल रूप से समेटने का प्रयत्न किया गया है। या यह भी कह सकते हैं कि इस पाठ में इन तथ्यों का वर्णन किया गया है कि स्वामी विवेकानंद के जीवन पर आधारित नरेंद्र कोहली के उपन्यासों तथा नरेंद्र कोहली की रचनात्मकता ने समाज पर किस रूप में प्रभाव डाला है। हिंदी साहित्य को उसने किस हद तक प्रभावित किया है।

स्वामी विवेकानंद को केंद्र में रखकर लिखे गए नरेंद्र कोहली के उपन्यासों की विशेषता का समग्र रूप से मूल्यांकन करते हुए समीक्षित पुस्तक की लेखिका डॉ. करुणा पीटर ने लिखा है, 'समग्रत: कोहली जी की, विवेकानंद के जीवन पर आधारित जीवनीपरक औपन्यासिक कृतियां हमारे पाठकों विशेषकर युवा वर्ग के लिए एक मिसाल है। हमारे युवा, स्वामी विवेकानंद के जीवन से प्रेरणा ग्रहण कर अपने देश व समाज के उत्थान एवं अखंडता की रक्षा के लिए कटिबद्ध हो सकेंगे। कोहली जी ने अपनी कल्पनाशीलता के भरपूर प्रयोग से स्वामी जी के जीवनी को रोचक एवं प्रभावोत्पादक बनाया है।' (6)

इस पुस्तक में हिंदी साहित्य के व्यापक विधा उपन्यास और जीवनी की विशेषताओं का जो सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है वह अत्यंत प्रभावोत्पादक है। नरेंद्र कोहली के, विवेकानंद के जीवन पर आधारित उपन्यासों का तो कुशल समीक्षा इस पुस्तक में है ही नरेंद्र कोहली की अन्य कृतियों पर भी व्यापक रूप से प्रकाश डाला गया है। स्वामी विवेकानंद के जीवन को रेखांकित किए गए नरेंद्र कोहली के उपन्यासों में ऐतिहासिक तथ्यों और कल्पनाशीलता का बड़ी ही बारीकी से परीक्षण किया गया है। इस कृति की विशेषता यह है कि इस एकमात्र पुस्तक के भीतर कई तथ्यों को समेटा गया है जो सामान्य पाठकों के लिए तो रोचक है ही शोध छात्रों के लिए भी अत्यंत उपयोगी है।

संदर्भ :

1. डॉ. कलानाथ मिश्र, पुरोवाक, नरेंद्र कोहली के उपन्यासों में स्वामी विवेकानंद का जीवनचरित्र
2. डॉ. करुणा पीटर 'कमल', नरेंद्र कोहली के उपन्यासों में स्वामी विवेकानंद का जीवनचरित्र
3. वही
4. वही
5. वही

अमित कुमार मिश्रा, अतिथि व्याख्याता, हिन्दी विभाग, एच. एस. कॉलेज, उदाकिशुनगंज, मधेपुरा। मो. : 93043 02308

✧ ✧ ✧

गोवर्द्धन प्रसाद सदय की कहानियों में राष्ट्रीयता

डॉ. कुमारी चम्पा

आज पूरे विश्व में नारी को अत्यधिक महत्त्व दिया जा रहा है। आधुनिक एवं तकनीकी शब्दों में इसे 'नारी सशक्तीकरण' का युग कहा जा सकता है। ऐसे युग में गोवर्द्धन प्रसाद सदय की दृष्टि भी नारी-महत्ता की ओर गई और उन्होंने नारियों के माध्यम से राष्ट्रप्रेम की बातें अपनी कहानियों में कही हैं। यों तो उनकी सभी कहानियों में समाज एवं देश के उत्थान की बातें कही गई हैं, लेकिन तीन कहानियों में शुद्ध राष्ट्रीयता के दर्शन होते हैं। वे कहानियाँ हैं- (1) माँ की लाज (2) रामधन आ गया और (3) सुहाग का टीका। राष्ट्रीयता की दृष्टि से तीनों कहानियाँ एक-पर-एक हैं।

कारयित्री एवं भावयित्री प्रतिभा के धनी साहित्यकार गोवर्द्धन प्रसाद सदय का आविर्भाव 11.10. 1925 को सुप्रसिद्ध मोक्ष धाम गया शहर के मुरारपुर मुहल्ले में हुआ था एवं तिरोभाव 30. 11.2017 को गया में ही हुआ। सच तो यह है कि ये मूल रूप से एक सफल कवि के रूप में सामने आते हैं लेकिन इन्होंने उच्च कोटि की कहानियों की भी सर्जना की है। हिंदी-जगत् में बहुत सारे ऐसे रचनाकार हैं, जिनकी ख्याति एक-दो विधाओं में ही हुई, लेकिन अन्य विधाओं में भी उन्होंने श्रेष्ठ रचनाएँ की हैं। वैसे ही साहित्यकारों में गोवर्द्धन प्रसाद सदय का भी नाम आता है। ये एक सफल कवि, कहानीकार एवं पत्रकार हैं।

अपनी कहानियों के प्रकाशन के संबंध में इन्होंने स्वीकार किया है- 'चालीस पचास वर्ष पूर्व लिखी ये कहानियाँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपी थीं।.......... किंतु पुस्तकाकार रूप में प्रकाशन का सुयोग अभी ही प्राप्त हुआ।'[1] सदय जी द्वारा लिखित कहानियों का एकमात्र संग्रह 'अंधकार तिलमिला उठा' अभी तक प्रकाशित हुआ है। इसमें इनकी 15 कहानियों को संगृहीत किया गया है। यहाँ मैं स्पष्ट कर देना चाहती हूँ कि देश प्रेम-संबंधी कहानियों को ही मैंने शोधलेख का विषय बनाया है।

आज सम्पूर्ण मानव-जगत् में स्वार्थ की आँधी चल रही है। धन के पीछे आज का मनुष्य सरपट भागा जा रहा है, जिसका परिणाम

सामने है। सर्वत्र भ्रष्टाचार का बोलबाला है और समाज, देश एवं मनुष्य-निर्माण की चिन्ता मुट्ठी भर लोगों को ही है। ऐसे वातावरण को देखकर गोवर्द्धन प्रसाद सदय जैसे सच्चे साहित्यकार का हृदय मर्माहत हो जाता है और उनकी लेखनी से राष्ट्र प्रेम संबंधी कहानियाँ अनायास रची जाती हैं।

हिन्दी साहित्य कोश में लिखा है 'राष्ट्रीयता का प्रश्न सामूहिक जीवन, सामूहिक विकास और सामूहिक आत्मसम्मान से संबंद्ध है।'[2] भारतीय संस्कृति में देश को सर्वोपरि माना गया है। यही कारण है कि नीति विशारद चाणक्य ने लिखा है-

'त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलंत्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे सवात्मार्थे पृथ्वीं त्यजेत्।।'[3]

अभिप्राय यह है कि कुल की रक्षा के लिए एक का, ग्राम की रक्षा के लिए कुल को, देश की रक्षा के लिए ग्राम को और आत्म रक्षा के लिए पृथ्वी को त्याग देना उचित है।

वैदिक ऋषियों ने ही राष्ट्रीयता की शुरूआत भूमि-वन्दना एवं राष्ट्र वंदना से की है। उसे आदि कवि वाल्मीकि से लेकर आज तक के कवियों ने अपने-अपने ढंग से पल्लवित, पुष्पित एवं फलित किया है।

इस बात में जितनी सच्चाई है कि भारत में अनादिकाल से नारियों को प्रताड़ित किया जाता रहा है, उतनी ही सच्चाई इस बात में भी है कि वैदिक काल से ही नारियों के महत्त्व को भी समझने का प्रयास किया जाता रहा है। यही कारण है कि अनेक कमियों के बावजूद 'मनुस्मृति' में कहा गया है-

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:।'[4]

अर्थात् जहाँ नारियों की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं। इसका ध्वन्यार्थ यह है कि जहाँ पर नर-नारी में अच्छे संबंध रहते हैं, वहाँ स्वर्ग जैसा वातावरण बन जाता है। इसे जीवन में अपनाकर अच्छी तरह से अनुभव किया जा सकता है।

आज पूरे विश्व में नारी को अत्यधिक महत्त्व दिया जा रहा है। आधुनिक एवं तकनीकी शब्दों में इसे 'नारी सशक्तीकरण' का युग कहा जा सकता है। ऐसे युग में गोवर्द्धन प्रसाद सदय की दृष्टि भी नारी-महत्ता की ओर गई और उन्होंने नारियों के माध्यम से राष्ट्रप्रेम की बातें अपनी कहानियों में कही हैं। यों तो उनकी सभी कहानियों में समाज एवं देश के उत्थान की बातें कही गई हैं, लेकिन तीन कहानियों में शुद्ध राष्ट्रीयता के दर्शन होते हैं। वे कहानियाँ हैं- (1) माँ की लाज (2) रामधन आ गया और (3) सुहाग का टीका। राष्ट्रीयता की दृष्टि से तीनों कहानियाँ एक-पर-एक हैं। 'को बड़ छोट कहत अपराधू' वाली बात यहाँ मिलती है। 'माँ की लाज' नामक कहानी में सिंहासन राम एवं उसकी वृद्धा माता के माध्यम से सदय जी ने देश प्रेम की भावना को चरम ऊँचाई पर ले जाने का श्लाघनीय कार्य किया है। इस कहानी को पढ़ते ही अपभ्रंश काव्य का निम्न दोहा अनायास स्मृति पटल पर आ जाता है-

भल्ला हुआ जु मारिआ बहिणि महारा कंतु।
लज्जेज्जंतु वयंसिअहु जइ भग्गा घर एंतु।।[5]

वहाँ पति के युद्ध में बलिदान हो जाने पर पत्नी प्रसन्नता व्यक्त करती हुई कहती है कि हे बहिन, भला हुआ मेरा कंत (पति) मारा गया। यदि भागा हुआ घर आता तो मैं सखियों के सामने लजाती। और यहाँ रामसिंहासन राम के बलिदान पर माँ के हृदय में संतोष होता है। देश की रक्षा के लिए सर्वस्व समर्पण करने वाली माता के प्रति सबों के दिलों में आदर के भाव हिलोरे लेने लगते हैं। ऐसी माँ के चरणों में मस्तक स्वत: आदर के साथ झुक जाता है।

भारत की आजादी के लिए 1942 में 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' का नारा दिया गया था। उस समय गाँधी जी के नेतृत्व में सम्पूर्ण देश में क्रांति की ज्वाला अपनी पूरी लपटों के साथ भड़क उठी थी। उसी को आधार बनाकर इस कहानी की सर्जना हुई है। उस क्रांति में सभी वर्ग के लोग चढ़-बढ़कर हिस्सा ले रहे थे। विद्यार्थी तो इसमें सबसे आगे ही थे। समीक्ष्य कहानी का मुख्य पात्र सिंहासन राम भी एक नवजवान विद्यार्थी ही है। प्रथम दिन तो वह थाना में तिरंगा फहराने में असफल हो जाता है।

इस असफलता के कारणों की पूरी कहानी सिंहासन राम अपनी माँ को बतलाता है। इस पर माता उन्हें प्रेरित एवं उत्साहित करती हुई कहती हैं- 'तूने माँ की लाज नहीं रखी। कल यह खबर सारे इलाके में फैल जायेगी। लोग घृणा के साथ तुम्हें देखेंगे। कहेंगे, नामर्द है, बुजदिल है।..... ....जानते हो सुनकर मुझ पर क्या बीतेगी मेरी छाती फट जायेगी। मैं आज जिस गर्व से मस्तक ऊँचा किये चलती हूँ। कल नहीं चल सकूँगी।............ यदि अपनी जान को ही इतना प्यार करना था, तो फिर मेरी कोख से पैदा न होते। .... देश माँ के लिए जान देने का मौका बहुत कम मिलता है। कभी-कभी भाग्यवान को ही यह नसीब होता है।''[6] इस उद्धरण में एक-एक शब्द में आत्म सम्मान एवं देशप्रेम के भाव कूट-कूट कर भरे हैं। माँ की प्रेरणा से सिंहासन राम दूसरे दिन झण्डा फहराने में सफल होने के साथ-साथ बलिदान भी हो जाता है।

कहानी का अंत अत्यन्त ही मार्मिक ढंग से होता है। बलिदान हुए बेटे की लाश के ललाट को माता अन्तिम बार चूमती है और लाश से लिपट जाती है- ''बूढ़ी माँ कुछ और बोल नहीं सकी। उसके कण्ठ अवरूद्ध हो गये। आँखों की निर्झरिणी फूट चली। वह एकाएक सिंहासन राम की लाश से लिपट गयी। और उसके ललाट पर अपने सम्पूर्ण मामृत्व का संचित कोश उडेल दिया- लो मेरा आखिरी प्यार, लो मेरा आखिरी दुलार। ....''[7] इस दृश्य को देखकर सभी की आँखों से आँसू की धारा अनायास बहने लगती है। जब तक भारत में ऐसा देशभक्त रहेगा। झण्डा सदा फहरते रहेगा और देश प्रेमियों को रामसिंहासन राम सदैव प्रेरित करते रहेगा। इसका सारा श्रेय उसकी माँ को जाता है।

'रामधन आ गया' नामक कहानी के माध्यम से कहानीकार ने राष्ट्रीयता की बातें कही हैं। यहाँ भी सदय जी ने एक वृद्धा को देश भक्तिन के रूप में चित्रित किया है। रामधन की माँ शुरू से ही देश की सुरक्षा के लिए रक्षा-कोश में बड़े परिश्रम करके यथासंभव राशि भेजती रहती थी। एक दिन रामधन घर से चुपचाप निकल जाता है और फौज में भर्ती हो जाता है। उसकी माँ को बेटे की अनुपस्थिति सताती रहती है और वह काफी बेचैनी की जिन्दगी जीती है।

अचानक रामधन एक फौजी के रूप में माँ से मिलता है। तब रामधन की माँ को खुशी का ठिकाना नहीं रहता है। वह दो माह की छुट्टी में घर आया है। छुट्टी समाप्ति के पश्चात् जाने के समय उसकी माँ उसके एवं उसके साथियों के लिए खाने-पीने की सामग्री के साथ ही मोजे और स्वेटर भी देती है। रामधन की माँ का चरित्र अत्यन्त ही महान है। वह अपने बेटे के सभी साथियों को अपना ही पुत्र मानती है- ''अब उसे केवल अपने एक रामधन के लिए नहीं, अपितु उन लाखों रामधनों के लिए मोजा बुनना था, स्वीटर बुनना था, जो हिमालय की ऊँची चोटियों पर चढ़कर देश की रक्षा कर रहे हैं''[8] ऐसा उदार एवं व्यापक चरित्र है रामधन की माँ का। उसकी देशभक्ति की पराकाष्ठा के दर्शन तब होते हैं जब वह मुख्यमंत्री के कार्यक्रम में एक गठर लाकर देती है जिसमें सौ जोड़े मोजे और स्वेटर थे। वह मुख्यमंत्री से आग्रह करती है कि यह सामग्री उसके पुत्र के पास भिजवा दें जिससे उसके पुत्र एवं साथियों को ठंढ से बचाया जा सके। इस प्रकार प्रस्तुत कहानी में रामधन की माँ एक परम देश भक्तिन के रूप में सामने आती है। उसमें राष्ट्रप्रेम की पराकाष्ठा है।

'सुहाग का टीका' नामक कहानी में एक नवविवाहिता के राष्ट्र प्रेम को केन्द्र में रखा गया है। आलोच्य कहानी मात्र डेढ़ पृष्ठों की है, लेकिन इसका संदेश बहुत बड़ा है। इस कहानी को पढ़ते ही संस्कृत के अमरूक एवं हिन्दी के रीतिकालीन कवि बिहारी का स्मरण हो जाना स्वाभाविक ही है। अमरूक के बारे में आलोचकों के विचार हैं कि अमरूक के एक-एक दोहा पर अनेक महाकाव्य न्यौछावर हो सकते हैं। उसी प्रकार बिहारी की काव्यगत विशेषताओं के बारे में अति प्रसिद्ध उक्ति है-

सतसैया के दोहरे अरू नावक के तीर।
देखन में छोटन लगै घाव करै गम्भीर।।

यदि संक्षिप्त काव्य-चातुरी की आत्मा है तो कला की भी आत्मा है। ठीक यही बात समीक्ष्य कहानी पर भी लागू होती है। इसमें किसी भी पात्र का नामोल्लेख नहीं किया गया है। मुख्य पात्र के रूप में नवविवाहिता, उसकी माँ एवं मुख्यमंत्री जी हैं। शादी के तुरन्त बाद नवविवाहिता अपने सभी गहनों को उतार कर मुख्यमंत्री को इसलिए सौंपती है कि उसे बेचकर राष्ट्रीय सुरक्षा कोश में जमा कर दिया जाय और आवश्यकतानुसार इसे देश की रक्षा में लगाया जाय।

लगभग सभी गहनों को उतार चुकने के बाद वह अंत में 'सुहाग का टीका' भी उतारने लगती है। इस दृश्य को देखकर उसकी माँ हाथ पकड़ कर इसे उतारने से रोकती है। इस पर नवविवाहिता कहती है। ''माँ! तुम्हें आज सिर्फ मेरे सुहाग की चिन्ता है। देश की ओर देखो, माँ! राष्ट्रीय सुरक्षा कोश में दिये मेरे ये गहने अब किसी माँ के जवान बेटे की जान बचाएँगे, जो मोर्चे पर लड़ रहा है। ये गहने उस सधवा के सिन्दूर को बचाएँगे, जिसका पति दुश्मनों से जूझ रहा है। ये गहने उस बच्चे को अनाथ होने से बचाएँगे, जिसका पिता देश के लिए कहीं जान लड़ा रहा है। मेरे ये गहने अब बन्दूक की गोलियाँ बन जाएँगे।''[9]

इतना ही नहीं, वह पति को भी राइफल की ट्रेनिंग के लिए प्रेरित करती है नर्स की शिक्षा

पाकर घायल भाइयों की सेवा-सुश्रूषा करने की उसकी प्रबल इच्छा है। पति भी पत्नी का साथ देता है। इससे कहानीकार यह संदेश देना चाहता है कि हर शुभ कार्य में पति-पत्नी का साथ होना जरूरी है। तभी परिवार, समाज एवं देश का भला संभव है।

आज के पथभ्रष्ट मानवों के लिए इनकी ये सभी कहानियाँ दीपक का काम करेंगी। सच तो यह है कि रचनाकार का जीवन-दर्शन उनकी रचनाओं में किसी-न-किसी रूप में अवश्य रूपायित होता है। गोवर्द्धन प्रसाद सदय भी परिवार, समाज एवं देश की एकता के लिए आजीवन प्रयास करते रहे हैं। वे एक सच्चे देश प्रेमी थे। यही कारण है कि उनकी सभी देश-प्रेम सम्बन्धी कहानियों में राष्ट्रीयता की भावना कुट-कुट कर भरी हुई हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह नि:संन्देह कहा जा सकता है कि आज के स्वार्थ में अन्धे हुए मानवों के लिए ये कहानियाँ प्रकाश-स्तम्भ का काम करेंगी। जब भी राष्ट्रीयता की आवश्यकता महसूस होगी, इनकी कहानियाँ प्रेरक बनी रहेंगी। ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है।

संदर्भ -

1. अंधकार तिलमिला उठा, गोवर्द्धन प्रसाद सदय, विशाल पब्लिकेशन, पटना दिल्ली प्रथम संस्करण- 2010, एक सुयोग (भूमिका) पृ.
2. हिन्दी साहित्य कोश, भाग-01, प्रधान सम्पादक, धीरेन्द्र वर्मा, वाराणसी, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, तृतीय संस्करण, 1985, पृ. 710
3. चाणक्यनीति, साधना, पॉकेट बुक्स, रोशनारा रोड, दिल्ली, संस्करण- 2008, पृ. 70
4. 'मनुस्मृति' टीकाकार, पंडित हरिगोविन्द शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, ऑफिस, वाराणसी, तृतीय संस्करण वि. सं. 2027, 9/3
5. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, डॉ. नामवर सिंह, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद-01, शष्ठ पुनर्मुद्रण - 1982, पृ.- 306
6. अंधकार तिलमिला उठा, गोवर्द्धन प्रसाद सदय, विशाल पब्लिकेशन, पटना, दिल्ली प्रथम संस्करण, 2010 माँ की लाज पृ. - 80
7. वही, पृ. - 83
8. वही, रामधन आ गया (कहानी) पृ. - 88
9. वही, सुहाग का टीका (कहानी) पृ. - 90

डॉ. कुमारी चम्पा, सहायक प्रोफेसर स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, महाराजा, कॉलेज, आरा
वीर कुँवर सिंह विश्व विद्यालय, आरा (बिहार), मो. : 9852641344

✧ ✧ ✧

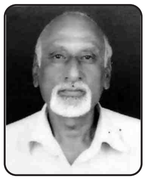

हिन्दी की पहली कहानी कौन : अब तक विवादित क्यों?

'राजा भोज का सपना' कहानी हिन्दी की पहली कहानी क्यों नहीं स्वीकारी जाती?

राजेन्द्र सिंह गहलौत

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में लिखा है- 'इन्दुमती पर किसी बांग्ला कहानी की छाया नहीं है तो हिन्दी की वहीं पहली मौलिक कहानी है। इसके उपरान्त 'ग्यारह वर्ष का समय' फिर 'दुलाईवाली' कहानी है। इस भांति संभवतः वे 'इन्दुमती' के पूर्व लिखी कहानी 'राजा भोज का सपना' एवं 'रानी केतकी की कहानी' को जहां हिन्दी की पहली मौलिक कहानी मानने से सहमत नहीं है।

हिन्दी की पहली कहानी के सांसद लंबे समय से विद्वानों में असहमति बनी हुई है। हिन्दी की पहली कहानी की दौड़ में शामिल कहानियों में मुख्यतः 'रानी केतकी की कहानी', 'राजा भोज का सपना', 'इंदुमती', तथा 'एक टोकनी भर मिट्टी' कहानियों का नाम लिया जाता हैं। इन चार कहानियों के अतिरिक्त 'ग्यारह वर्ष का समय', 'ग्राम' तथा नई खोज के अनुसार 'एक जमींदार का दृष्टांत' कहानी भी हिन्दी की पहली कहानी की दावेदारी पेश कर चुकी है। साहित्यकारों द्वारा किसी एक कहानी को सर्वसम्मति से हिन्दी की पहली कहानी न मान कर अलग-अलग कई कहानियों को हिन्दी की पहली कहानी मानना, इस संबंध में उनके मतभेद का परिचायक है। ऐसी स्थिति में क्या जरुरी नहीं हो जाता कि इस संबंध में अब साहित्यिक अभिरुचि के पाठक अपना अभिमत प्रस्तुत करें। हिन्दी भाषा की पहली कहानी के संबंध में पुरानी मान्यताओं को स्वीकारें या फिर तर्क सहित उन्हें नकारे। इसी दिशा में पहल करते हुए बतौर साहित्यिक अभिरुचि के आम पाठक प्रस्तुत है यह आलेख-लेखक

यद्यपि काफी अर्से पहले प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिका 'सारिका' के तत्कालीन संपादक, वामपंथ से प्रभावित प्रतिष्ठित साहित्यकार कमलेश्वर ने 'सारिका' में आयोजित एक लंबी बहस के बाद माधवराव सप्रे की सन 1901 में प्रकाशित कहानी 'एक टोकनी भर मिट्टी' को हिन्दी की पहली

कहानी घोषित कर दिया था। लेकिन उस घोषणा के पहले तथा बाद में भी विद्वानों द्वारा उसे हिन्दी की पहली कहानी मानने में सहमति नहीं बनी जो कि स्वाभाविक ही है क्योंकि उसके पूर्व सन 1900 में सरस्वती पत्रिका में किशोरी लाल गोस्वामी की कहानी 'इन्दुमती' प्रकाशित हो चुकी थी। तथा उसके भी पूर्व सन 1887 में शिव प्रसाद सितारे हिन्द की कहानी 'राजा भोज का सपना' लिखी गई थी। जबकि नई खोज के आधार पर अमेरिकन पादरी रैवरेंड जे. न्यूटन की सन 1871 में लिखी कहानी 'एक जमींदार का दृष्टांत' भी हिन्दी की पहली कहानी की दावेदारी पेश कर रही थी और इन सबसे ऊपर काल गणना के आधार पर सन 1803 या 1808 में सैफ्यद इंशा अल्लाह खां द्वारा लिखी कहानी 'रानी केतकी की कहानी' भी हिन्दी की सर्वप्रथम कहानी की प्रबल दावेदार थी। इतना ही नहीं 'टोकनी भर मिट्टी' कहानी के बाद की कालावधि सन 1903 में लिखी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' तथा बंग महिला (राजेंद्रबाला घोष) की कहानी 'दुलाई वाली' भी हिन्दी की पहली कहानी की दावेदारी पेश कर रही थी। जबकि आधुनिक हिन्दी की पहली कहानी के बतौर जयशंकर प्रसाद की सन् 1971 में लिखी कहानी 'ग्राम' की भी चर्चा की जा रही थी।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में लिखा है– 'इन्दुमती पर किसी बांग्ला कहानी की छाया नहीं है तो हिन्दी की वही पहली मौलिक कहानी है। इसके उपरान्त 'ग्यारह वर्ष का समय' फिर 'दुलाईवाली' कहानी है। इस भांति संभवत: वे 'इन्दुमती' के पूर्व लिखी कहानी 'राजा भोज का सपना' एवं 'रानी केतकी की कहानी' को जहां हिन्दी की पहली मौलिक कहानी मानने से सहमत नहीं है, वहीं सन् 1901 में माधवराव सप्रे द्वारा लिखी कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' को भी हिन्दी की पहली मौलिक कहानी न मान कर उसके बाद सन् 1903 में स्वयं अपने द्वारा लिखी कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' को हिन्दी की पहली मौलिक कहानी की दौड़ में शामिल कर लेते हैं। दरअसल हिन्दी साहित्य में सिर्फ हिन्दी साहित्य का इतिहास लेखक कोई नहीं है। या तो वह हिन्दी साहित्य का इतिहास लेखक, साहित्यकार, समालोचक है या फिर समालोचना के साथ ही साहित्य की किसी विधा का लेखक भी हैं। स्वाभाविक है कि यदि वह साहित्यकार कमोवेश साहित्य की किसी विधा का लेखक भी हैं तो उस विधा के इतिहास लेखन के वक्त अपनी या अपने परिवार के किसी सदस्य की उस विधा की रचना को उस इतिहास लेखन में शामिल करने के मोह से अपने आप को बचा नहीं पाता है। संभवत: इसी वजह से आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी की पहली मौलिक कहानी की चर्चा करते हुए सन् 1903 में प्रकाशित अपनी कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' को हिन्दी की पहली मौलिक कहानी की दौड़ में शामिल करने से अपने आपको रोक नहीं सके। जबकि 'ग्यारह वर्ष का समय' कहानी के कथानक में जल प्लावन में परिवार से बिछुडा बालक जिसका कि बाल विवाह हो चुका है अन्य परिवार में परवरिश पाता है तथा बड़े होने पर ग्यारह वर्ष बाद अपनी स्मृतियों के आधार पर अपने गाँव लौट कर अपने परिवार के सदस्यों को ढूंढता है दूसरी ओर उसकी बालविवाहिता पत्नी भी अपने पति को ढूंढती हुई चार पाँच वर्षों से एक वीरान खंडहर में रह रही है। उस खंडहर में दोनों पति–पत्नी की मुलाकात होती है दोनों अपनी आप बीती सुनाते हैं और उसी आधार पर वे

एक–दूसरे को पहचान लेते हैं। पूरा कथानक अविश्वसनीय प्रतीत होता है विशेष तौर पर किसी नवयुवती का वीरान खंडहर में तीन चार वर्षों तक अकेला रहना।

अपनी या अपने परिवार के सदस्य द्वारा लिखी रचना को उस विधा की पहली रचना साबित करने का प्रयास कहानी भर में ही नहीं नाटक विधा में भी दृष्टिगोचर है। अपनी पुस्तक 'नाटक' में हिन्दी के पहले मौलिक नाटक की चर्चा करते हुए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अपने पिता बाबू गोपालचंद्र द्वारा 1859 ई. में लिखित 'नहुष' नाटक को ही हिन्दी का पहला मौलिक नाटक बतलाते हैं जबकि 1830 ई. में रीवा महाराजा विश्वनाथ सिंह द्वारा 'आनंद रघुनंदन' नाटक लिखा गया था जो कि हिन्दी के पहले मौलिक नाटक का हकदार हैं। लेकिन हिन्दी की पहली कहानी कौन के विवादों में पहली महिला कहानीकार के रुप में बंग महिला (राजेंद्र बाला घोष) तथा सन् 1907 में उनके द्वारा लिखी कहानी 'दुलाईवाली' का नाम तो निर्विवाद रुप से लिया ही जा सकता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वान साहित्यकारों द्वारा 'हिन्दी की पहली मौलिक कहानी' के संबंध में विचार करते हुए कहानी लेखन एवं उसके प्रकाशन के काल गणना पर ध्यान न दे कर सिर्फ कहानी के स्वरुप उसके शिल्प आदि पर ही पूरा ध्यान केंद्रित किया गया है जिससे कि हिन्दी भाषा में कहानी का लिखा जाना तथा उसका सर्वप्रथम लिखित एवं प्रकाशित होने का मूल मुद्दा उपेक्षित हो गया। जबकि 'हिन्दी भाषा की पहली मौलिक कहानी' पर चर्चा करते हुए सर्वप्रथम इस बात पर गौर करना चाहिए कि वह कहानी मूलत: हिन्दी भाषा की सर्वमान्य देवनागरी लिपि में ही लिखी एवं प्रकाशित हो। उसके बाद वह कहानी काल गणना के क्रम मे सर्वप्रथम (यानी उसके पहले कोई भी हिन्दी भाषा की कहानी न लिखी गई हो) हो पर ध्यान दिया जाना चाहिए। इसके बाद उस कहानी की मौलिकता, यानी न तो वह किसी अन्य भाषा में लिखी कहानी से प्रभावित हो और ना ही उसके कथानक में किसी भी भाषा की कहानी या साहित्य की अन्य किसी भी विधा के कथानक की छाया हो पर गौर किया जाना चाहिए। इसके साथ ही वांछनीय है कि उस कहानी का कथ्य प्रभावशाली ढंग से समाजोपयोगी एवं मानव हितार्थ संदेश को प्रस्तुत करने वाला हो। क्योंकि संभवत: कहानी का जन्म ही इसलिए हुआ है कि वह मानव समाज हितार्थ जटिल दर्शन को सहज सरल एवं रोचक कथात्मक स्वरुप में प्रस्तुत कर सके। इस बात की गवाह है पंचतंत्र, बोधकथा, ईसपकथा, सरित सागर कथा आदि की कहानियाँ। इन सबके बाद ही हिन्दी कहानी के स्वरुप, भाषा एवं शिल्प का क्रम आता है जो कि कहानी के कथ्य की पाठकों तक प्रभावशाली एवं सहज सरल सम्प्रेषणीयता हेतु जरुरी है।

हिन्दी भाषा की पहली कहानी के संदर्भ में जब हम हिन्दी भाषा की सर्वमान्य लिपि 'देवनागरी' में कहानी के लिखे जाने की अनिवार्यता के मद्देनजर, पहली मौलिक हिन्दी कहानी की दावेदार कहानियों को देखते है तो काल गणना के हिसाब से सर्वप्रथम ठहराई गई इंशा अल्लाह खां की सन् 1803 या 1808 में लिखी कहानी 'रानी केतकी की कहानी' की पहली कहानी की दावेदारी खारिज हो जाती है क्योंकि वह कहानी 'देवनागरी लिपि' में लिखी न हो कर 'फारसी लिपि' में लिखी गई थी जो कि हिन्दी भाषी पाठकों हेतु अबोधगम्य है। उसके बाद क्रम आता है नई खोज के अनुसार अमेरिकन पादरी रैवरेंड जे न्यूटन की सन् 1871 में लिखी कहानी 'एक जमींदार

का दृष्टांत' का जो कि महज ईसाई धर्म प्रचार की कहानी है। ईसाई मिशनरीज ने तब से ले कर अब तक ईसाई धर्म के प्रचार में भारत वर्ष की हिन्दी भाषा ही नहीं वहाँ के लोक जगत की बोलियों में भी अपने धर्म प्रचार की कहानियाँ एवं गीत लिखे एवं प्रचारित प्रसारित किये हैं। जिसके की उदाहरण स्वरुप मध्य प्रदेश के छत्तीसगढ एवं सरगुजा अंचल में वहां की छत्तीसगढ़ी एवं सरगुजही बोली में रचे एवं लिखे यीशू कहानियाँ एवं गीत पढ़ें एवं सुने जा सकते हैं। अत: अमेरिकन पादरी की उक्त कहानी महज धर्म विशेष की प्रचार कथा है उसे हिन्दी की पहली कहानी नहीं माना जा सकता।

काल गणना के क्रमानुसार 'रानी केतकी की कहानी' एवं 'एक जमींदार का दृष्टांत' के हिन्दी भाषा की पहली कहानी साबित न होने पर हमारा ध्यान राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द की सन् 1887 ई. में लिखी कहानी 'राजा भोज का सपना' की ओर जाता है। जो कि लगभग सभी दृष्टिकोण से हिन्दी भाषा की पहली कहानी साबित होती है।

वह कहानी 1887 ई. में लिखी गई थी। जबकि हिन्दी भाषा की पहली कहानी की दावेदार अन्य कहानियाँ 'इन्दुमती' (1900 ई.) एवं 'एक टोकनी भर मिट्टी (1901 ई.) तथा उसके बाद के कालखंडों में लिखी गई है। 'राजा भोज का सपना' कहानी पूर्णतया मौलिक तथा देवनागरी लिपि में लिखी गई थी तथा उसका कथ्य यश कामना हेतु दान एवं अन्य धर्म के कर्म तथा उनके हेतु किया गया अहंकार 'सत्य' के दिखाये दर्पण में धाराशायी होते दिखाई पड़ते है, वर्तमान में भी प्रासांगिक है। यद्यपि कुछ विद्वानों ने 'राजा भोज का सपना' कहानी को हिन्दी की पहली कहानी मानने से इस तर्क के आधार पर असहमति व्यक्त की है कि वह कहानी नहीं अपितु नीति कथा प्रतीत होती है। उनकी असहमति के संदर्भ में प्रश्न उठता है कि क्या 'नीति कथा' कहानी नहीं होती? दरअसल संस्कृत साहित्य में कहानी का जन्म ही इसलिए हुआ था कि धर्म एवं नैतिकता के जटिल सिद्धान्त रोचक एवं कथात्मक स्वरुप में प्रस्तुत किये जा सके जिससे कि आम व्यक्ति के लिए वे बोधगम्य हो जिसके की गवाह है पंचतंत्र, जातक कथा, सरित सागर की कथाएँ आदि। बाद में ऐसी कथाएँ नीति कथा के रूप में जानी गई। जबकि इनका स्वरूप किसी भी तरफ से कहानियों से अलग प्रतीत नहीं होता है। इसके अलावा कहानी सम्राट प्रेमचंद की सितंबर 1917 में लिखी कहानी 'दुर्गा मंदिर' का कथानक पराया धन को पाप धन मान कर लौटा देना अपने आप में क्या नीतिकथा प्रतीत नहीं होता? इतना ही नहीं उनकी 'पंच परमेश्वर' एवं 'नमक का दरोगा' कहानी भी किसी न किसी ईमानदारी एवं सत्यता के पालन की नीति को ही तो प्रस्तुत करती नजर आती है। अत: 'राजा भोज का सपना' को भी कहानी मानने से किसी को ऐतराज नहीं होना चाहिये।

'राजा भोज का सपना' कहानी के लेखक शिव प्रसाद सितारे हिन्द, हिन्दी भाषा एवं देवनागरी लिपि को गरिमामय स्थान पर स्थापित कराने में ताउम्र प्रयत्नशील रहे। वे शिक्षा विभाग में जिला शिक्षा निरीक्षक के पद पर कार्यरत थे तथा उनके प्रयासों से स्कूल्स में हिन्दी को प्रवेश मिला। 1864 ई. में उन्होंने 'इतिहास तिमिर नाशक' जैसी कृति देवनागरी लिपि में लिखी। यद्यपि वे

'आम फहम और खास पसंद' हिन्दी भाषा के पक्षधर थे, लेकिन उसकी लिपि अनिवार्यत: देवनागरी हो के भी समर्थक थे। 'आम फहम' यानि आम बोलचाल की भाषा में स्वीकारी गई ऐसी हिन्दी भाषा जिसमें संस्कृत, अरबी, फारसी, अंग्रेजी तथा ठेठ हिन्दी सभी के शब्द शामिल हो तथा 'खास पसन्द' साहित्यकार विशेष (खास) द्वारा चयनित समाजोपयोगी कथ्य हेतु लिखा ऐसा साहित्य जो देवनागरी लिपि में लिखा हो। अगर वर्तमान यथार्थवादी साहित्य की भाषा पर गौर किया जाये तो आम आदमी की बोल चाल की भाषा को यथावत रखने का प्रयोग बहुतायत में किया गया है। जिसमें उर्दू, अंग्रेजी संस्कृत ही नहीं लोकजगत की ठेठ आंचलिक बोलियों के शब्द यहाँ तक कि गालियों को भी यथावत लिया गया है। अत: भले ही अनायास लेकिन शिव प्रसाद सितारे हिन्द की भाषा के संबंध में 'आम फहम खास पसंद' के स्वरुप को वर्तमान के साहित्य जगत ने भी अपनाया है।

लेकिन आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किशोरी लाल गोस्वामी की सन् 1900 में लिखी कहानी 'इन्दुमती' को हिन्दी की पहली मौलिक कहानी माना है। वृन्दावन में जन्मे किशोरी लाल गोस्वामी 'सरस्वती' के पंचायती संपादक मंडल के सदस्य थे तथा उन्होंने 'इन्दुमती' तथा 'गुलबहर' दो कहानियां लिखी। 'इन्दुमती' कहानी विंध्याचल के घने जंगल में, मुगल शासक इब्राहिम से पराजित होकर रह रहे वृद्ध एवं उसकी पुत्री की कहानी है। वृद्ध ने प्रतिज्ञा की थी कि इब्राहिम का जो वध करेगा उससे मैं अपनी पुत्री का विवाह करुंगा। उसकी पुत्री इन्दुमती ने उस जंगल में अपने पिता के अतिरिक्त किसी पुरुष को नहीं देखा था। दूसरी ओर अजयगढ़ का राजकुमार चन्द्रशेखर भेष बदल कर इब्राहिम की सेना में घुस कर इब्राहिम का वध कर देता है तथा राह भटक कर उस जंगल में जा पहुँचता है। जहाँ इन्दुमती से परिचय फिर प्रेम होता हैं। इंदुमती के पिता द्वारा राजकुमार की विभिन्न परीक्षाओं को लेने के बाद उसे वे अपनी पुत्री के अनुकूल वर पाते हैं। तथा राजकुमार ने इब्राहिम के वध की उनकी शर्त भी पूरी की थी अत: अपनी पुत्री इन्दुमती का विवाह राजकुमार से कर के वे हिमालय की ओर चले जाते जाते हैं।

'इन्दुमती' कहानी के इस कथानक में शेक्सपियर के नाटक 'द टेम्पेस्ट' के कथानक का अनुकरण या प्रभाव का आरोप कुछ विद्वानों ने लगाया है। शेक्सपियर के नाटक 'द टेम्पेस्ट' एवं 'इन्दुमती' के कथानक में परिवेश, पात्र एवं घटनाक्रमों की भिन्नता के बावजूद काफी हद तक साम्यता है। द टेम्पेस्ट नाटक के कथानक में मिलान के पदच्युत डयूक प्रासपेरो और उसकी अबोध पुत्री मिराण्डा अपने राज्य से निष्कासित हो कर एक निर्जन टापू में निवास करते हैं। विभिन्न घटनाक्रमों के पश्चात उस निर्जन टापू मे नेपल्स के राजा आलोंजो का राजकुमार बेटा, जहाज दुर्घटना के बाद पहुँच जाता है। राजकुमार की मिराण्डा से मुलाकात तथा प्रणय संबंध स्थापित होते है। प्रासपेरो राजकुमार को बंदी बनाता है तथा लकड़ी काटने आदि का काम कराता है। 'इंदुमती' के कथानक में भी इंदुमती के पिता द्वारा राजकुमार को बंदी बनाया जाता है तथा लकड़ी काटने के काम में लगाया जाता है। बाद में मिराण्डा एवं राजकुमार का विवाह कर दिया जाता है। लगभग इसी भांति का कथानक 'इंदुमती' कहानी में भी है। इस भांति 'द टेम्पेस्ट' नाटक के कथानक के

काफी हद तक अनुकरण किए जाने से 'इन्दुमती' कहानी की मौलिकता संदिग्ध हो जाती है। यद्यपि 'द टेम्पेस्ट' के कथानक में जादू, परी आदि का भी समावेश है जो 'इंदुमती' में नहीं है।

जबकि सन् 1901 में माधव राव सप्रे द्वारा लिखी 'एक टोकनी भर मिट्टी' कहानी उच्च वर्ग द्वारा निम्न वर्ग के शोषण एवं उच्च वर्ग के हृदय परिवर्तन की कहानी है। जो कि आकार में लघु कथा से थोड़ी ही बड़ी है। लगभग एक डेढ़ पृष्ठ की उस कहानी में जमींदार द्वारा अपने भवन के सामने स्थित गरीब विधवा वृद्धा की झोपड़ी की जमीन को हड़पने तथा वृद्धा के आग्रह पर एक टोकनी भर मिट्टी भी न उठा पाने पर वृद्धा की सीख की 'जब आप एक टोकरी भर मिट्टी भी नहीं उठा पा रहे हो तो इस झोपड़ी की हजारों टोकरी मिट्टी का बोझ कैसे उठा पायेंगे? पर जमींदार का हृदय परिवर्तन और वृद्धा से क्षमा मांग कर उसकी झोपड़ी को लौटा देने के कथानक में मूलतः उच्च वर्ग द्वारा निम्न वर्ग के शोषण का कथ्य निहित है। संभवतः वामपंथी विचारधारा वाले प्रगतिशील साहित्यकार कमलेश्वर को कहानी के इसी कथ्य ने उस कहानी को हिन्दी की सर्वप्रथम कहानी मानने हेतु प्रेरित किया क्योंकि वामपंथ एवं प्रगतिशील साहित्य में सदा से 'समाज में उच्च वर्ग द्वारा निम्न वर्ग का शोषण' प्रमुख मुद्दा रहा है। जबकि कहानी में जमींदार के हृदय परिवर्तन की बात कहीं इस कारण से तो प्रस्तुत नहीं होती कि सप्रे जी पेंड्रा के जमींदार के पुत्रों के शिक्षक रह चुके थे तथा कहीं इसी वजह से तो कहानी के कथानक में उच्च वर्ग के जमींदार के हृदय परिवर्तन का आशाप्रद संदेश देने से वे अपने आप को रोक न सके।

इस भांति हिन्दी भाषा की पहली कहानी की दावेदार तीन कहानियाँ ही साबित होती है। (1) राजा भोज का सपना, प्रकाशन वर्ष सन् 1887 (2) इंदुमती, प्रकाशन वर्ष सन 1900 तथा (3) एक टोकनी भर मिट्टी, प्रकाशन वर्ष सन 1901। इन तीनों कहानियों में काल गणना के आधार पर सन 1887 में लिखी 'राजा भोज का सपना' कहानी जहाँ सर्वप्रथम कहानी साबित होती है वहीं उसका हिन्दी भाषा की देवनागरी लिपि में लिखा जाना तथा उस कहानी के कथ्य का वर्तमान में भी प्रासांगिक होना भी उस कहानी को हिन्दी भाषा की सर्वप्रथम कहानी का प्रबल दावेदार बनाता है। इतना ही नहीं कहानी का कथानक रोचक एवं भाषा सहज सरल स्वरुप में प्रस्तुत होती है। इन सबके बावजूद यदि 'राजा भोज का सपना' कहानी को हिन्दी भाषा की सर्वप्रथम कहानी नहीं स्वीकारा गया है तो विद्वत्व जन को उन कारणों को प्रस्तुत किया जाना चाहिए था जिसके कि वजह से वह कहानी हिन्दी की पहली कहानी होने की पात्रता नहीं रखती। लेकिन ऐसा नहीं किया गया आखिर क्यों?

राजेन्द्र सिंह गहलौत, बस स्टैंड के सामने, बुढ़ार–484110, जिला : शहडोल (म.प्र.)
मो. : 9329562110, 9303635502

✧ ✧ ✧

फणीश्वर नाथ रेणु की कहानियाँ और उनका भाव-संसार

पद्मा मिश्रा

कहानी की नायिका बिरजू की माँ एक सशक्त महिला है जिसके कई सपने रहते हैं, लालसा होती है वह दुनिया को अपनी निगाहों से देखना चाहती है और कहती भी है कि कोल्हू के बैल की तरह जीवन गुजार दिया खटकर लेकिन कभी एक पैसे की जलेबी भी बिरजू के बप्पा ने लाकर नहीं दी। वहीं दूसरी ओर बिरजू का पिता नाटक में दब्बू इंसान के रूप में दिखता है जो अपनी इच्छाओं को हमेशा दबाकर रखता है। सरल, सहज व्यक्तित्व वाला बिरजू का पिता मजदूरी कर किसी तरह से परिवार का गुजर-बसर करता है। वहीं बिरजू की माँ एक आधुनिक नायिका है जो समाज और परिवार में तारतम्य बनाते हुए सबको साथ लेकर चलने वाली दबंग नारी है।

हिंदी साहित्य में अनुभूतियों, और अनुभवों की आंच में तपकर, जीवन संघर्षों से लड़ता हुआ,धरती से जुड़ा, यदि कोई कथाकार हैं तो वह फणीश्वर नाथ रेणु जी ही है, मुंशी प्रेमचंद जी के बाद रेणु ही सर्वप्रिय, लोकप्रिय और माटी की महक और सोंधी खुशबू अपनी कहानियों में बिखेरते हुए एकमात्र आंचलिक कथाकार दिखाई देते हैं, उन्होंने अपनी कहानियों के सन्दर्भ में स्वयं कहा था ''अपनी कहानियों में मैं अपने आप को ही ढूंढता हूँ, अपने को, अर्थात आम आदमी को,'' वे अपनी कहानियों के विषय में अधिक नहीं कहते, जब भी कहानियों की चर्चा होती है उनकी कल्पना में शमशेर बहादुर सिंह की काव्य पंक्तियाँ ही गूंजती है, जिनका उल्लेख करना वो नहीं भूलते, 'बात बोलेगी, हम नहीं, भेद खोलेगी बात ही' उनके कहने का उद्देश्य था कि कहानी या रचना उतनी सशक्त होनी चाहिए ताकि उसे समझने के लिए किसी स्पष्टीकरण या समीक्षा की आवश्यकता न पड़े, प्रसिद्ध लेखक, कथाकार स्वर्गीय निर्मल वर्मा ने उनकी कहानियों में निहित भावनाओं और मानवीय संवेदनाओं, मूल्यों को पहचाना था, उनकी समीक्षा करते हुए उन्होंने लिखा था कि अपने समकालीन कथाकारों के बीच रेणु जी, संत की तरह जान पड़ते हैं, वे धरती के धनी हैं, बिहार के छोटे से भूखंड की हथेली पर उन्होंने समूचे उत्तर भारत के किसान की नियति रेखा को उजागर किया है'

उनकी कहानियों के पात्र धरती पुत्र हैं, धरती की पीड़ा को हृदय से महसूस करने

वाले, उसके संघर्षों को आत्मसात करते हुए भी जीवित रहने की जद्दोजहद में लगे, जिजीविषा की तलाश में जुटे इन किसानों का दर्द रेणु की लेखनी ने बखूबी जिया है, उन्हें यथार्थ की धरती पर उतारा है।

रेणु की कहानियाँ नादो, स्वरों के माध्यम से नीरस भावभूमि में भी संगीत से झंकृत होती हैं, रसप्रिया कहानी में रेणु ग्रामीण समाज से ओझल होती लोक संस्कृति की परंपरा का चित्रण करते है। ... आज वह लोक संस्कृति एवं लोकगीत ग्रामीण समाज से धीरे-धीरे ओझल होते जा रहे है। साथ ही साथ रेणु कहानी में कोयल का कूकना और जेठ की दोपहरी के माध्यम से ग्रामीण परिवेश का चित्रण करते हैं। रसप्रिया कहानी का मुख्य पात्र पचकौड़ी मिरदगिया बेहद भावुक, और प्रेमरस से सराबोर युवक है, उसके माध्यम से इस कहानी में ग्रामीण जीवन में अनवरत चल रही प्रेम कहानियों की गहराई और नियति को दर्शाया गया है, अपने सामाजिक जीवन संघर्षों से जूझते रहने के बावजूद प्रेम जिंदा रहता है, मरता नहीं, यह अद्‌भुत प्रेमकथा है, अधिकांश प्रेम कथाओं के दुखांत की तरह इस कहानी का अंत भी सामाजिक आर्थिक संघर्ष और उस में एक कलाकार की नियति पर पाठकों को सोचने के लिए विवश करता है, जहाँ पर महान कथाकार रेणु मिरदंगिया जैसे हजारों नायकों की नियति के अंदर झांकने की कोशिश करते हैं जो चुपचाप अपने समय काल को जीते हुए एक इतिहास लिख रहे होते हैं।

अपने शैक्षिक जीवन के प्रारंभ में रेणु जी की जिस कहानी से मेरा प्रथम परिचय हुआ था वह थी 'लाल पान की बेगम' बहुत ही मोहक, प्रभावशाली और मनोवैज्ञानिक तर्कों को स्पर्श करती हुई, स्त्री सशक्तीकरण की सर्वश्रेष्ठ कहानी, एक स्त्री चाहे वह किसी भी परिवेश की हो, ग्रामीण या शहरी, वह अपनी शर्तों पर जीना चाहती है, अपने हक और अपने अधिकारों को जानती समझती है, उसका स्वाभिमान उसकी सबसे बड़ी पूंजी होती है, जिसे ठेस पहुंचने पर वह आहत हो जाती है।

कहानी की नायिका बिरजू की माँ एक सशक्त महिला है जिसके कई सपने रहते हैं, लालसा होती है वह दुनिया को अपनी निगाहों से देखना चाहती है और कहती भी है कि कोल्हू के बैल की तरह जीवन गुजार दिया खटकर लेकिन कभी एक पैसे की जलेबी भी बिरजू के बप्पा ने लाकर नहीं दी। वहीं दूसरी ओर बिरजू का पिता नाटक में दब्बू इंसान के रूप में दिखता है जो अपनी इच्छाओं को हमेशा दबाकर रखता है। सरल, सहज व्यक्तित्व वाला बिरजू का पिता मजदूरी कर किसी तरह से परिवार का गुजर-बसर करता है। वहीं बिरजू की माँ एक आधुनिक नायिका है जो समाज और परिवार में तारतम्य बनाते हुए सबको साथ लेकर चलने वाली दबंग नारी है। बिरजू की माँ वैचारिक विरोधियों को भी जरूरत पड़ने पर मदद करने से पीछे नहीं हटती और अपनी उदारता का परिचय देती है।' ठीक ही तो कहा है उसने! बिरजू की माँ बेगम है, लाल पान की बेगम! यह तो कोई बुरी बात नहीं। हाँ, वह सचमुच लाल पान की बेगम है!

बिरजू की माँ ने अपनी नाक पर दोनों आँखों को केंद्रित करने की चेष्टा करके अपने रुप की झांकी ली, लाला साड़ी की झिलमिल किनारी, मंगटिक्का पर चांद. ...बिरजू की माँ के मन में अब और कोई लालसा नहीं। उसे नींद आ रही है।

'ठेस' कहानी का उद्देश्य एक ग्रामीण कलाकार के स्वाभिमान और आत्मगौरव को प्रकट करना है, कलाकार दूसरों से सम्मान प्राप्त करने का आकांक्षी होता है, उसे जब सम्मान की जगह तिरस्कार और अपमान प्राप्त होता है तो उसके संवेदनशील कोमल हृदय को ठेस पहुंचती है, यही ठेस उसे भविष्य में काम न करने का कठोर निर्णय लेने पर विवश करती है, जब किसी कलाकार का मन आहत होता है तब उसके भाव संसार में कोमल कारुणिक व्यंग्य की सृष्टि होती है, जो पाठक के मन को छू लेती है बड़ी बात ही है बिटिया! बड़े लोगों की बस बात ही बड़ी होती है। नहीं तो दो-दो पटेर की पटियों का काम सिर्फ खेसारी का सत्तू खिला कर कोई करवाए भला? यह तुम्हारी माँ ही कर सकती है बबुनी!' सिरचन ने मुस्कुरा कर जवाब दिया था।

रेणु जी की एक बहुचर्चित कहानी मारे गए गुलफाम जिस पर तीसरी कसम के नाम से एक फिल्म भी बनाई गई थी, बहुत ही रोचक, भावुक प्रेम की अद्वितीय प्रणय कथा, पाठकों को आँसुओं में डुबो जाने की क्षमता रखती है, यह कहानी अत्यंत सफल और लोकप्रिय हुई थी, हीरामन गाड़ीवान और नर्तकी हीराबाई की कहानी, हीराबाई सर्कस कंपनी में काम करती है, हीरामन की गाड़ी में बैठ कर दूर की यात्रा पर, चलती है, चाहें अनचाहे घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में दोनों को लगाव हो जाता है और प्रेम कथा की शुरुआत होती है।

एक बार उसने 100 लेकर सर्कस कंपनी के बाघ ढोए थे किंतु आज हीरामन एक महिला को ले जा रहा था। नाम है हीराबाई। वह पहले मथुरा मोहन नौटंकी में काम करती थी किंतु उसको छोड़ कर वह रीता नौटंकी में काम करने के लिए फारबिसगंज जा रही है। उसने चंपा का इत्र अपने कपड़ों में लगा रखा है। चंपा की सुगंध हीरामन को पागल बनाए दे रही है।

रास्ते में उसे महुआ घटवारिन की कथा याद आती है, वह उससे जुड़ा एक लोकगीत गाकर हीराबाई को सुनाता है, 'चिठिया हो तो हर कोई बांचें, करम न बांचें कोई, करमवा बैरी हो गये हमारे'

महुआ घटवारिन का प्रेम अधूरा रह गया था, जिसे सुनकर हीराबाई की आँखों में आँसू आ जाते हैं, अंततः उनकी फारबिसगंज गंज की यात्रा तो पूरी हो जाती है, परंतु कथाक्रम में नौटंकी के नाच देखते समय हीराबाई के साथ कंपनी का मालिक दुर्व्यवहार करता है जिसे हीरामन सहन नहीं कर पाता, वह दुःखी हो जाता है जब हीराबाई इसे एक सामान्य बात कहती है, कहानी का अंत दुखांत है, लेकिन पाठकों के मन को छू जाती है।

'रेणु जी की कहानियाँ संवेदना के उच्च स्तर को स्पर्श करती है, जहाँ भावुकता की मनोभूमि पर उनका कथा संसार अपनी नई दुनिया रच रहा होता है, उनके पात्र सामाजिक ताने-बाने में उलझी हुई जिंदगी जीते हुए भी मानवीयता नहीं छोड़ते, आपसी सौहार्द की भावनाएं जीवित है उनकी कहानियों में ऐसी ही एक कहानी है 'संवदिया'।

संवदिया फणीश्वर नाथ रेणु की कालजयी रचना है और एक अंचल विशेष की कृति है, इस कहानी में घर की बड़ी बहु की क्या भूमिका होती है उसको बड़े मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। किस प्रकार परिवार के अन्य छोटे-बड़े सदस्य अपनी छुट्टियाँ बिताने गाँव आते हैं और वहाँ से लूट खसोट कर ले जाते हैं।

इस कहानी में हवेली की मालकिन बड़ी बहू की पीड़ा और अभाव ग्रस्त जिंदगी की व्यथा कथा को रेणु की लेखनी ने समाज के विस्तृत कैनवस पर उकेरा है, समृद्ध परिवार की बड़ी बहू पति की मृत्यु के बाद अनाथों-सा जीवन जीने के लिए विवश हो जाती है, पति के छोटे भाइयों ने उनकी संपत्ति में मनमाने ढंग से बंटवारा करके उन्हें अकेला छोड़ दिया है, वह भूख, गरीबी में जूझती हुई अपने स्वाभिमान को बचाये रखने की कोशिश में संघर्षरत है, लेकिन एक दिन लाचार हो कर गाँव के संवदिया को हवेली बुलाती हैं और उससे अपने मायके के गाँव और माँ, भाई को संदेश पहुँचाने के लिए कहती है कि अब जीवन बहुत कठिन हो गया है, इस अभाव में वह अधिक दिन जीवित नहीं रह सकती, वे उसे आकर ले जाएं ''संवदिया उनके गाँव पहुँच कर भी उनका संदेश नहीं दे पाता, उसे अहसास होता है जिस बड़ी बहुरिया ने कभी पूरे गाँव की मदद की थी आज इतना बड़ा गाँव मिलकर बड़ी बहुरिया की देखभाल नहीं कर सकता? यह तो उसकी बदनामी होगी और वह किसी को सच्ची बात नहीं बताता, झूठ बोल देता है कि वह कुशल से हैं, लौटते समय बहुत कठिनाई से वह गाँव तक पहुँचता है और रोते हुए बड़ी बहू से कहता है' तुम अब कहीं नहीं जाओगी, यहीं रहोगी, मैं तुम्हारी देखभाल करूंगा, मैं तुम्हारा बेटा हूँ माँ''

ऐसी कहानियाँ जो समाज को बदलने की ताकत रखती है, कालजयी कहलाती है।

रेणु ऐसे ही मूक रहे पात्रों के कथावाचक हैं। रेणु यह नहीं मानते कि ग्रामीण सर्वहारा के जीवन में आर्थिक दु:ख के सिवा और कुछ होता ही नहीं। वह यह भी कहना चाहते हैं कि उनका आर्थिक-सामाजिक दैन्य उनके जीवन को कई स्तरों पर विरूप कर देता है. उनका कुछ भी सुरक्षित नहीं रह जाता। उनका जीवन-राग मुश्किल में होता है। लेकिन चाहे जो हो, ये मेहनतकश लोग जो आमतौर पर हमारे सामाजिक जीवन के हाशिये पर होते हैं, राग-अनुराग से विरत नहीं हो सकते। वह अपनी धड़कनों को खोना नहीं चाहते। उनका महत्व समझते हैं। रेणु की अन्य कई कहानियों जैसे 'पंचलाइट', 'तीसरी कसम' 'अच्छे लोग' या फिर आखिरी दौर की कहानी 'भित्तिचित्र की मयूरी' में भी रागात्मकता के विविध रूपों को आप देख सकते हैं। पंचलाइट के गोधन और मुनरी, तीसरी कसम का हिरामन, 'अच्छे लोग' के उजागिर और बिरौलीवाली या 'भित्तिचित्र की मयूरी' की फुलपतिया सब एक ही पीड़ा या रस में डूबे हुए पात्र हैं। सुखद अनुभूति होती है कि जीवन के इतने विविध रुप कैसे उनकी कहानियों में समाहित हुए होंगे, लोक जीवन के राग-अनुराग, उनकी समझ, उनकी संवेदना और विवेक को उन्होंने अपने अंदाज में प्रस्तुत करने की सुंदर कोशिश की है, यह सौंदर्य जितना रेणु की कहानियों में जीवन्त हुआ है, उतना अन्य किसी हिंदी कहानीकार में नहीं, मेरी शत-शत नमन।

पद्मा मिश्रा, एल आई जी–114, रो हाऊस, आदित्यपुर–2, आर आई टी थाना के सामने,
जमशेदपुर–13 (झारखंड), मो. : 8709148432, ई–मेल : padmasahyog@gamil.com

✧ ✧ ✧

लोकार्पण समारोह

फतुहा की साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्था जन साहित्य परिषद् के तत्वाधान में आयोजित एक भव्य समारोह में दीपिका भारती के संपादन में प्रकाशित साहित्य वैभव त्रैमासिक का लोकार्पण जाने-माने साहित्यकार तथा दूरदर्शन बिहार के निदेशक डॉ. ओमप्रकाश जमुआर, साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष डॉ० अनिल सुलभ, रेल राजभाषा के निदेशक राजमणि मिश्र, कहानीकार अशोक प्रजापति आदि ने किया। लोकार्पण समारोह में हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता दशा और दिशा विषय पर जमकर चर्चा हुई जिसकी अध्यक्षता सुप्रसिद्ध लेखक एवं साहित्य यात्रा पत्रिका के संपादक प्रो० कलानाथ मिश्र ने की।

समारोह में निर्धारित विषय पर चर्चा करते हुए डॉ० ओमप्रकाश जमुआर ने कहा कि मीडिया लोकतंत्र की ताकत है। इसे एक सजग प्रहरी की तरह काम करना चाहिए।

अनिल सुलभ ने साहित्यिक पत्रकारिता की समृद्ध परम्परा के क्षीण होते जाने पर चिंता व्यक्त करते हुए कहा कि जनमानस पर साहित्य का गहरा प्रभाव पड़ता है। राजमणि मिश्र ने साहित्यिक पत्रकारिता की जरूरत को चिन्हित करते हुए वर्तमान में इसकी स्थिति पर प्रकाश डाला।

अध्यक्षीय उद्‌बोधन में डॉ० कलानाथ मिश्र ने विभिन्न प्रसंगों के जरिए हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता के समक्ष उपस्थित चुनौतियों की विस्तृत चर्चा की तथा इस बात पर बल दिया कि साहित्य जीने की कला है। साहित्य की हमें वैचारिक समृद्धि प्रदान करता है। उन्होंने कहा कि साहित्य को समाज का दर्पण कहने से काम नहीं चल सकता क्योंकि दर्पण में सिर्फ चेहरा दिखायी पड़ता है, लेकिन साहित्य में आत्मा की आवाज होती है।

इनके अलावे श्यामनंदन, अशोक प्रजापति, अमित कुमार, जैनेन्द्र कुमार, दीपिका, श्वेता शेखर, भारती, सीरा प्रसाद, राजेन्द्र राज, मनीषा कुमारी आदि ने भी संबोधित किया। समारोह का संचालन प्रसिद्ध कथाकार रामयतन यादन ने तथा धन्यवाद ज्ञापन डॉ० लक्ष्मीनारायण ने किया।

स्मृति चित्र

साहित्य यात्रा के संपादक प्रो. कलानाथ मिश्र के आवास पर आयोजित गोष्ठी का एक चित्र (बायें से कलानाथ मिश्र, भगवती शरण मिश्र, एवं राजकुमारी मिश्र)

पंडित गणनाथ मिश्र एवं भगवती शरण मिश्र

डॉ. विष्णु किशोर झा 'बेचन'

(4 सितम्बर 1933 – 30 अगस्त 2004)

प्रख्यात लेखक और सामाजिक सरोकारों से जुड़े डॉ. विष्णु किशोर झा 'बेचन' जी का जन्म 4 सितम्बर, 1933 को हुआ था। 74 वर्ष की आयु में 30 अगस्त, 2004 को इनका देहावसान हो गया। वे लंबे समय तक मारवाड़ी महाविद्यालय, भागलपुर के प्रधानाचार्य और भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति के पद पर भी रहे। उन्होंने बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन, पटना के अध्यक्ष पद को भी सुशोभित किया। हिन्दी साहित्य में कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, आलोचना इत्यादि विषयों पर उनकी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई। उन्हें 'साहित्य यात्रा' परिवार की ओर से शत–शत नमन और प्रणाम।

RNI No. : BIHHIN05272
ISSN 2349 - 1906
Postal Registration No. : PT-7C

डॉ. भगवती शरण मिश्र

(27 मार्च 1939 – 27 अगस्त 2021)

हिन्दी कथा साहित्य को गौरवपूर्ण ऊँचाई प्रदान करने वाले बहुभाषाविद् मनीषी साहित्यकार डॉ. भगवती शरण मिश्र 27 अगस्त को पंचतत्व में विलीन हो गए। वे 82 वर्ष के थे। भारतीय प्रशासनिक सेवा के वरिष्ठ अधिकारी रहे डॉ. मिश्र 100 से भी अधिक पुस्तकों और ग्रंथों से हिन्दी साहित्य को समृद्ध करते रहे। हिन्दी, इंग्लिश, बांग्ला और मैथिली के विद्वान भगवती शरण मिश्र बिहार सरकार के राजभाषा विभाग के राजभाषा निदेशक थे और रेलवे मंत्रालय में भी अधिकारी रहे। वे शिवहर जिला के प्रथम समाहर्ता, कुशल प्रशासक, प्रखर वक्ता होने के साथ–साथ हिन्दी, भोजपुरी, मैथिली ग्रंथ अकादमी के निदेशक भी रहे। सेवानिवृत्त होने के उपरांत उन्होंने एकनिष्ठ भाव से हिन्दी और साहित्य की अहर्निश सेवा की और अविराम लिखते रहे। उनके निधन से समग्र साहित्य जगत शोकाकुल है। हम उनके यशः काय को नमन करते हुए उनके प्रति हार्दिक श्रद्धाजंलि अर्पित करते हैं।

Design & Print @ Gyan Ganga Creations # 09334110685